सम्पादकीय

1857 की विरासत और उपनिवेशवादी नजरिया

''अगर तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे,
तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसायेगा।''

–अबू तालिब
दागिस्तानी लोक कवि

1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम हमारे इतिहास की गौरवशाली विरासत है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, बेगम हजरतमहल, नाना साहेब पेशवा, कुँअर सिंह, तात्या टोपे, बख्त खान और मंगल पाण्डे जैसे योद्धाओं, मेरठ और बैरकपुर के विद्रोही सैनिकों तथा सुदूरवर्ती इलाकों के बहुतेरे स्थानीय नायकों की बहादुरी और बलिदान की महाकाव्यात्मक गाथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोक मानस में संचित-संरक्षित रहीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी स्वतन्त्रता सेनानियों की अगली पीढ़ियों ने 1857 के इन वीर नायकों को आदर के साथ याद किया और उनसे प्रेरणा ग्रहण की। आज भी हमारी यह शानदार विरासत हमारे पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों का प्रेरणास्रोत है और यह दीप्तिमान प्रकाश स्तम्भ आने वाले समय में भी जन संघर्षों का मार्ग आलोकित करता रहेगा।

इस वर्ष, 1857 की 150वीं वर्षगाँठ के मौके पर सरकार ने करोड़ों रुपये फूँककर कुछ बेजान और फीके अनुष्ठानिक आयोजन तो कर दिये लेकिन उसकी विरासत को वर्तमान पीढ़ी तक पहुँचाने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। ऐसा बेवजह नहीं हुआ।

अभी कुछ महीने पहले कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक समारोह में प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने अंग्रेजों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए और उनकी प्रशंसा के गीत गाते हुए कहा था कि अंग्रेजों ने ही भारतीयों को शासन-प्रशासन के गुर सिखाये। ऐसे शासक जो अपने आपको ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के उत्तराधिकारी मानते हैं, उनसे भला और क्या उम्मीद की जा सकती है?

1857 के इतिहास के पुनर्मूल्यांकन के बहाने इसकी भाँति-भाँति की व्याख्याएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। अंग्रेज इतिहासकारों से भी चार हाथ आगे बढ़कर इसे अंग्रेजी राज की प्रगतिशीलता के खिलाफ धर्मभीरु, दकियानूस सिपाहियों और चोट खाये सामन्तों का प्रतिगामी विद्रोह बताया जा रहा है। ऐसी स्थापनाएँ भी सामने आयी हैं कि अगर 1857 की लड़ाई जीत ली गयी होती तो भारत में फिर से सामन्तों का राज कायम हो जाता और प्रगति से देश वंचित रह गया होता।

आश्चर्य नहीं कि आज जब अमरीकी कमान में साम्राज्यवादी समूह भारत सहित पूरी दुनिया पर आर्थिक नव उपनिवेशवादी गुलामी थोपने के लिए उद्यत है, तब हमारे देश के बौद्धिक हलके में इतिहास के इन शानदार पन्नों पर कालिख पोतने का प्रयास किया जा रहा है। आर्थिक मोर्चे पर साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के निर्लज्ज पैरोकार, सांस्कृतिक मोर्चे पर उपनिवेशवादी जर्जर सिरस्त्राण और जिरहबख्तर धारण किये डॉन क्विगजोट की भाँति अपनी जंग लगी तलवार लिये मैदान में कूद पड़े हैं।

1757 में प्लासी की लड़ाई में जीत हासिल करने के

साथ ही अंग्रेजों ने भारत में अपनी डाकाजनी और लूट-खसोट काफी तेज कर दी। इस पूरे दौर में कभी भी उनका रास्ता निर्बाध और निष्कण्टक नहीं रहा। इन सौ वर्षों के दौरान प्रतिरोध संघर्षों का अटूट सिलसिला लगातार जारी रहा। एक तरफ आदिवासियों और किसानों के जन प्रतिरोध और दूसरी ओर सामन्तों, राजाओं, नवाबों और जमींदारों का प्रतिरोध कदम-कदम पर अंग्रेजों की नींद हराम करता रहा। इतिहासकारों ने 1757 से 1857 के बीच हुए कुल 968 विद्रोहों के दस्तावेजी सबूत और विवरण एकत्र किये हैं।

1857 के संग्राम में तीन वर्गों के लोगों ने हिस्सेदारी की – किसान, दस्तकार और सामन्त। बंगाल आर्मी के सिपाही इनमें से एक वर्ग – किसानों के बेटे थे और उन्हीं की नुमाइन्दगी कर रहे थे। फिरंगियों के 100 वर्षों के अमानुषिक अत्याचार ने भारतीय समाज में असन्तोष और आक्रोश का जो बारूद जमा किया था, उसमें चर्बी लगे कारतूसों ने पलीता लगाने का काम किया।

हर साल अधिक से अधिक धन विदेश ले जाने की हवस में अंग्रेजों ने किसानों का लगान बढ़ाना और कड़ाई से वसूलना शुरू किया। 1819 से 1856 के बीच महालबाड़ी के इलाके (जैसे पश्चिमी उत्तरप्रदेश और मध्य भारत के कुछ और इलाके) में फिरंगियों ने लगान 70 फीसदी तक बढ़ा दिया। नतीजा यह कि किसानों की आधी जमीनें उनके हाथ से निकल गयीं। देश के दूसरे इलाकों में भी भारी लगान के बोझ ने किसानों और छोटे जमींदारों की कमर तोड़ दी। बंगाल सेना के सिपाहियों का बड़ा हिस्सा इन्हीं किसानों के बीच से आया था। यही कारण है कि मध्य भारत में विद्रोही सैनिकों को काफी समर्थन मिला और इसका प्रभाव सुदूर गाँवों तक फैल गया।

उद्योग-व्यापार के क्षेत्र में अंग्रेजों की मनमानी का तो कोई अन्त नहीं था। 1833 का चार्टर एक्ट पारित होने के बाद उन्होंने भारत में विदेशी कपड़ों पर टैक्स लगभग समाप्त कर दिया। इसके चलते भारतीय सूत और कपड़ा उद्योग तबाह हो गया। 1818 से 1836 के बीच ब्रिटेन से सूत का आयात 5200 गुणा बढ़ गया। 1824 से 1837 के बीच के सात वर्षों में ही ब्रिटेन से आने वाला मलमल 10 लाख गज से बढ़कर 6 करोड़ 40 लाख गज यानि 64 गुना हो गया। नतीजा यह कि जुलाहे और कपड़ा उद्योग में लगे अन्य दस्तकार अपने परम्परागत पेशों से उजड़कर दाने-दाने को मुहताज हो गये। ढाका शहर की आबादी इसी अवधि में डेढ़ लाख से घटकर केवल 20 हजार रह गयी।

मध्य भारत के दस्तकार भी इस तबाही की मार से त्रस्त थे। उन्होंने जोशोखरोश के साथ बंगाल सेना के योद्धाओं का समर्थन किया और उनमें से बहुत सारे लोग हथियार उठाकर उनके साथ चल पड़े। मेरठ से दिल्ली कूच करने वाली सेना में भारी संख्या में इस इलाके के दस्तकार और किसान आस-पास के गाँवों से आकर शामिल होते गये। जब वे मेरठ से चले तो उनकी संख्या 2000 थी जो दिल्ली पहुँचते-पहुँचते बढ़कर लगभग 15000 हो गयी।

बाजार के विस्तार की भूख में अंग्रेजों ने नये-नये बहाने गढ़कर देशी रियासतों को हड़पने का अभियान चलाया। दत्तकपुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी न मानना ऐसी ही एक दलील थी। ऐसे हथकण्डे अपनाकर फिरंगियों ने 1843 से 1856 के बीच सिन्ध, पंजाब, सतारा, झाँसी, नागपुर और अवध का राज्य हड़प लिया था और भारत का लगभग 20 फीसदी भू-भाग अपने कब्जे में कर लिया था। इन कुकर्मों ने केवल सामन्तों के विक्षोभ को ही नहीं बढ़ाया। हर बेदखली के बाद राजघराने पर आश्रित हजारों कर्मचारियों, सैनिकों और यहाँ तक कि दस्तकारों और किसानों के सामने भी भारी संकट खड़ा हो जाता था। इसके चलते फिरंगियों के प्रति उनके मन में नफरत और गुस्सा सुलगना स्वाभाविक ही था।

बंगाल आर्मी 1,35,000 सिपाहियों वाली एशिया की सबसे बड़ी फौज थी। ये सैनिक अंग्रेजों की आधुनिक सैन्य व्यवस्था के अनुरूप प्रशिक्षित थे और उन्हीं के मातहत थे। उपनिवेशों पर अधिकार जमाने की ब्रिटिश महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वे अफगानिस्तान, बर्मा, पंजाब, सिन्ध, ईरान, क्रीमिया और चीन तक लड़ने के लिए भेजे गये। इनमें से ढेर सारे सैनिक हताहत हुए। उस समय पैदल सिपाहियों का वेतन सात रुपये और घुड़सवार सैनिकों का वेतन सत्ताइस रुपये था जिसमें उनका गुजारा करना मुश्किल था। फौज में असन्तोष का लावा भीतर ही भीतर सुलग रहा था। इतिहास को विकृत करते हुए जो लोग गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस की बात को एक मात्र कारण बताते हुए इसे धर्मभीरु सैनिकों की बगावत बताने की थोथी दलील देते हैं, वे भूल जाते हैं कि अंग्रेजों से लोहा लेते समय उन्हीं सिपाहियों ने कारतूसों को दाँत से फाड़ा था।

बंगाल आर्मी के सैनिक अंग्रेजों द्वारा आरोपित नयी व्यवस्था के अंग थे। पुरानी सामन्ती व्यवस्था से उनका कोई

लेना-देना नहीं था। वे किसानों के बेटे थे, इसलिए भी सामन्तों से उनकी सहानुभूति का कोई आधार नहीं था। क्योंकि किसान, सैनिक, दस्तकार और सामन्त सभी वर्गों का एक मुश्तरका दुश्मन ब्रिटिश था, इसलिए अंग्रेजों के खिलाफ इस लड़ाई में सभी वर्ग एक साथ मिलकर लड़े थे।

1857 इतिहास की उन बड़ी घटनाओं में से एक है जो अपने भीतर ढेर सारी परस्पर विरोधी और जटिल सच्चाइयों को समोये होती हैं, इसलिए ऐसी घटनाओं के बारे में सही और सन्तुलित राय बनाना आसान नहीं। इसकी एकांगी, सरलीकृत और सतही समझ सामान्य बुद्धि को चकरा देती है और अध्येता हास्यास्पद नतीजों तक जा पहुँचता है। साथ ही, अंग्रेजों द्वारा इस संग्राम का बर्बर दमन किये जाने के बावजूद, 1857 एक भयावह दु:स्वप्न की तरह उनके सीने पर सवार रहा। वे लगातार इसकी स्मृतियों को जनमानस से मिटाने का प्रयास करते रहे और जानबूझकर इसे विकृत करके अपना उपनिवेशवादी पक्ष ही प्रस्तुत करते रहे। प्रभुत्वशाली होने की सहूलियत का लाभ उठाकर उन्होंने तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा और झूठ का अम्बार खड़ा किया । बाद की पीढ़ियों के लिए ये झूठ ही इतिहास के तथ्य बनते गये। इसलिए शासक वर्गों के पूर्वाग्रहग्रस्त इतिहासकार ही नहीं बल्कि ढेर सारे जनपक्षधर लोग भी इसके ऐतिहासिक महत्व को पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाते।

1947 के बाद नये देशी शासकों ने भी इस दिशा में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया। अभी भी इस विषय पर लाखों पृष्ठों की सामग्री सरकारी उपेक्षा के कारण अध्ययनकर्ताओं की नजर से नहीं गुजरी है। स्थानीय स्तर पर अनेक छोटी-बड़ी जानकारियाँ और उपाख्यान दिनों-दिन विस्मृति के गर्त में समाते जा रहे हैं।

अपनी सीमाओं और कमजोरियों, पराजय और दमन के बावजूद 1857 का जनविप्लव विदेशी आक्रान्ताओं के खिलाफ दुनिया के कुछ महत्वपूर्ण संग्रामों की श्रेणी में शामिल है। इसका दायरा उत्तरी भारत तक ही सीमित नहीं था जैसा कि उपनिवेशवादी इतिहासकार बताते रहे हैं। उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त और पंजाब के कुछ स्थानों से लेकर पूर्वी भारत के जलपाईगुड़ी, ढाका, चटगाँव तक इसका प्रभाव था। इतिहासकारों ने तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर यह स्थापित किया है कि इस संग्राम की लपटें दक्षिण तक फैल गयी थीं, हालाँकि अंग्रेजों ने जल्दी ही उस पर काबू पा लिया था।

1857 का उपनिवेशवाद विरोधी संग्राम अपने अन्तर्निहित कारणों – तैयारी और संगठन का अभाव, सिन्धिया, होल्कर और राजपूताने के नरेशों की अंग्रेजपरस्ती, सामन्ती शासकों के बीच फूट और आपस में तालमेल करके एक साथ पूरे देश में संचालित न हो पाने के कारण अन्ततः पराजित हुआ। अंग्रेजों ने जिस नृशंसता के साथ बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुषों का कत्लेआम किया उसका विवरण उस समय के कुछ एक विदेशी लेखकों की रचनाओं, लोक साहित्य और जनश्रुतियों में भरा पड़ा है। लेकिन उन लाखों भारतवासियों का अनुपम बलिदान व्यर्थ नहीं गया।

आज कुछ इतिहासहन्ता इस संघर्ष की पराजय और इसके कारणों का हवाला देते हुए इसके महत्व को खारिज करने का प्रयास कर रहे हैं। अंग्रेजों के अत्याचारों को चुपचाप सह लेना क्या उचित होता? क्या प्रतिरोध युद्ध की शुरुआत वे तभी करते जब उसमें उनकी जीत सुनिश्चित होती? प्रतिरोध योद्धा चाहे आम जनता हो या राजा, नवाब और जमींदार, बार-बार चोट खाकर भी यदि उनमें अंग्रेजों के प्रति आक्रोश और आजादी का जज्बा पैदा नहीं होता, अगर पूरे उत्साह और बलिदानी भावना से वे उस संघर्ष में नहीं कूदे होते तो भारत लम्बे समय के लिए चरम निराशा, घोर अन्धकार में डूब जाता। इसका सबसे बड़ा महत्व तो यही है कि 1857 भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का अजस्र स्रोत बना रहा और आज भी इसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

1857 के संग्राम में प्रतिरोध युद्ध और स्वतन्त्रता संग्राम, दोनों ही तत्व मौजूद थे। यह प्रतिरोध की अन्तिम लड़ाई थी क्योंकि पुरानी सामाजिक शक्तियों – राजाओं, नवाबों, जागीरदारों और जमींदारों ने इसकी अगुवाई की। पुराना भारत अपनी अन्तिम ताकत लगाकर पूरे जोशोखरोश के साथ विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष में उतरा। प्रतिरोध योद्धाओं पर अंग्रेजों ने काबू पा लिया और बाकी बचे सामन्त या तो पहले ही उनके साथ थे या उन्होंने बाद में उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। 1857 के बाद सामन्तों की ओर से अंग्रेजों को किसी प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। इसलिए यह अन्तिम प्रतिरोध युद्ध था।

यह प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम इसलिए था कि इसमें अंग्रेजों द्वारा थोपे गये नये आर्थिक-राजनीतिक ढाँचे के भीतर से पैदा हुई और उससे प्रभावित सामाजिक शक्तियों– दस्तकारों, किसानों, सैनिकों – ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया

था। यही सही है कि 1857 तक भारत पूरा गुलाम नहीं हुआ था, लेकिन एक बड़े भू-भाग पर जहाँ अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था, वहाँ उन्होंने अपनी औपनिवेशिक सत्ता का बीज भी बो दिया था। इस बात का पहले ही जिक्र किया गया है कि अंग्रेजों की नीतियों ने किसानों और दस्तकारों को कितनी बुरी तरह प्रभावित किया था। इस संघर्ष में जनता के इन हिस्सों की भागीदारी का लक्ष्य अंग्रेजी राज की गुलामी से मुक्ति पाना था। इसीलिए यह संघर्ष प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था और इसीलिए यह आगे के स्वतन्त्रता संग्राम का प्रेरक बना और 1947 तक चली आजादी की लड़ाइयों को इसी की निरन्तरता में देखा जा सकता है।

1857 की पराजय के बाद भारत पूरी तरह अंग्रेजों का गुलाम हो गया। अंग्रेजों ने यहाँ अपनी औपनिवेशिक आर्थिक सामाजिक संरचना आरोपित की जिसे कुछ लोग प्रगतिशीलता का पर्याय मानकर आज भी निर्लज्जतापूर्वक इसकी प्रशंसा करते हैं। इसमें कुछ भी प्रगतिशील नहीं था। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने यहाँ जो भी कदम उठाये वे काफी सोच समझकर अपने संकीर्ण हितों को ध्यान में रखकर उठाये थे। साथ ही भारतीय समाज की आन्तरिक गति को उपनिवेशवादियों ने पग-पग पर नियन्त्रित, सीमित और विकृत किया। प्रतिक्रियावादी सामन्तवाद को समाप्त करने के बजाय उसे जानबूझकर मजबूत बनाया गया। भारत, जो सोने की चिड़िया कहलाता था जल्दी ही अकाल, भुखमरी, महामारी और मौत का पर्याय बन गया।

उपनिवेशवाद का सबसे बुरा प्रभाव यह हुआ कि हम अपनी जमीन से, अपनी परम्पराओं से, अपनी सकारात्मक उपलब्धियों से कट गये। उपनिवेशवादी शिक्षा-संस्कृति का जनमानस पर इतना जबरदस्त प्रभाव पड़ा कि आजादी के 60 साल बाद भी बुद्धिजीवी वर्ग, खास तौर पर अंग्रेजी पढ़े शहरी मध्यवर्ग पर चेतन या अचेतन तौर पर औपनिवेशिक नजरिया हावी है। 1857 के बारे में नाना प्रकार के मूल्यांकनों पर भी इसका असर देखा जा सकता है।

आखिर ऐसा क्यों है कि 1857 के बाद 150 वर्ष बीतने और अंग्रेजों के भारत छोड़कर जाने के 60 साल बाद भी उपनिवेशवाद के नये-नये संस्करण सामने आते जा रहे हैं। प्रधानमन्त्री अंग्रेजों के शुक्रगुजार हैं कि उन्होंने भारतीयों को सुशासन सिखाया। (हमारे प्रधानमन्त्री उनकी विरासत का अच्छी तरह निर्वाह करते हुए इस देश को भूख-अकाल और मौत का देश बनाने के ''सुशासन'' में लगे हैं।) बिहार और पूर्वी उत्तरप्रदेश के सामन्ती पृष्ठभूमि वाले बने-बिगड़े लोग पहले बात-बात पर कहते थे कि इससे तो अंग्रेजों का राज ही अच्छा था। बाद में यह एक प्रचलित मुहावरा बन गया। कुछ दलित बुद्धिजीवी इसे सवर्णों का विद्रोह मानते हैं और उनके हिसाब से अंग्रेजों का देश को गुलाम बनाना दलितों के हित में था क्योंकि अंग्रेजी राज ने उन्हें ब्राह्मणवाद से मुक्ति दिलायी। हिन्दुवादी अंग्रेजों का राज इसलिए ठीक मानते रहे हैं कि इसने मुसलमानों के विधर्मी शासन से मुक्ति दिलायी और इसीलिए वे स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान अंग्रेजों के बजाय मुसलमानों से लड़ते रहे और आज साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के नये दौर में भी वे उसी नीति पर कायम हैं। आधुनिकतावादी ब्रिटेन से लायी गयी आधुनिक वस्तुओं और अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा की चकाचौंध में औपनिवेशिक गुलामी का औचित्य प्रतिपादन करते हैं। कुछ लोग जो ज्यादा बारीक सूत कातते हैं, वे इसे हिन्दू-मुस्लिम एकता के एकमात्र चश्मे से देखते हैं और समग्र मूल्यांकन – खासतौर पर विदेशी सरमायादारों के खिलाफ जनयुद्ध के पहलू को, जो आज सर्वाधिक प्रासंगिक है, गोल कर जाते हैं।

सच तो यह है कि इनमें से कोई भी विचार मौलिक या नया नहीं है। अंग्रेज इतिहासकारों की पोथियों में उन्हें पहले से तैयार पका-पकाया माल हाथ लग गया। बस उसमें थोड़ा छौंक लगाने की जरूरत थी। नयी-नयी आकर्षक सज-धज के साथ वही पुराना औपनिवेशिक माल बाजार मे उतार दिया गया।

अपने वर्गीय स्वार्थों के चलते अंग्रेजों ने 1857 को सिपाही विद्रोह या आतताइयों का उपद्रव कहकर इसे बदनाम और सीमित किया, यह बात समझ में आती है। लेकिन भारतीय इतिहासकार और बुद्धिजीवी ऐसा क्यों करते हैं? उस समय के अखबार और पत्रिकाएँ तो पूरी तरह उपनिवेशवादियों के नियन्त्रण में थे और प्रेस एक्ट के चलते 1857 का जिक्र करना भी अपराध था। लेकिन आज जबकि लाखों पृष्ठों की स्रोत-सामग्री उपलब्ध है, फिर भी इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना पर विभ्रम की स्थिति क्यों है?

भारत को पूरी तरह गुलाम बना लेने के साथ ही अंग्रेजों ने यहाँ की शिक्षा, संस्कृति, दर्शन, साहित्य, संक्षेप में जीवन के हर क्षेत्र पर अपना औपनिवेशिक प्रभुत्व कायम किया। 1857 के बारे में ही औपनिवेशिक नजरिये से हजारों किताबें,

संस्मरण, इतिहास, उपन्यास, कहानी, लेख, कवितायें इत्यादि लिखी गयीं। यहाँ तक कि इस घटना पर ब्रिटिश चित्रकारों की पेंटिंग भी उनके उपनिवेशवादी नस्लवादी नग्न पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हैं। आने वाली पीढ़ियाँ 1857 के विषय में इन्हीं स्रोतों पर निर्भर थीं। भगत सिंह, उनके संगठन के साथियों और अन्य क्रान्तिकारियों ने वैज्ञानिक चेतना, मेहनतकश वर्गों के साथ पक्षधरता और उसी के अनुरूप इतिहास-दृष्टि अपनाकर उपनिवेशवादी मानसिक दासता की बेड़ियों से अपने आपको काफी हद तक मुक्त किया था। इसके विपरीत, प्रखर से प्रखर राष्ट्रवादी नेता भी खुद को उपनिवेशवादी नजरिये से मुक्त नहीं कर पाये। नेहरू ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' में अंग्रेजों की चाहे जितनी भी आलोचना की लेकिन 1857 के बारे में उनका दृष्टिकोण कुल मिलाकर नकारात्मक है।

दूसरी बात यह कि अंग्रेज राज में भारतीय बुद्धिजीवियों की पहली पीढ़ी में अधिकांश सामन्ती वर्ग से आये थे जो अंग्रेजों का पिट्ठू था। 1857 में उनमें से एक-दो को छोड़कर सभी ने अंग्रेजों का साथ दिया था। इसीलिए वे 1857 के जन विप्लव से खुद भी भयाक्रान्त थे। उनकी भावी पीढ़ियाँ विद्रोह की नकारात्मक छवि और डरावनी यादों की वारिस बनीं। उन्हीं में से ढेर सारे लोग आज चोटी के बुद्धिजीवी और शासन-व्यवस्था के अंग हैं जो आज भी अंग्रेजी राज के दौरान की अपनी शासकवर्गीय स्थिति और उसके गहरे प्रभावों से मुक्त नहीं हुए। आज के दौर में उनकी पुरानी अंग्रेजपरस्ती चोला बदल कर अमरीकापरस्ती में तब्दील हो गयी है। अपने देश, समाज और आम जनता के प्रति उनका वही नजरिया है जो साम्राज्यवादियों का।

एक बात और रेखांकित करना जरूरी है। 1857 की लड़ाई के पक्ष और विपक्ष में खड़े बुद्धिजीवियों के बारे में यह बात काफी हद तक सही है कि जो लोग उस समय अंग्रेजों द्वारा आरोपित आधी-अधूरी औपनिवेशिक संरचना की मातहती स्वीकारते थे और अंग्रेजों की प्रगतिशीलता के कायल थे, उन्होंने अंग्रेजों के प्रति तटस्थता या समर्थन का रुख अपनाया। वे मानते थे कि अगर यह लड़ाई सफल हुई तो भारत फिर से अन्धकार युग में चला जायेगा। इसीलिए उन्होंने मद्रास, मुम्बई और कलकत्ता में सभा करके 1857 के संग्राम का विरोध करते हुए प्रस्ताव पास किया और अंग्रेजी सेना की विजय के लिए प्रार्थना की। उनमें से कई लोग ईमानदार थे और अपनी सोच की तत्कालीन सीमाओं के चलते उन्होंने गलत अवस्थिति अपनायी थी। ज्योतिबा फुले भी उनमें से एक थे। दूसरी ओर ढेर सारे परम्परावादी और धार्मिक हिन्दू-मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने इस संग्राम का समर्थन किया और कुछ ने उसमें प्रत्यक्ष भागीदारी भी की। इन दोनों ही तरह के लोगों की अपनी सकारात्मकता और नकारात्मकता थी। आज डेढ़ सौ साल बाद उस घटना का सिंहावलोकन करते हुए हम उनकी गलतियों के स्रोत का पता लगा सकते हैं। यही बात स्वतन्त्रता संघर्ष के अन्य नायकों पर भी लागू होती है। विरासत का अर्थ नीरक्षीर विवेक करना होता है, पूरी तरह स्वीकारना या नकारना नहीं। लेकिन दु:ख की बात है कि ढेर सारे लोग आज भी वहीं खूँटा गाड़ के खड़े हैं जहाँ डेढ़ सदी पहले हमारे पुरखे अपनी ऐतिहासिक सीमाओं के साथ खड़े थे। यह अनैतिहासिक दृष्टिकोण त्याज्य है।

अंग्रेजों के प्रति भ्रम का शिकार कोई व्यक्ति 1857 में उनकी प्रगतिशीलता से अभिभूत हो कर उपनिवेशवादियों का समर्थन करे यह बात समझ में आती है क्योंकि सम्भव है कि भविष्य में अंग्रेज क्या करेंगे, इसके बारे में उन्हें अनुमान न रहा हो। लेकिन आज उनका भविष्य हमारे लिए अतीत बन चुका है, जिसे हम यथातथ्य समझ सकते हैं और इसके बारे में सही राय बना सकते हैं। अंग्रेजी राज के बारे में जिसे थोड़ी भी जानकारी है वह जानता है कि भारत के सन्दर्भ में अंग्रेज लेशमात्र भी प्रगतिशील नहीं थे। बाइबिल और बन्दूक लेकर वे हमें गुलामी में जकड़ने आये थे, हमारा उद्धार करने नहीं। सामन्तवाद को समाप्त करके पूँजीवाद का स्वस्थ विकास करने के बजाय उन्होंने इसका उल्टा ही काम किया। सारे हिन्दुस्तानियों को शिक्षित करना न तो उनका मकसद था और न ही उन्होंने किया। सामन्ती, पितृसत्तात्मक और ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था और मूल्यों-परम्पराओं को ज्यों का त्यों बनाये रखा क्योंकि यह सब उनके औपनिवेशिक शासन को बल प्रदान करते थे। फिर भारत में उनकी प्रगतिशील भूमिका की प्रशंसा में गीत गाने का भला क्या आधार है?

इतिहास के तथ्य तटस्थ होते हैं, उसकी व्याख्याएँ तटस्थ नहीं होतीं। साथ ही, इतिहास हमें वर्तमान को समझने और भविष्य की दिशा तय करने में मदद करता है। आज का दौर 1857 के एक अधिक सुसंगत, सुविचारित और उन्नत संस्करण की माँग कर रहा है। नयी आर्थिक गुलामी के समर्थन और विरोध में ध्रुवीकरण जारी है। 1857 की

नयी-नयी व्याख्याओं का निहितार्थ वर्तमान साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के सन्दर्भ में आसानी से समझा जा सकता है।

आज हमारा देश आर्थिक नवउपनिवेशवादी शिकंजे में कसा जा रहा है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद की कोख से पैदा हुए विकलांग पूँजीवाद द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पिछले 60 वर्षों के दौरान जो आर्थिक-सामाजिक संरचना उभरी, वह एक हद तक आगे बढ़ कर ठहरावग्रस्त हो गयी। पहले ही जर्जर उसी ढाँचे के ऊपर आज साम्राज्यवादी आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था आरोपित की जा रही है। इसके परिणामस्वरूप देश में मेहनतकश वर्गों का जीवन असह्य बोझ से चरमरा उठा है। इसके खिलाफ छिटपुट, स्थानीय और स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों का सिलसिला भी चल पड़ा है। ऐसे में 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की शानदार विरासत को आगे बढ़ाने के लिए इसके सकारात्मक-नकारात्मक अनुभवों से सीखना और उसे व्यवहार के उच्च धरातल पर ले जाना जरूरी है। दुनिया से साम्राज्यवाद का नामोनिशान मिटाने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है। इस ऐतिहासिक कार्यभार का एक अत्यन्त जरूरी हिस्सा उपनिवेशवादी नजरिये से लड़ना है जो भारतीय जनमानस को अकर्मण्य, यथास्थितिवादी और परमुखापेक्षी बनाता है। ▣

गौरांग महाप्रभुओं की दरिन्दगी

पिछले दिनों ब्रिटेन में गुलामों के व्यापार का अन्त किये जाने की 200वीं सालगिरह मनायी गयी। इस अवसर पर तरह-तरह के आयोजन करके यह बताया गया कि इंग्लैण्ड कितना महान है जिसने गुलामों के व्यापार का खात्मा कर दिया। इस सदाशयता के पीछे इस वीभत्स और घृणित सच्चाई को छिपाना मुमकिन नहीं कि यह वही ब्रिटेन है जिसने 300 सालों तक गुलामों का व्यापार किया और उसी के दम पर मालामाल होता रहा। हुक्म बजाने में जरा सी देर होने, आनाकानी करने या थोड़ा सा प्रतिरोध करने पर उन गुलामों के ऊपर बेरहमी से कोड़े बरसाये जाते थे और यहाँ तक कि उनके हाथ-पैर और यौन अंग भी काट लिये जाते थे।

आगे चलकर उसी इंग्लैण्ड में जब गुलामों के वंशजों को कुछ सुविधाएँ मिलने लगीं तो उन पर हीन भावना से ग्रसित करने वाले फिकरे कसे जाते थे। उन्हें गलत बातें पढ़ायी जाती थीं और उन्हें 'समस्याग्रस्त' विद्यार्थी माना जाता था। कानून ऐसा था कि थोड़ा सा भी सन्देह होने पर पुलिस उन्हें जेल में ठूँस देती थी। इसी कानून के तहत लन्दन की एक अश्वेत बस्ती में पुलिस ने ''स्वाम्प-81'' अभियान चला कर ढेर सारे बेकसूर लोगों को गिरफ्तार किया था। इस घटना की प्रतिक्रिया में पूरे देश में दंगा फैल गया था।

गुलामी प्रथा शुरू होने के कुछ ही समय बाद गुलामों ने व्यक्तिगत स्तर पर और सामूहिक रूप से विद्रोह करना शुरू कर दिया था। विद्रोह के ''जुर्म'' में उन्हें क्रूरतापूर्ण यातनाएँ दी जाती थीं, फिर भी गुलामों का प्रतिरोध नहीं थमा। अन्त में गुलामी प्रथा और गुलामों का व्यापार खत्म करना पड़ा।

लन्दन के मेयर ने हाल ही में एक लेख लिखा जिसमें गुलामों पर किये गये बर्बर अत्याचारों के कुछ दृष्टान्त दिये गये हैं। उसने लिखा है कि अनुमानत: डेढ़ से तीन करोड़ गुलामों को विभिन्न देशों से लाकर उनकी खरीद-फरोख्त की गयी। गुलाम बनाये जाने के बाद से ही उनकी मौत का सिलसिला शुरू हो जाता था। लगभग 5 फीसदी तो यात्रा शुरू होने से पहले कैद में ही दम तोड़ देते थे जबकि 10 फीसदी से भी ज्यादा समुद्री यात्रा के दौरान मर जाते थे। लगभग 20 लाख गुलामों को सीधे कत्ल कर दिया गया था। जमैका के एक अंग्रेज प्लाण्टर ने अपने एक गुलाम को एक गन्ना चूसने के जुर्म में कोड़े लगाये, उसके घाव पर सिरका डाला और अपने लठैत से उसके मुँह में पखाना करवाया। 1750 तक अमरीका और यूरोप में अश्वेत होने का मतलब गुलाम होना था। 1774 में जमैका के इतिहास में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि ''अश्वेत गुलाम एक अलग प्रजाति के हैं जो बहुत घपलेबाजी और बेढंगेपन से काम करने वाली और औरांग उटांग से भी गयी गुजरी है।''

गुलामों का व्यापार दुनिया को सभ्य बनाने के नाम पर गौरांग प्रभुओं द्वारा दुनिया में ढाये गये वहशियाना जुल्मों की ही एक बानगी है। इस वीभत्स और घिनौने इतिहास के धब्बे इंग्लैण्ड के चेहरे पर आज भी मौजूद हैं। अभाव और वंचना के दलदल में धकेल दिये गये ब्रिटेन के लाखों अश्वेत बाशिन्दे साम्राज्यवादियों द्वारा अतीत में किये गये अपराधों का जिन्दा सबूत हैं। गुलामी के खात्मे की 200वीं सालगिरह के जलसों ने इस पर परदा डालने के बजाय इस सच्चाई को और अधिक उभारने का ही काम किया है कि साम्राज्यवादियों का इतिहास दरिन्दगी और कत्लोगारत का नापाक दस्तावेज है।

सुनो प्रधानमन्त्री!

■ दिगम्बर

इस सादगी पे कौन न मर जाये ए खुदा,
करते हैं कत्ल, हाथ में तलवार नहीं है।

जनाब प्रधानमन्त्री, 24 मई को सरमायादारों के संगठन भारतीय उद्योग परिसंघ के सालाना जलसे में आपके भाषण पर काफी बावेला मचा। आपने यही तो फरमाया था कि जब मैं पढ़ता हूँ कि देश में करोड़पतियों की तादाद बढ़ रही है, भारतीय कम्पनियाँ विदेशी कम्पनियों को खरीद रही हैं, हवाई अड्डों पर रेलमपेल मची है, बड़ी संख्या में हमारे देशवासी अब विदेशी ऐशगाहों पर छुट्टी मनाने जा रहे हैं, जमीन-जायदाद की कीमतों में उछाल आ रहा है, कम्पनियों के आला अफसरों की तनख्वाहें आसमान छू रही हैं, तो मैं समझता हूँ कि विकास के नये सिलसिले और तौर-तरीकों से आप लोगों ने भरपूर फायदा उठाया है। अब समय आ गया है कि आप अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को समझें।

आपने सरमायादारों को सलाह दी कि वे लोग अपनी मुनाफाखोरी की हवस को शराफत और लालच की एक सीमा के भीतर रखें और कार्टेल बनाने जैसी मुजरिमाना हरकतों से कीमतों को इतना न चढ़ा दें कि लोगों का जीना दूभर हो जाये। उन्हें ये हिदायत दी कि तड़क-भड़क वाली पार्टियों में आप अपनी दौलत और शानोशौकत की जो नुमाइश करते हैं, वह गरीब लोगों का अपमान है। यह सामाजिक अशान्ति को बढ़ाता है। धनवान और मशहूर लोगों की आलीशान जिन्दगी की झलक टीवी के जरिये घर-गाँव और झोंपड़पट्टियों तक पहुँचती है और लोगों के दिमाग में विक्षोभ के बीज बोती है। आपने उनकी दस सामाजिक जिम्मेदारियाँ गिनवायीं जिनमें मजदूरों की भलाई पर पैसा खर्च करने, अपनी सामाजिक जिम्मेदारी एक बार फिर तय करने, दलितों और पिछड़ों को अधिक नौकरियाँ देने, भ्रष्टाचार से लड़ने, रिश्वत देकर काम करवाने से बाज आने और अपनी और अपने आला अफसरों की तनख्वाहें कम करने जैसी बातें शामिल थीं।

आपके भाषण पर सरमायादारों और उनके चाकर अखबारनवीसों ने काफी बावेला मचाया हालाँकि आपने न तो उन्हें भड़काने वाली कोई बात की, न कोई चेतावनी दी, न कोई कड़वी आलोचना की, और न ही किसी ठोस कार्रवाई की ओर इशारा किया। भला ऐसा क्या कहा था आपने? जाने-पहचाने मधुर लहजे में कुछ मीठी शिकायतें, कुछ दोस्ताना गुजारिशें और भविष्य की चिन्ता में रोना-धोना! आपके कहने का मतलब यही था कि लालच करो लेकिन इतनी बेहयाई और फूहड़पन के साथ मत करो। जनता को लूटो लेकिन इतना मत लूटो कि उसके सब्र का बाँध टूट जाये और वह इस लूट के ताने-बाने को ही छिन्न-भिन्न कर दे। लेकिन धर्मोपदेशक और समाज सुधारक की मुद्रा में आप उन्हें एकदम पसन्द नहीं आये जनाब!

वे बौखला उठे। लेकिन सरमायादारों से भी ज्यादा नाराज थे उनके जरखरीद खबरनवीस। कलम, कैमरा लेकर वे मुस्तैदी से मैदान में आ डटे। सम्पादकीय, हेडलाइन, परिचर्चा, बहस, हर जगह आपका भाषण छाया रहा। जिसे देखिये वही आप पर आगबबूला। ज्यादातर का यही तेवर कि भला ऐसी बातें किसी प्रधानमन्त्री को शोभा देती हैं। वह भी ऐसे दौर में जब सुधारों का घोड़ा सरपट भाग रहा हो। एक अंग्रेजी अखबार तो आपके भाषण से इतना नाराज था कि उसने मुम्बई में बड़े-बड़े इश्तहार लगवा दिये – ''प्रधानमन्त्री पहले तो कम्पनी के आला मैनेजरों (सी.ई.ओ.) से कौम के लिए दौलत पैदा करवाना चाहते हैं, इसके बाद वे चाहते हैं कि लोग अपनी तनख्वाहों में कटौती करें।'' (सचमुच कितना बड़ा अन्याय!) हाँ, कुछ एक सरमायादार घरानों ने शराफत

का परिचय दिया। आपकी बात को जायज ठहराया लेकिन कुछ समय और इन्तजार करने को कहा। बहरहाल, अखबारों और टीवी पर छिड़ी इन गरमागरम बहसों का निचोड़ था – क्या अब प्रधानमन्त्री तय करेगा कि पूँजीपति घरानों के मालिक और मैनेजर कितनी तनख्वाह लें! वैसे सच्चाई यही है कि ऊँची तनख्वाहों पर लगी सीलिंग आपने ही हटायी थी।

भाषण वाली घटना के दूसरे दिन एक टीवी कार्यक्रम में आपके भरोसेमन्द साथी, योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोण्टेक सिंह अहलूवालिया को पत्रकारों ने घेर लिया। वे हकलाते हुए कहने लगे कि प्रधानमन्त्री की बात अपनी जगह... कि अमरीका में भी तो यही बहस छिड़ी है ... कि तनख्वाहें तो ज्यादा हैं ही...लेकिन ऐसी बातों का कोई फायदा नहीं है... वगैरह-वगैरह और अन्त में उन्होंने आश्वस्त किया कि मालिकों-मैनेजरों की सुविधाओं और उनकी तनख्वाहों की कोई सीमा तय करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है।

शानोशौकत की नुमाइश! जनाब प्रधानमन्त्री, कुछ महीने पहले राजधानी के ताज पैलेस होटल में एक नामचीन अंग्रेजी अखबार ने विलासिता सम्मेलन आयोजित किया था। ऐयाशी के सामान बनाने और बेचने वाली दुनिया भर की कम्पनियों के मालिक और फैशन जगत की मशहूर हस्तियाँ वहाँ भारत के नौदौलतिये 'महान मध्यवर्ग' को विलासिता का पाठ पढ़ाने और फिर उस विलासिता को मुनाफे में ढालने की कीमियागिरी करने पहुँची थीं। विलासिता के उस आलीशान जलसे में आपके वाणिज्य मन्त्री कमलनाथ ने वहाँ मौजूद देशी-विदेशी मेहमानों को गर्व से बताया कि ''भारत के ऊपरी तबके के 20 लाख परिवारों की सालाना आमदनी 40 लाख रुपये से ज्यादा है। आप बिल्कुल सही जगह और सही समय पर पहुँचे हैं। भारत आपका आवाहन कर रहा है।'' फ्रांस की विदेशमन्त्री भी वहाँ मौजूद थीं। उसने कहा कि ''जिस देश में 30 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे हों, वहाँ विलासिता सम्मेलन हो रहा है ...हर चीज में नुक्स निकालने और शक करने वाले इस बात पर ताज्जुब करेंगे लेकिन विलासिता गरीबी की विरोधी नहीं बल्कि असभ्यता की विरोधी है।'' लेकिन जनाब, आपने तो अपने भाषण में उल्टी ही बात कही थी – शानोशौकत और फिजूलखर्ची से परहेज की बात। क्या उस समय मध्यवर्ग की क्रयशक्ति, विदेशी निवेश, विदेशी मुद्रा, विलासिता का बाजार, विकास दर जैसी बातें आपके दिमाग से गायब हो गयीं थीं।

सच तो यह है कि आपकी मेहरबानी से ही देश भर में शॉपिंग माल और मशहूर लक्जरी ब्राण्ड आइटमों की विदेशी दुकानें कुकुरमुत्ते की तरह उग रही हैं। एक ब्राण्ड वाली विदेशी खुदरा दुकानों को 51 फीसदी मालिकाने के साथ देश में धन्धा करने की मंजूरी क्या बिना आपकी जानकारी के दी गयी? और मेकडोनाल्ड, बारिस्ता और केण्टुकी जैसे विदेशी रेस्तराँ और तरह-तरह की विदेशी मोटर गाड़ियाँ और विदेशी शराब जिन्हें सस्ता और सुलभ बनाने के लिए हाल ही में आप लोगों ने आबकारी शुल्क और सीमा शुल्क में भारी छूट दी?

शानोशौकत की नुमाइश! जनाब प्रधानमन्त्री, आपके ये मानसपुत्र, आर्थिक अनियन्त्रण के जमाने में बेलगाम, बेरोकटोक दौलत बटोरने वाले ये धनाड्य जितने बदमिजाज और बेकाबू हैं, उस हिसाब से आपकी शिकायत का लहजा बेहद नरम और नफासत भरा था। दौलत और शानोशौकत की उनकी नुमाइश सिर्फ शादियों और पार्टियों तक ही सीमित नहीं है जनाब! फेहरिस्त जितनी लम्बी है उतनी ही शर्मनाक! खास मेहमानों के लिए आयोजित आधी रात की एक शानदार महफिल में एक मधुबाला (जेसिका लाल) को वे इसलिए गोली मार देते हैं कि उसने उनके हुक्म की तामील नहीं की और आपका कानून उनका कुछ नहीं बिगाड़ता। नशे में धुत्त अपनी तेजरफ्तार, बेशकीमती विदेशी मोटर गाड़ियों से वे आधे दर्जन लोगों को कुचल कर मार डालते हैं और करोड़ों रुपये फेंक कर गवाहों, वकीलों, पुलिस अधिकारियों, यहाँ तक कि न्यायाधीशों को भी खरीदकर बाइज्जत बरी हो जाते हैं। वे राजधानी की सड़कों पर किसी राह चलती औरत को अपनी गाड़ी में खींचकर उस पर वहशियाना जुल्म ढाते हैं और पुलिस को इसका सुराग तक नहीं मिलता। उनके फार्म हाउस राजा-महाराजाओं और नवाबों के हरम और ऐशगाहों को भी मात देने वाले हैं। वे निठारी जैसे वीभत्स और जघन्य अपराधों को अंजाम देते हैं और इल्जाम किसी गरीब, छोटे अपराधी पर डाल देते हैं।

एक आप हैं कि उन्हें शराफत और तहजीब का पाठ पढ़ाते हैं और वे हैं कि आपको अपनी औकात में रहने की सलाह देते हैं।

अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई! आपकी मेहरबानी से भारत आज अरबपतियों की तादाद के मामले में दुनिया का चौथा देश हो गया। साम्राज्यवादी देश जापान में 24 अरबपति हैं जबकि इस गरीबों-कंगालों-फटेहालों के देश में 36

अरबपति। राष्ट्रीय आय का एक तिहाई से भी ज्यादा हिस्सा इन 36 लोगों की तिजोरियों में है। चार करोड़ से ऊपर की आमदनी वाले एक लाख परिवारों की कुल सम्पत्ति राष्ट्रीय आय के आधे से भी ज्यादा है। दूसरी ओर भारत के किसान परिवारों का हर माह हर व्यक्ति औसत खर्च 503 रुपये यानि गाँव की गरीबी रेखा से थोड़ा ही ज्यादा है।

आपने सही फरमाया कि पूरी दुनिया में ही अमीरी और गरीबी के बीच खाई लगातार चौड़ी होती जा रही है। अमरीका के सबसे अमीर और सबसे गरीब की आय में फर्क 1990 में 107 गुणा था, वह आज बढ़कर 411 गुणा हो गया है। लेकिन हमारे देश के सरमायादारों और उनके आप जैसे मुहाफिजों ने तो हद ही कर दी। एयरटेल के सुनील मित्तल और हीरो होण्डा के पवन मुंजाल की सालाना तनख्वाह 12.68 करोड़ और 15.22 करोड़ की तुलना आप एक मजदूर की 100 रुपये दिहाड़ी से करें तो पायेंगे कि सुनील मित्तल की मजदूरी उनसे 3473 गुणा और पवन मुंजाल की 4169 गुणा है। मतलब यह कि इन सरमायादारों की एक साल की कमाई की बराबरी करने के लिए एक मजदूर को 4000 साल तक खटना होगा! अमरीका में गैर बराबरी की खाई 411 गुणा होने पर वहाँ बहस छिड़ गयी और हमारे देश में 4000 गुणा के अन्तर पर आपने शिकायती लहजे में कुछ कहा नहीं कि सरमायादारों ने बवण्डर मचा दिया। वे खुदगर्जी में अन्धे हो गये हैं। **आपकी जायज चिन्ता को समझने के बजाय वे बौखला रहे हैं। वे नहीं जानते कि आप उनके हक में दूर तक की सोचते हैं। आपने ही इन्हें छुट्टे साँड की तरह देश को चरने दिया। और अब आपको इस बात की फिक्र है कि डायनासोर की ये नयी नस्लें कहीं अपने ही बोझ से मर कर इस जहान से गायब न हो जायें।**

और तो और अब देश के सरमायादार भ्रष्टाचार रोकेंगे! खेत की रखवाली छुट्टे साँड करेंगे! क्या आपको पता नहीं कि आर्थिक सुधारों और भ्रष्टाचार के बीच अटूट रिश्ता है? पिछले सत्तरह वर्षों के दौरान भ्रष्टाचार और घोटालों की विकास दर आर्थिक विकास की दर से कई-कई गुना तेज रफ्तार से बढ़ी है। अखबारों की रिपोर्टों और टीवी के स्टिंग ऑपरेशनों ने भ्रष्टाचार को काफी दिलचस्प बना दिया है। अब तो लोगों को हर रोज इसका इन्तजार रहता है और उन्हें ताज्जुब होता है कि पिछले कुछ दिनों से कोई बड़ा तहलका सामने नहीं आया। कॉरपोरेट फिल्म में जो कुछ दिखाया गया है, वह तो सच्चाई का एक बहुत ही छोटा अंश है। हैरत की बात है कि रिश्वतखोरी से आप वाकिफ हैं, फिर भी इसके खिलाफ कड़े कदम उठाने के बजाय आप उनसे गुजारिश कर रहे हैं कि मेहरबानी करके रिश्वत देकर काम मत करवाइये। क्या सचमुच आप इतने भोले हैं जनाब!

अब कुछ बातें इन्क्लूसिव ग्रोथ, यानि समावेशी विकास, यानि आर्थिक विकास में आम आदमी को भी शामिल करने के बारे में – जो आपके भाषण का मुख्य विषय था।

'समावेशी विकास' के मुहावरे को उछालने की जरूरत आखिर क्यों पड़ी? चलो आपने यह माना तो कि अब तक के विकास में सबको शामिल नहीं किया गया था, यानि अभी तक 'असमावेशी' विकास होता रहा। अधिकांश लोगों को फालतू मानकर उन्हें विकास की दहलीज से बाहर रखा गया। लेकिन क्या यह अपने आप हो गया? रोजगारपरक विकास को बढ़ावा देने की बात आपको अब सूझी। पिछले 16 वर्षों से आपकी आर्थिक नीतियों की आलोचना में यह बात कही जाती रही है कि यह रोजगार विहीन, बल्कि रोजगार का नाश करने वाला विकास है, कि उत्पादक कार्रवाइयाँ दिनों दिन खटाई में पड़ रही हैं और गैरउत्पादक कार्रवाइयाँ तेजी से उनकी जगह लेती जा रही हैं। देश की समूची अर्थव्यवस्था में जब कृषि और विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) के बजाय सट्टेबाजी और सेवाक्षेत्र की हिस्सेदारी लगातार बढ़ रही हो तो भारी संख्या में लोगों को हाशिये पर फेंका जाना, अर्थव्यवस्था से बाहर किया जाना लाजिमी है। लेकिन उस वक्त आप उन आलोचनाओं पर कान देने के बजाय सुधारों की रफ्तार को और तेज करते जा रहे थे।

अभी कल तक आपकी आर्थिक नीतियों की कामयाबी और विकास का पैमाना क्या था? शेयर बाजार का सूचकांक! 1991 में आपके वित्तमन्त्री बनने के पहले शेयर सूचकांक सैकड़ों में था, फिर हजारों हुआ और हजार-हजार का आँकड़ा पार करते हुए अब 14-15 हजार तक पहुँच गया है। जब आप राजनीति के अखाड़े में उतरे उससे पहले, खास तौर पर हर्षद मेहता के कारनामों से पहले शेयर बाजार में भला कितने लोगों की दिलचस्पी थी? आपकी नीतियों से फायदा उठाने वाले सट्टेबाज और खुद आप भी क्या सट्टेबाजी में होने वाले इस इजाफे से गदगद नहीं थे?

इसी मई महीने में खबर आयी कि शेयर बाजार में उछाल के चलते शेयर धारकों को 4 लाख करोड़ की

आमदनी बिना हाथ-पाँव हिलाये हुई, बिना उत्पादन की किसी कार्रवाई में शामिल हुए।

चार करोड़ रुपये से अधिक सालाना आमदनी वाले भारतीय अमीरों की संख्या पिछले साल 83 हजार थी जो अब बढ़कर एक लाख हो गयी है। क्या इसमें सट्टेबाजी का कोई हाथ नहीं?

मुकेश अम्बानी हाल-फिलहाल एक लाख करोड़ रुपये के मालिक बन गये, मीडिया ने बड़े गर्व के साथ और काफी जोरदार तरीक से इसे प्रसारित किया। कैसे बने, क्या आपको नहीं पता?

शेयर बाजार में पैसा लगाने वाली दलाल कम्पनियों के म्यूचुअल फण्ड की कुल परिसम्पत्ति चार लाख करोड़ का आँकड़ा पार कर गयी। आपके प्रादुर्भाव से पहले उनकी औकात क्या थी? आपकी नीतियों से फलने-फूलने वाले लोग जो म्यूचुअल फण्ड में पैसा लगाते हैं, कुछ साल पहले तक उनमें से कितनों की जेब में कितना पैसा था? आपकी नजरेइनायत से ही उनकी तरक्की हुई है जनाब!

इन मुट्ठीभर लोगों को करोड़पति-अरबपति बनाने में कितने करोड़ लोग बदहाली और लाचारी की दलदल में धकेले गये होंगे, कितनों का खून-पसीना निचोड़ा गया होगा? आप तो जानते ही हैं कि बिना श्रम किये कोई सम्पदा पैदा नहीं होती। एक तरफ सट्टेबाजी को बढ़ावा देना और दूसरी तरफ समावेशी विकास की खुशनुमा लुभावनी बातें। ठट्ठा मार के हँसना और मुँह फुलाना – दोनों काम एक साथ कैसे करेंगे आप?

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में सरमायादारों में यह रुझान काफी तेजी से बढ़ता जा रहा है कि उत्पादन की कार्रवाइयों में पूँजी लगाने, रोजगार के अवसर पैदा करने, उत्पादन बढ़ाने और देश-समाज की वास्तविक तरक्की करने के बजाय शेयर बाजार या जमीन जायदाद में पूँजी लगाकर जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाओ। अमरीका और दूसरे साम्राज्यवादी देशों से शुरू हुई यह बीमारी अब पूरी दुनिया में अपना असर जमाती जा रही है। आपके बस में हो तो इस मनोवृत्ति पर लगाम लगाइये, वरना चुप मार कर बैठिये। आम जनता इसका कुछ हल ढूँढेगी, जैसी आपने अपने भाषण में आशंका भी जाहिर की थी। सरमायादारों के आगे गिड़गिड़ाकर, पादरी-पुरोहित की तरह उन्हें नेकनीयती और शराफत की नसीहत देकर, उनके रहमोकरम और इमदाद से मेहनतकश जनता की भलाई की बात करके इस देश के करोड़ों लोगों को जलील मत कीजिये। लोगों की नफरत और उनके गुस्से पर ठण्डी फुहार छोड़कर सरमायादारों को महफूज रखने की आप नाहक कोशिश कर रहे हैं जनाब!

अब तक हमने आपकी नीतियों में समावेशित और उससे फायदा उठो चुके चन्द लोगों की बात की। अब उन करोड़ों लोगों के हालात पर भी एक नजर डाली जाये जिन्हें आपने इस तरक्की के चौखटे से बाहर रखा।

आपकी नयी आर्थिक नीति के लागू होने के बाद से देश में रोजगार के नये अवसर पैदा होने के बजाय जीविका के पुराने साधन भी नष्ट होते गये। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक 2004-05 में देशभर में काम करने वाली उम्र के 58 फीसदी लोग बेरोजगार थे। यह छोटी सी एक बात ही करोड़ों लोगों की बदहाली और बदकिस्मती की कहानी कह देती है। जिन लोगों के पास जिन्दा रहने के लिए अपनी मेहनत बेचने के सिवाय कोई चारा नहीं, उनके लिए बेरोजगारी का क्या मतलब है इसे वही समझ सकता है जिसने खुद बेरोजगारी की मार झेली हो। भूख, कुपोषण, कलह-विग्रह, अपमान, लाचारी और मौत! आज देश भर में आप ये दर्दनाक मंजर देख सकते हैं – गाँव की गरीब बस्तियों और शहरों की झोंपड़पट्टियों में, जिनकी ओर इशारा करके आप सरमायादारों को डरा रहे थे।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट बताती है कि भारत में 1990 से 2002 के बीच मजदूरों की उत्पादकता 80 फीसदी बढ़ी है लेकिन उनकी वास्तविक आमदनी में 20 फीसदी की गिरावट आयी है। मतलब बिल्कुल साफ है – उन्हें कम से कम मजदूरी देना और बदले में ज्यादा से ज्यादा काम लेना। राजधानी के चारों ओर जो फैक्ट्री-कारखाने आबाद हैं, उनमें जाकर वहाँ काम करने वाले मजदूरों की हालत देखिये। हर महीने 2-3 हजार तनख्वाह देकर मजदूरों से 12-14 घण्टे काम लिया जाता है, न कोई सेवा शर्त, न नौकरी की गारण्टी। करोड़पति कैसे पैदा होते हैं और उनकी ऐयाशी भरी जिन्दगी किनके दम पर टिकी है? जवाब है – नरक को भी मात देने वाली इन फैक्ट्रियों में दिन-रात खट रहे मजदूरों के दम पर।

आपके कृषि मन्त्री ने खुद कबूल किया है कि पिछले 10 वर्षों में डेढ़ लाख से ज्यादा किसानों ने खुदकुशी की है और यह सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। खेती और किसानों के मसले को समझने के लिए आपने कृषि आयोग का गठन किया। उसने

अपनी रिपोर्ट पेश की। उसकी सिफारिशों से किसानों की तकदीर पूरी तरह भले ही न बदलती लेकिन फिर भी उनके लिए राहत की काफी गुंजाइश थी। लेकिन हुआ क्या? आपने उस रिपोर्ट को कूड़ेदान में फेंक दिया क्योंकि आयोग की सिफारिशें आपकी पूँजीपरस्त आर्थिक नीतियों से टकरा रही थीं। कोढ़ में खाज यह कि आपने ठेका खेती-कॉरपोरेट खेती की माला जपते हुए खेती और खेतिहर आबादी को देशी-विदेशी मगरमच्छों के खुले जबड़ों के आगे फेंक दिया। आप किन चीजों को ज्यादा तरजीह देते हैं जनाब!

हथियारों की खरीद और रक्षा बजट के मामले में आपने इस देश को दुनियाभर में तीसरे पायदान पर पहुँचा दिया और भुखमरी में सूडान, युगाण्डा, कांगों और सोमालिया की कतार में ले जाकर खड़ा कर दिया। आपको तो पता ही है कि दुनिया के कुल भूखे लोगों में से आधे, 38 करोड़ लोग भारत में हैं। 1940 में अंग्रेजों के राज में, जब अकाल और भुखमरी का राज था, तब इस देश में हर आदमी पर जितना अनाज हासिल था, आज उतना भी मयस्सर नहीं। बच्चों के कुपोषण के मामले में 122 देशों में भारत का 119वाँ स्थान है। इससे खराब हालत केवल तीन देशों की है।

गरीबों की तादाद कम बताने के लिए आपकी सरकार आँकड़ों में गोलमाल करती है। फिर भी सरकारी बहीखातों में 30 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे दर्ज हैं। अगर सरकारी पैमाने के मुताबिक हर रोज कम से कम जरूरी खाना-खाने (2400 कैलोरी) के लिए कितना पैसा खर्च होता है और लोगों की आमदनी कितनी है उसके हिसाब से देखें, तो सही मायने में देश में 70% लोग गरीब हैं।

उत्तराखण्ड सरकार की एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछले पाँच साल में वहाँ गरीबों की तादाद बढ़कर दोगुनी हो गयी है। गाँव में रहने वाले 13 लाख 21 हजार लोगों में से लगभग आधे, 6 लाख 24 हजार लोग आप लोगों द्वारा खींची गयी गरीबी रेखा से नीचे हैं। वैसे तो आपकी गरीबी की रेखा भी एक धोखा है और सही मायने में यह अब तक 'जो मर नहीं पाये' या 'जिन्दा बचे रह गये' उन लोगों की रेखा है। 425 रुपये या उससे भी कम मासिक आय पर गुजर-बसर करने वालों को आप गरीब बताते हैं!

मुख्तसर बात यह है कि भारत के 85 करोड़ मेहनतकश लोग दिन-ब-दिन जहन्नुम की ओर धकेले जा रहे हैं। उनके लिए न रोजगार है, न शिक्षा, न इलाज। देश में साधनों की कमी नहीं, फिर भी लोग तंगहाल हैं। कुछ लोगों के लिए महँगे से महँगे स्कूल हैं जबकि करोड़ों बच्चे बुरे से बुरे माहौल में काम करने, कूड़े के ढेर से कचरा चुनने और भीख माँगने के लिए मजबूर हैं। देश में बढ़िया से बढ़िया अस्पताल हैं जहाँ खतरनाक बीमारियों का इलाज मुमकिन है और जिनमें सस्ता इलाज करवाने विदेशों से भी मरीज आ रहे हैं लेकिन अपने देश के गरीब रोगियों का वहाँ जाना मना है। जिन बीमारियों का इलाज बड़ी आसानी से हो सकता है, वह भी उन्हें मयस्सर नहीं होता और वे इलाज के बिना ही मर जाते हैं। लगातार नरक में तब्दील होती देश की एक बड़ी आबादी की यह एक बहुत ही छोटी सी झलक है। असली तस्वीर का कैनवास इतना बड़ा, इतना हौलनाक है कि उसे पूरी तरह उकेरना हमारे लिए मुमकिन नहीं।

इस नरक के सिरजनहार आप हैं प्रधानमन्त्री!

1990 में जब आपने अपनी नयी आर्थिक नीतियों का धमाकेदार ऐलान किया था तब आपने देश की जनता को बेल्ट टाइट करने का पैगाम दिया था। हमने अपनी बेल्ट, नाड़े, धोती, तहमद जो भी जिसके तन पर था, कस लिया। आपने कहा कि आयात-निर्यात खोलने से, देश में विदेशी पूँजी लगने से, शेयर बाजार में उछाल आने से, विकास दर बढ़ने से हमारी जिन्दगी में खुशहाली आयेगी। हम लोगों ने हर बार आप पर भरोसा किया, लेकिन नतीजा कुछ नहीं। आपने कहा कि सरमायादारों की दौलत 'ट्रिकिल डाउन' होकर, यानि रिस-रिसकर नीचे की ओर आयेगी और तब हमारी भी दुनिया रोशन होगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि आप ही की मदद से उन्होंने रिसाव के छोटे से छोटे छेद भी मूँद दिये।

आपका नया सब्जबाग! सरमायादारों की महफिल में भाषण कि देश में गरीबी-अमीरी की बढ़ती खाई को पाटने के लिए अपने सामाजिक सरोकारों को समझो, लुटेरे-शोषक सरमायादार भाइयो! हमारे साथ होने वाले बेरहम और बेहूदा मजाक की ये हद है। आपकी इन अदाओं ने लाखों लोगों को वक्त से पहले ही मौत के मुँह में पहुँचा दिया, करोड़ों लोगों को तंगहाली और मुफलिसी के समन्दर में धकेल दिया। इस जहन्नुम को बनाने और बनाये रखने के जिम्मेदार आप हैं।

ईसा मसीह जब सलीब पर चढ़ाये जा रहे थे, तब उन्होंने कहा था – 'प्रभु, इन लोगों को माफ करना क्योंकि ये भोले-भाले लोग नहीं जानते कि ये क्या कर

रहे हैं।' आप साफ सुथरी छवि वाले विद्वान अर्थशास्त्री हैं, मृदुभाषी हैं, और भी बहुत कुछ हैं लेकिन भोले नहीं हैं।

भोले तो हम लोग हैं, इस देश के आम जन जो आस्तीनों में साँप पालते हैं और उनके काटे का जहर उतारने की उम्मीद में उन्हीं के आगे सिर झुकाते हैं।

आप भोले नही हैं प्रधानमन्त्री! इस देश के अनगिनत लोगों के लिए सलीब गढ़ते समय आप अच्छी तरह जानते हैं कि आप क्या कर रहे हैं! वरना सरमायादारों की महफिल में प्रलाप करने और मुनाफे की हवस पर काबू रखने की उनसे गुजारिश करने के बजाय आप उन बिगड़ैल घोड़ों के मुँह में लगाम डालते। उन्हें रिझाने के लिए 'टैक्स होली डे' का तोहफा नहीं देते बल्कि उनपर वाजिब टैक्स लगाते और कड़ाई से वसूलते। उनके भारी भरकम कर्जों की माफी और उन्हें इफरात सब्सिडी देने पर रोक लगाते। मजदूरों के माफिक श्रम कानून बनाते और उन्हें कड़ाई से अमल में लाते। 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' के नाम पर सरमायादारों के लिए किसानों की जमीन से बेदखली और विरोध करने पर उल्टे किसानों पर ही कहर नहीं ढाते। आपके लिए करने को बहुत कुछ है। लेकिन आप ऐसा क्यों करेंगे – आपकी तरफदारी और इतिहास में आपकी जगह तय है। इतिहास इस पर फैसला देगा। यह और बात है कि उस वक्त अपनी सजा कबूलने के लिए आप रहें या न रहें। ▣

विनाशकाले, विपरीत बुद्धि

पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने कहा है कि वामपन्थी बुद्धिजीवी यथार्थ से कटे हुए अकादमिक लोग हैं। उनका इशारा प्रभात पटनायक, उत्सा पटनायक, जयति घोष और सुमित सरकार की ओर था। यही नहीं, उन्होंने वाममोर्चे के अन्य घटक दलों पर भी निशाना साधा कि वे पश्चिम बंगाल में देशी-विदेशी पूँजीपतियों की मदद से उनकी सरकार द्वारा शुरू किये गये औद्योगीकरण का महत्व नहीं समझ रहे हैं और उसका विरोध कर रहे हैं।

दरअसल सिंगुर और नन्दीग्राम में पिछले दिनों वामपन्थी सरकार द्वारा किसानों की जमीन छीनकर पूँजीपतियों को देने के खिलाफ लड़ रहे किसानों पर जिस बर्बरता के साथ कहर ढाया गया, उससे वामपन्थ के समर्थक कई बुद्धिजीवी मर्माहत हुए थे। उन्होंने औद्योगीकरण के नाम पर की जा रही इन दमनात्मक कार्रवाइयों का खुल कर विरोध भी किया था। इन आलोचनाओं से बौखलाये बुद्धदेव भट्टाचार्य दर्पण में अपना विद्रूप चेहरा देखने के बजाय दर्पण को ही तोड़ देने पर आमादा हो गये।

प्रख्यात इतिहासकार सुमित सरकार ने भी सिंगुर और नन्दीग्राम में पुलिस द्वारा बर्बर दमन-उत्पीड़न किये जाने के खिलाफ वामपन्थी सरकार की भर्त्सना की थी। उनके बारे में बुद्धदेव भट्टाचार्य की टिप्पणी थी कि वे भ्रम के शिकार हैं। उनका कहना था कि मैंने सुमित सरकार को पत्र लिखा था जिसका उन्होंने जवाब नहीं दिया। उनका कहना था कि आज अधिकांश बुद्धिजीवी सचमुच भ्रमग्रस्त हैं।

बुद्धदेव भट्टाचार्य ने जोरदार तरीके से इस बात को दोहराया कि वे औद्योगीकरण की अपनी नीतियों से पीछे नहीं लौटेंगे। यही हाल उनकी पार्टी का भी है। व्यवस्था पोषक पार्टी के रूप में वह इतनी दूर जा चुकी है कि उसके पीछे लौटने की अब कोई सम्भावना शेष नहीं। उसके अवसरवाद का ताजा नमूना यह है कि इस पूरे प्रसंग में सीपीएम के भीतर कोई वाद-विवाद नहीं हुआ। एक केन्द्रीय नेता ने इस मुद्दे को सही या गलत बताने के बजाय यह कह कर चलता कर दिया कि ये तो उनका नजरिया है, भला मैं क्या कह सकता हूँ।

भारत के संसदीय वामपन्थ के दिन जल्द ही लदने वाले हैं। सोनिया-मनमोहन की सरकार का पिछलग्गूपन गलत-सही मामले में उनका समर्थन और पश्चिम बंगाल में सरकार का दमनात्मक रवैया दिनों दिन उनके मुखौटे को तार-तार कर रहा है। ऐसे में अपने समर्थक बुद्धिजीवियों की आलोचना सुनने के बजाय बुद्धदेव भट्टाचार्य द्वारा बौखलाहट और बदहवासी में उन्हें ही खरी-खोटी सुनाना 'विनाश काले, विपरीत बुद्धि' वाली कहावत को चरितार्थ करता है।

कौसर बी हत्याकाण्ड

सरकारी आतंकवाद का घृणित चेहरा

■ अरविन्द

22-23 नवम्बर की रात को अहमदाबाद से हैदराबाद जा रही बस को रुकवाकर गुजरात पुलिस के आतंकवाद-निरोधक दस्ते और राजस्थान पुलिस के विशेष कार्यदल के लोगों ने दो लोगों को उतार लिया। इनमें से एक सोहराबुद्दीन था और दूसरा उसका साथी पुलिस का मुखबिर तुलसीराम प्रजापति। सोहराबुद्दीन पर अपहरण और फिरौती माँगने के आरोप थे। जब पुलिस उन्हें ले जाने लगी तो सोहराबुद्दीन के साथ इलाज के लिए हैदराबाद जा रही उसकी पत्नी कौसर बी ने कहा कि वह अपने पति को छोड़ कर नहीं जायेगी। थोड़े पशोपेश के बाद पुलिस उसे भी साथ ले गयी।

सोहराबुद्दीन और कौसर बी को गुजरात आतंकवाद निरोधक दस्ते के डी.आई.जी. वंजारा के एक दोस्त के गाँधीनगर के पास स्थित फार्महाउस पर ले जाया गया। 26 नवम्बर 2005 को एक फर्जी मुठभेड़ में अहमदाबाद के बाहरी इलाके में सोहराबुद्दीन की हत्या कर दी गयी। पुलिस ने बताया कि वह लश्करे तोइबा का आतंकवादी था तथा मोदी और अन्य वरिष्ठ भाजपा नेताओं की हत्या के मिशन पर था। मुठभेड़ के समय वह मोटर साइकिल पर जा रहा था और उसके पास 0.32 बोर की रिवाल्वर थी।

वंजारा के दोस्त के कहने पर कौसर बी को उसके फार्म हाउस से हटाकर भाजपा के अहमदाबाद के एक निगम पार्षद के फार्महाउस पर ले जाया गया। पुलिस की ओर से वहाँ तैनात किये गये सब इंस्पेक्टर चौबे ने उसके साथ बलात्कार किया जिसके चलते कौसर आपे के बाहर हो गयी और पुलिस को उसे काबू करने में दिक्कत होने लगी। तब उन्होंने उसे जहर देकर मार दिया। उसकी लाश को वंजारा के गाँव इलोल लाकर जला दिया गया और राख वंजारा के फार्महाउस स्थित एक कुएँ में डाल दी गयी।

सोहराबुद्दीन के भाई रुबाबुद्दीन ने पहले गुजरात सरकार, गुजरात मानवाधिकार आयोग और फिर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पास मामले की जाँच के लिए दरख्वास्त भेजी लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। उसके मुताबिक उसका भाई अपराधी था पर आतंकवादी नहीं। इसके बाद रुबाबुद्दीन ने सुप्रीम कोर्ट से सोहराबुद्दीन मामले की जाँच और कौसर बी के बन्दी प्रत्यक्षीकरण की अपील की। इसे संज्ञान में लेते हुए सुप्रीम कोर्ट ने गुजरात के डी.जी.पी. को जाँच के लिए निर्देश दिये।

सोहराबुद्दीन का परिवार राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ से जुड़ा रहा है। वे सिन्धिया राजघराने के जागीरदार थे और उन्हें 'ठाकुर' का खिताब मिला था। सोहराबुद्दीन के पिता जनसंघ के जिला अध्यक्ष थे और एक भाई भाजपा का मण्डल उपाध्यक्ष है।

सोहराबुद्दीन गुजरात और राजस्थान के खनन उद्योग और मारबल के काम में लगे व्यापारियों से जबरन वसूली किया करता था। इन्होंने ही सोहराबुद्दीन को मरवाने के लिए 50 लाख की सुपारी दी थी। गुजरात के बागी भाजपा नेताओं के मुताबिक भाजपा के राष्ट्रीय महासचिव ओमजी माथुर ने यह सुपारी ली थी और उन्होंने ही वंजारा के साथ मिलकर इस मुठभेड़ की योजना बनायी थी।

डी.जी.पी. गुजरात ने जून 2006 में सी.आई.डी. क्राइम ब्रांच की आई.जी. गीता जौहरी को जाँच की जिम्मेदारी दी। जौहरी ने दिसम्बर 2006 में जाँच की अन्तरिम रिपोर्ट पेश की जिसमें आतंकवाद-निरोधक दस्ते की कारगुजारियाँ खुलकर सामने आ गयीं। जाँच से पता चला कि फर्जी मुठभेड़ में प्रयुक्त मोटरसाइकिल 25 नवम्बर 2005 को अहमदाबाद में एक घर से चुरायी गई थी। आन्ध्रप्रदेश पुलिस के तीन सब इंस्पेक्टरों ने फर्जी नम्बर प्लेट की गाड़ियाँ और अन्य साजोसामान उपलब्ध करवाये थे जिन्हें इस 'सहायता' के एवज में प्रमोट किया गया। आतंकवाद निरोधक दस्ते के अधिकारियों ने अपनी कारगुजारियाँ छुपाने की भी कोशिश की थी। उदाहरण के लिए आई.पी.एस. पांडयन ने अपने पी.ए. को अपने लिए बुक होटल में ठहराया था और घटना के दिन हैदराबाद से अहमदाबाद रवाना कर दिया था।

जाँच के दौरान गुजरात सरकार में गृह राज्यमन्त्री अमित शाह ने सी.आई.डी. की अपराध शाखा के डी.जी.पी. रायगर को जाँच मुल्तवी करने के लिए कहा और उन्होंने गीता जौहरी को बुलाकर निर्देश दिये। स्क्रुटनी के नाम पर जौहरी से

कागजात ले लिये गये। अमित शाह ने यह भी जानना चाहा कि इस मामले में गवाह कौन-कौन हैं। इसी दौरान जाँच के लिए जा रहे सब इंस्पेक्टर सोलंकी की हैदराबाद यात्रा भी रद्द कर दी गयी। इसके दस दिन बाद वंजारा और पांडयन ने दूसरे चश्मदीद गवाह मुखबिर तुलसी राम प्रजापति को भी फर्जी मुठभेड़ में मरवा दिया क्योंकि उन्हें आशंका थी कि वह पूछताछ में सच उगल सकता है। रुबाबुद्दीन के मुताबिक सितम्बर 2006 में प्रजापति ने उसे बुलाकर सोहराबुद्दीन और कौसर की हत्या के बारे में बताया था और कहा था कि उसकी जान को भी खतरा है। 26 दिसम्बर को पुलिस की कहानी के मुताबिक वह ट्रेन से वापस ले जाये जाते समय रास्ते में फरार हो गया और 28 दिसम्बर को वनस्कंठा जिले में मुठभेड़ में मारा गया। यह वंजारा का इलाका था।

6 मार्च 2007 को गीता जौहरी से जाँच वापस ले ली गयी और रजनीश राय को सौंप दी गयी। रुबाबुद्दीन को भी फोन पर केस वापस लेने के लिए धमकाते हुए कहा गया कि अगर उसने ऐसा नहीं किया तो उसे भी आतंकवादी घोषित कर दिया जायेगा।

रुबाबुद्दीन शेख ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की कि मामले की जाँच सी. बी.आई. से करवायी जाये। इस पर विचार के लिए कोर्ट ने केन्द्र और राज्य सरकारों से सुझाव माँगे। केन्द्र सरकार ने भी सी.बी. आई. जाँच के लिए कहा। गुजरात सरकार ने इसका विरोध किया। जौहरी की रिपोर्ट के चलते गुजरात सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में यह माना कि सोहराबुद्दीन को फर्जी मुठभेड़ में मारा गया था। 24 अप्रैल 2007 को जाँच अधिकारी रजनीश राय ने सोहराबुद्दीन हत्याकाण्ड के सिलसिले में डी.आई.जी. वंजारा, आई.जी. पांडयन और अलवर के आई.जी. दिनेश एम.एन. को अपने ऑफिस में तलब किया और वहीं उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इन गिरफ्तारियों के साथ ही राजनीतिक माहौल गर्मा गया।

राजस्थान के गृहमन्त्री गुलाबचन्द कटारिया ने गाँधीनगर जाकर इस गिरफ्तारी पर अपने गुस्से का इजहार किया। बाद में तीन और सब इंस्पेक्टरों की गिरफ्तारियाँ हुईं जिसके बाद कई पुलिस कर्मी भूमिगत हो गये। 27 अप्रैल को पूछताछ में एक पुलिस अधिकारी ने कौसर बी को मारकर जला देने का अपराध कबूल किया। 10 मई को वंजारा ने भी स्वीकार कर लिया कि उन्होंने कौसर बी को इसलिए मारा क्योंकि वह घटना की चश्मदीद गवाह थी।

4 मई 2007 को राजनीश राय से लेकर जाँच फिर गीता जौहरी को दे दी गयी। अभी तक जो तथ्य सामने आये हैं वे गुजरात और राजस्थान पुलिस की एक बहुत ही जघन्य तस्वीर सामने लाते हैं।

वंजारा और उसके सहअपराधी पुलिस अधिकारियों को अपने धन्धे के लिए इस्तेमाल करते थे। वे उन गैंगस्टरों की सुपारी लेते थे जो उनको पालने वाले नेताओं या पार्टियों के लिए समस्या बनने लगते थे। फिरौती का धन्धा भी बड़े पैमाने पर किया जाता था – किसी को भी उठा लिया जाता था। इनमें से अधिकांश मुसलमान होते थे। उन्हें कई दिनों या हफ्तों तक कैद में रखा जाता था और फिरौती की रकम मिलने या उनके मुखबिर बन जाने पर ही छोड़ा जाता था। मुखबिरों को तैयार करने और फर्जी मुठभेड़ और अपहरण के इस धन्धे को ''आतंकवाद'' मिटाने के नाम पर चलाया जाता था। वंजारा और उसके गैंग के लोग इसे ''देश भक्ति का काम है'' कहकर महिमामण्डित करते थे। वंजारा कहता था ''हम मातृभूमि के देश भक्त बेटे हैं और हमारा जीवन राष्ट्र को आतंकवादियों से बचाने के लिए समर्पित है।''

अक्तूबर 2002 से मई 2007 के बीच गुजरात में 21 लोगों की फर्जी मुठभेड़ में निर्मम हत्या की जा चुकी है। मारे गये लोगों को लश्करे तोइबा, आई. एस.आई. का ''आतंकवादी'' बताया जाता है जो भाजपा नेताओं या मोदी की हत्या करने के मिशन पर निकले हैं।

खासकर मुसलमानों को निशाना बनाने के चलते वंजारा बहुत बदनाम हो चुका था। जब वंजारा अपराध शाखा में वरिष्ठ अधिकारी था, उस दौरान मुम्बई कालेज में बी.एस.सी. की छात्रा इशरत जहाँ को तीन अन्य छात्रों के साथ आतंकवादी बताकर फर्जी मुठभेड़ में मार डाला गया था। यह घटना जून 2004 की है। उसके घरवालों की अपील पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 15 जून 2004 को केरल के प्रवेश कुमार पिल्लै उर्फ जावेद गुलाम मोहम्मद शेख को लश्करे तोइबा का आतंकवादी बताकर फर्जी मुठभेड़ में मार डाला गया। उसके पिता की शिकायत पर गुजरात के मुख्य सचिव ने कोई कार्रवाई नहीं की। केरल सरकार से सी.बी.आई. जाँच की माँग भी बेकार गयी। गुजरात पुलिस ने उल्टे जावेद के पिता और पत्नी को शिकायत करने पर परिणाम भुगतने की धमकी दी। अकेले वंजारा अभी तक ऐसी 9 मुठभेड़ों में 15 आदमियों को मरवा चुका है।

वंजारा, पांडयन और दिनेश गुजरात और राजस्थान में राजनेताओं और कानून की छत्रछाया में अपहरण, फिरौती और सुपारी लेकर हत्या करने का धन्धा चलाने वाले गैंगस्टर थे। इसलिए गीता जौहरी को जाँच के दौरान कदम-कदम पर मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।

भाजपा अपराधी पुलिस अधिकारियों के पक्ष में खड़ी है। वेंकैया नायडू जैसे भाजपा के नेता ने ''फर्जी मुठभेड़'' में सोहराबुद्दीन की हत्या को

सही ठहराया लेकिन कौसर बी की हत्या क्यों की गयी, इसका जवाब नहीं दिया। वंजारा के गाँव में जाँच टीम के साथ गये पत्रकारों पर स्थानीय पुलिस की शह से गाँव के लोगों ने पत्थर बरसाये और थानेदार ने उनकी रिपोर्ट लिखने से इनकार कर दिया। अदालत में वंजारा और उसके साथियों की पेशी के वक्त ''वंजारा समर्थकों'' ने फूलमालाएँ लेकर प्रदर्शन किया और ''फर्जी मुठभेड़'' में ''आतंकवादी'' मारने को 'देशभक्ति' का काम बताया।

राजनीतिक हस्तक्षेप और दबावों के मद्देनजर 17 मई को सुप्रीम कोर्ट ने गीता जौहरी को सीधे सुप्रीम कोर्ट में रिपोर्ट पेश करने का निर्देश दिया। कोर्ट ने कहा कि अपनी कार्रवाइयों के लिए उसे डी.जी.पी. गुजरात से अनुमति लेने की जरूरत नहीं। साथ ही सुप्रीम कोर्ट ने डी.जी.पी. को भी जाँच की कार्रवाई में हस्तक्षेप न करने की हिदायत दी। लेकिन इसके बावजूद राज्य सरकार की ओर से जाँच में रोड़े अटकाये जा रहे हैं। सबूत जुटाने के लिए इस काण्ड में शामिल पुलिस अफसरों से पूछताछ करने और उनको गिरफ्तार करने की जरूरत है पर सी.आई.डी. की अपराध शाखा के डी.जी.पी. इसमें बाधा बन रहे हैं। गुजरात सरकार कहती है कि सुप्रीम कोर्ट का आदेश गीता जौहरी के लिए नहीं बल्कि जाँच एजेन्सी के लिए था इसलिए सी.आई.डी. की अपराध शाखा के डी.जी.पी. माथुर को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। गीता जौहरी कौसर बी की हत्या के समय फार्म हाउस पर मौजूद डी.एस.पी. एन.आर. अमीन को गिरफ्तार करके पूछताछ करना चाहती थी लेकिन डी.जी.पी. ने उसे रोक दिया। इस पर अपने गुस्से का इजहार करते हुए गीता जौहरी ने अपने बॉस को कहा कि या तो वह उन्हें और ज्यादा अधिकार दें या फिर जाँच सी.बी.आई. को सौंप दी जाये।

आतंकवाद निरोधक दस्ते का ड्राइवर भी एक महत्वपूर्ण गवाह है लेकिन वह अपने बयान से मुकर गया है। जाँच अधिकारी अवनीश राय ने उसके बयान की सीडी बनायी हुई थी जिसे देखने से पता चलता है कि उसने किसी दबाव में बयान नहीं दिये थे। 1 जुलाई को इस काण्ड में शामिल सब इंस्पेक्टर चौबे ने गाँधीनगर में आत्मसमर्पण कर दिया। चौबे उस फार्महाउस पर तैनात था जहाँ कौसर बी को रखा गया था और उसने कौसर के साथ बलात्कार किया था। जाँच अभी जारी है।

* * *

सवाल केवल वंजारा और उसके सहअपराधियों को सजा देने का नहीं है और न ही यह परिघटना किसी एक राज्य की पुलिस तक सीमित है। इस मामले में ही तीन राज्यों गुजरात, राजस्थान और आन्ध्रप्रदेश की पुलिस शामिल है। '70 के दशक में नक्सलवाद का दमन करने के नाम पर पुलिस ने हजारों लोगों का कत्लेआम किया था। पंजाब में '90 के दशक में आतंकवादियों के सफाये के नाम पर सिख नौजवानों की एक पूरी पीढ़ी पुलिस की बर्बर हिंसा का शिकार बनी। उत्तर-पूर्व के राज्यों मणिपुर, आसाम वगैरह से लेकर जम्मू कश्मीर तक हर जगह आतंकवादी बताकर निर्दोष लोग मारे जा रहे हैं। जनवरी 2007 में गान्दरबल, जम्मू कश्मीर में सेना और पुलिस ने आतंकवादी बताकर 5 निर्दोष लोगों की हत्या कर दी। ये हत्याएँ पुरस्कार, पदोन्नति या शोहरत वाली पोस्टिंग पाने के लिए की गयी थीं। टाडा और पोटा जैसे कानूनों के जरिये राज्य-व्यवस्था निर्दोष लोगों या अपने विरोधियों को फँसाकर उनका दमन-उत्पीड़न करती है। यह बात आये दिन खबर बनती रहती है।

'आतंकवाद बनाम देशभक्ति' ही वह तर्क है जिसके सहारे इस देश में साम्प्रदायिकता की राजनीति फली-फूली और परवान चढ़ी है। ११ सितम्बर को अमरीका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद से पूरी दुनिया के शासक वर्ग अपनी दमनात्मक कार्रवाइयों और हिंसा को जायज ठहराने के लिए इस तर्क का इस्तेमाल कर रहे हैं। किसी को भी 'आतंकवादी' घोषित करो और फिर चाहे कानून की जितनी धज्जी उड़ाओ, सब जायज है। हमारे देश का शासक वर्ग भला इसमें पीछे क्यों रहेगा। हमारे देश में इसकी पराकाष्ठा गुजरात में दिखायी देती है जहाँ मुख्यमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी पुलिस और काडर का इस्तेमाल करके बड़े पैमाने पर आगजनी-तोड़फोड़ और कत्लेआम करवाया लेकिन इसके बावजूद वह हत्यारा आज भी अपने पद पर बेहयाई के साथ आसीन है। केन्द्र के शासक वर्ग ने इस पूरे हादसे पर मौन साध लिया। यह वही शासक वर्ग है जो अपनी आर्थिक नीतियों का रंचमात्र भी विरोध बर्दाश्त नहीं करता। विरोधी राज्य सरकार या तो बर्खास्त कर दी जाती है, या उसकी आर्थिक सहायता में कटौती की जाती है, या अन्य तरीकों से उस पर दबाव बनाया जाता है लेकिन गुजरात मामले पर उसने कुछ भी नहीं किया क्योंकि यह सब उसके लिए कोई मुद्दा नहीं बनता। वह ऐसी घटनाओं पर न सिर्फ चुप्पी साधे रहता है बल्कि टाडा, पोटा जैसे कानूनों और 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' के नाम पर अपने राज्य आतंकवाद को जायज ठहराता है। तब नरेन्द्र मोदी और उसकी छत्रछाया में वंजारा जैसे भाड़े के हत्यारे पैदा हों तो इसमें क्या आश्चर्य! ▣

निमित्ज का भारत आगमन

आत्मसमर्पण का नया अध्याय

■ शेखर

1-5 जुलाई '07 के बीच परमाणु शक्ति चालित अमरीकी विमानवाही युद्धपोत निमित्ज चेन्नई बन्दरगाह पर आया। इस युद्धपोत पर कम से कम दो ए-4 डब्लू नाभिकीय रिएक्टर स्थित हैं और इसके ऊपर नाभिकीय हथियार भी तैनात किये जाते हैं। निमित्ज हमले के लिए बनाया गया जहाज है और लम्बे समय से फारस की खाड़ी में तैनात है। ऑपरेशन 'डेजर्ट स्टार्म' और 'साउदर्न वाच' में शामिल रह चुका यह युद्धपोत अब ऑपरेशन 'इराकी फ्रीडम' में लगा है। अमरीका ने ईरान के साथ बढ़ते तनाव के चलते इसे पिछले दो महीने से हारमूस जलडमरूमध्य के पास तैनात किया है।

रक्षा मन्त्रालय ने सभी नियम-कानूनों को दरकिनार करके जिस तरह आनन-फानन में निमित्ज को आने की इजाजत दी, उससे कई तरह के सवाल उठ खड़े हुए। यहाँ तक कि विकिरण की रोकथाम और उससे सार्वजनिक जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित करने वाली संस्था नाभिकीय ऊर्जा नियामक परिषद् को भी पहले से कोई आधिकारिक सूचना नहीं दी गयी। गौरतलब है कि अमरीका के पुराने सहयोगी आस्ट्रेलिया तक ने इस युद्धपोत को अपने बन्दरगाह पर आने की इजाजत नहीं दी थी।

रक्षा राज्यमन्त्री पल्लम राजू अमरीकी सरकार के निमन्त्रण पर जहाज पर जाकर एक रात बिताना चाहते थे। लेकिन निमित्ज के आने को लेकर उठे विवाद और भारी विरोध को देखते हुए सरकार ने उन्हें वहाँ नहीं जाने दिया।

निमित्ज को भारतीय बन्दरगाह पर आने की इजाजत देना सरकार की अब तक स्थापित इस नीति के खिलाफ था कि परमाणु शक्ति चालित जहाजों को भारतीय बन्दगाहों पर आने की इजाजत नहीं दी जायेगी। लेकिन 2004 के बाद से अभी तक संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार 9 परमाणु शक्ति चालित युद्धपोतों को गोवा के बन्दरगाह पर आने की इजाजत दे चुकी है जिनमें से तीन फ्रांस, एक इंग्लैण्ड और पाँच अमरीका के थे। इस सिलसिले की शुरुआत फरवरी 2001 में भाजपा गठबन्धन के शासन काल में फ्रांस की एक नाभिकीय पनडुब्बी के मुम्बई बन्दरगाह पर आने के साथ हुई थी। कैसी विडम्बना है कि देश की जनता के सामने ये सब तथ्य तभी आते हैं जब कोई विवाद उठ खड़ा हो या जब कोई बदमिजाज अमरीकी राजनेता कोई विवादास्पद बयान दे दे।

रक्षा मन्त्रालय ने निमित्ज के आने को एक सामान्य घटना बताकर मामले की गम्भीरता को कम करने और उस पर पर्दा डालने की कोशिश की लेकिन अमरीकी सरकार का रुख इससे अलग था। उसने ज्यादा साफगोई दिखाते हुए इसे भारत-अमरीका सम्बन्धों में एक ''मील का पत्थर'' बताया।

देश भर में निमित्ज के विरोध को देखते हुए भारत सरकार और अमरीकी दूतावास ने इस युद्धपोत पर नाभिकीय हथियारों की उपस्थिति से इनकार करते हुए बयान जारी किये। भारत सरकार का बयान अमरीकी सरकार से मिली जानकारी पर आधारित था, स्वतन्त्र स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं की गयी थी। अमरीकी बयान की विश्वसनीयता का अन्दाजा तो इस एकमात्र तथ्य से लगाया जा सकता है कि अमरीका ने ऐसा ही दावा जापानी बन्दरगाह पर अपना एक नाभिकीय शक्ति चालित युद्धपोत खड़ा करते समय भी किया था लेकिन जब जापानी अधिकारियों ने पोत पर जाकर इसकी जाँच करनी चाही, तो उसने इसकी इजाजत नहीं दी।

निमित्ज के कप्तान माइकल मनाजिर ने नाभिकीय हथियारों की तैनाती के सवाल का गोलमोल जवाब देते हुए कहा कि ''हम युद्धपोत पर नाभिकीय हथियारों की उपस्थिति की ना तो पुष्टि करते हैं और न ही इससे इनकार करते हैं।'' लेकिन जहाज पर जाकर जाँच की सम्भावनाओं को खारिज करते हुए उन्होंने कहा कि ''मैं जहाज के चारों ओर एक सुरक्षा चक्र कायम रखूँगा...इसलिए सैनिक लिहाज से मुझे इसपर नजर रखनी पड़ेगी कि कोई जहाज के करीब न आये। यह कोई धमकी नहीं है लेकिन इसका मुझे खयाल रखना पड़ेगा।'' एक बार फिर अमरीकी पक्ष ने ज्यादा साफगोई और

अक्खड़पन का परिचय दिया जबकि भारत सरकार इन मामलों में लीपापोती करती रही।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और अखबारों में निमित्ज को लेकर छिड़ी बहसें केवल नाभिकीय विकिरण के खतरे तक सीमित रहीं और विरोध के पीछे की कहीं ज्यादा गम्भीर वजह – अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ रणनीतिक रिश्तों पर चुप्पी साध ली गयी।

अमरीका एशिया में अस्थिरता की जड़ है। अफगानिस्तान और इराक पर हमले और ईरान को दी जा रही धमकियों ने भारत की पश्चिमी सीमा पर सुरक्षा और शान्ति के वातावरण को नष्ट कर दिया है। एक बहुत झीने पर्दे के पीछे चीन को भी घेरने की अमरीका बहुत जोर-शोर से तैयारी कर रहा है। यह भारत के हित में नहीं है क्योंकि इससे एशियाई देशों में परस्पर सहयोग के आधार पर शान्ति, सुरक्षा और विकास की सम्भावनाएँ कमजोर होंगी। इसलिए हमारे पड़ोस में तबाही लाने वाले तथा क्षेत्रीय सहयोग की सम्भावनाओं को नुकसान पहुँचाने वाले अमरीका के इस विनाशकारी युद्धपोत का विरोध करना भारतीयों का जरूरी दायित्व है।

कुछ सरकारी विश्लेषकों ने यह नायाब तर्क पेश किया कि भारत को इसलिए निमित्ज का विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि वह खुद नाभिकीय शक्ति है। यह निर्लज्ज अमरीकापरस्ती और कुतर्क है। भारत जैसे देशों के पास परमाणु बम का होना एक आवश्यक बुराई है जो अपनी आजादी और सम्प्रभुता को बनाये रखने के लिए जरूरी है। अमरीका का परमाणु बम पहले इस्तेमाल के सिद्धान्त पर आधारित है तथा ब्लैकमेल करने और धमकाने के लिए इस्तेमाल होता है जबकि भारत जैसे देश आत्मरक्षा के लिए उसका इस्तेमाल करते हैं। दूसरे, क्या जिन देशों के पास परमाणु बम हैं, वहाँ-वहाँ अमरीकी युद्धपोतों को बेरोक-टोक जाने की छूट है। तीसरे, अमरीका अब रीगन-गोर्बाचोव के जमाने की इस समझदारी को छोड़ कर आगे बढ़ चुका है कि नाभिकीय युद्ध लड़ा या जीता नहीं जा सकता। अब वह कम क्षमता वाले नाभिकीय हथियार बनाने में लगा हुआ है ताकि उन्हें आमतौर पर युद्ध में प्रयोग किया जा सके। इसी तरह अमरीका के मिसाइल सुरक्षा कार्यक्रम का मकसद भी यह सुनिश्चित करना है कि वह नाभिकीय शक्ति सम्पन्न अपने किसी विरोधी का सफाया कर दे और उस पर कोई आँच भी न आये।

ऐसी परिस्थिति में निमित्ज पर नाभिकीय हथियारों की मौजूदगी के प्रति उदासीन नहीं रहा जा सकता। अमरीका या अन्य परमाणु ताकतों की धौंस-धमकी का समर्थन और दुनिया भर में नाभिकीय हथियारों की तैनाती के उनके मंसूबों को सुगम बनाने में भारत का हित नहीं है बल्कि इसे रोकने में है। इसी तरह अगर भारत भी अपने रणनीतिक साझेदार अमरीकी साम्राज्यवाद के नक्शेकदम पर चलते हुए कहीं नाभिकीय हथियार भेजता है तो उस देश को हक है कि वह इसकी छानबीन करे और इसका विरोध करे।

निमित्ज की इस ''मील का पत्थर'' कही जा रही यात्रा का असली मकसद भारतीयों को मीठी नींद सुलाना है ताकि वे भारतीय सेना के साथ भविष्य में दशकों तक चलने वाली ''संयुक्त कार्रवाइयों'' और मन्सूबों में दखलन्दाजी न करें और इस तरह ''आपसी सहयोग के आधार पर निगरानी की व्यवस्था'' कायम करने के अमरीकी अभियान में भारत की भागीदारी को सुगम बनाया जा सके। भारतीय बन्दरगाहों पर निमित्ज जैसे युद्धपोतों का आना, अमरीका के सहयोगियों के साथ नौसैनिक अभ्यासों की श्रृंखला और सैन्य अधिकारियों के शिक्षण-प्रशिक्षण की योजनाएँ इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनायी जा रही हैं। निमित्ज कोई साधारण जहाज नहीं है, वह अफगानिस्तान और इराक में हजारों लोगों की जानें ले चुका है और अभी ईरान के खिलाफ तैनात है। ऐसे युद्धपोत को ''आराम और मनोरंजन'' के लिए अपने बन्दरगाह पर खड़ा होने की जगह देकर भारत परोक्षत: ईरान के खिलाफ अमरीकी अभियान में भागीदार बन गया है।

* * *

दिसम्बर 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय भारत को धमकाने की गरज से अमरीका ने बंगाल की खाड़ी में अपना एक विमानवाही पोत यूएसएस-इण्टरप्राइजेज भेजा था जिससे भारत के साथ अमरीकी रिश्ते बिगड़ गये। 1980 के दशक से इनमें कुछ सुधार आना शुरू हुआ लेकिन दोनों देशों के बीच सैन्य मामलों में सहयोग का पहला प्रस्ताव 1991 में प्रशान्त क्षेत्र की अमरीकी कमान के लेफ्टीनेण्ट जनरल क्लाउड सी. किकलाइटर की भारत यात्रा के दौरान अमरीका की ओर से आया। भारतीय सैन्य अधिकारियों के अमरीका में दौरा करने और कमाण्डरों के शिक्षण-प्रशिक्षण को भी इस प्रस्ताव में शामिल किया गया था जिसका दूरगामी उद्देश्य भारतीय सैन्य सेवाओं तक अमरीका की और ज्यादा गहरी पैठ की बुनियाद रखना था।

1995 में ''रक्षा सम्बन्धों पर सहमति की कार्यवाही'' में भारत-अमरीका के संयुक्त सैनिक अभ्यास भी शामिल किये गये तथा और ज्यादा तकनीकी

हस्तान्तरण की सम्भावनाएँ तलाशी गयीं लेकिन जल्दी ही भारतीय शासक वर्ग को समझ में आ गया कि अमरीका केवल सैनिक सेवाएँ देने-लेने तक ही रिश्ते रखना चाहता है। 1998 में हुए नाभिकीय परीक्षण ने इस प्रक्रिया में व्यवधान पैदा कर दिया लेकिन 1999 तक आते-आते फिर से रक्षा अनुबन्ध किये जाने लगे। दोनों देशों के बीच रिश्तों में एक नया मोड़ उस समय आया जब अफगानिस्तान पर अमरीकी हमले के दौरान भारत ने अपनी सैनिक सुविधाएँ मुहैया करने की पेशकश की। उस समय अमरीका ने पाकिस्तान में अपना सैनिक अड्डा बनाना पसन्द किया लेकिन साथ ही भारत के प्रस्ताव को आधार बनाकर सैन्य तन्त्र समझौतों को आगे बढ़ाने का काम भी किया। इस बात की तस्दीक एडमिरल डेनिस सी ब्लेयर ने फरवरी 2002 में की थी।

इससे नौसैनिक और वायुसैनिक अभ्यासों में तेजी आयी। इसी दौरान अमरीका ने यह महसूस किया कि भारत के प्रस्ताव का पूरा फायदा उठाने के लिए जरूरी है कि एक नया चार्टर तैयार किया जाये। पेण्टागन के रणनीतिकारों के सामने स्पष्ट था कि हथियारों और तकनीकी हस्तान्तरण के मामले में एक अपेक्षाकृत लचीली नीति की जरूरत होगी – यह भारत के साथ रिश्तों को सिर्फ मधुर ही नहीं बनायेगी बल्कि दोनों देशों के संयुक्त कार्रवाई करने के मार्ग में एक महत्वपूर्ण कड़ी होगी। दिसम्बर 2001 में अमरीका के वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों ने अमरीका के घरेलू नाभिकीय कानूनों में बदलाव करने का विचार पेश किया ताकि भारतीयों को सैनिक सहयोग के लिए प्रेरित किया जा सके। अमरीका के रक्षा विभाग द्वारा अक्तूबर 2002 में तैयार की गयी रिपोर्ट 'भारत-अमरीका सैनिक सम्बन्ध: बोध और अपेक्षाएँ' में दोनों देशों के बीच सैनिक सहयोग की एक रूपरेखा रखी गयी (देखें देश-विदेश अंक-3)।

जुलाई 2005 के नाभिकीय समझौते के दो हफ्ते पहले भारत और अमरीका ने ''रक्षा सम्बन्धों की नयी रूपरेखा'' पर हस्ताक्षर किये जिसमें संयुक्त अभ्यासों और बहुराष्ट्रीय अभियानों में भाग लेना, ''दूसरे राष्ट्रों (अर्थात जापान और आस्ट्रेलिया जैसे अमरीकी संश्रयकारियों) से मेलजोल बढ़ाना'', जनसंहारक हथियारों का प्रसार रोकने के लिए क्षमताओं को बढ़ाना, मिसाइल सुरक्षा के क्षेत्र में गठजोड़ आदि बातें शामिल थीं। इस समझौते पर हस्ताक्षर हुए दो साल बीत चुके हैं और इसके बहुत सारे पहलू अमल में लाये जाने लगे हैं। हालाँकि भारत औपचारिक रूप से प्रसार सुरक्षा पहल के खिलाफ है लेकिन अमरीका, आस्ट्रेलिया और जापान के साथ 'मालाबार शृंखला' के पिछले दोनों नौसैनिक अभ्यासों में प्रसार सुरक्षा पहल से सम्बद्ध कवायदें भी शामिल रही हैं, जैसे समुद्र व्यापार सम्बन्धी निषेधाज्ञाएँ लागू करने और वी.बी.एस.एस. (विजिट, बोर्ड, सर्च और सीजर) से जुड़ी कार्रवाइयों – जहाज को रोक कर उसका निरीक्षण करना, हमला करना, तलाशी लेना और उसे कब्जे में ले लेना– का अभ्यास करना।

इन चारों देशों के बीच चतुष्कोणीय सुरक्षा बैठकें शुरू हो चुकी हैं। मनीला में हुई पहली बैठक का उद्देश्य जानने के लिए चीन ने भारत, अमरीका, जापान और आस्ट्रेलिया को एक डेमार्श (औपचारिक पत्र) दिया था। हालाँकि भारत सरकार ने अपने हालिया बयान में बंगाल की खाड़ी में सितम्बर में होने जा रहे मालाबार शृंखला के अब तक के सबसे बड़े सैनिक अभ्यास के महत्व को कम करने की कोशिश की और उसके उद्देश्यों पर पर्देदारी करते हुए इस बात से इनकार किया कि यह कोई ''सुनियोजित बहुराष्ट्रीय अभियान'' है और सफाई दी कि ''चतुष्कोणीय मंच किसी के खिलाफ नहीं'' है लेकिन किसी के लिए भी इसपर यकीन करना मुश्किल है।

अमरीका अपने मंसूबों को पूरा करने के लिए भारत को अपना साझेदार बना रहा है और इस काम के लिए अपने हथियार भी उसे बेच रहा है। हाल ही में, अमरीका ने भारत को युद्धपोत यूएसएस-ट्रेण्टन बेचा जिसे आईएनएस-जलअश्व के नाम से भारत के नौसैनिक बेड़े में शामिल किया गया है। यह भारतीय नौसेना का दूसरा सबसे बड़ा युद्धपोत है। यह युद्धपोत ''रक्षा सम्बन्धों की नयी रूपरेखा'' की जरूरतों के मुताबिक भारतीय नौसेना को बहुराष्ट्रीय सैनिक अभियानों में भाग लेने के लिए जरूरी लड़ाकू वायुयान उतारने का डेक मुहैया करवायेगा। अमरीका भारत को हरकुलिस नाम के बड़े यातायात विमान भी बेच रहा है। इसके अलावा 126 बहुउपयोगी लड़ाकू विमानों (एम.आर.सी.ए.) की बिक्री के लिए एक अनुबन्ध विचाराधीन है और अमरीका इसे कार्यरूप देने के लिए एक उग्र अभियान छेड़े हुए है।

कुछ दिनों पहले राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् सलाहकार बोर्ड के संयोजक और भारत के एक नामी-गिरामी कूटनीतिज्ञ एम.के. रस्तोगी ने अपनी किताब 'द न्यू एशियन पावर डायनेमिक्स' को जारी करते समय बहुत जोरदार शब्दों में यह प्रस्थापना पेश की कि 21वीं सदी, जिसे प्रभुत्वशाली चीन और उदीयमान भारत के कारण 'एशियाई सदी' के नाम से पुकारा जाता है, ''ज्यादा सम्भावना है कि 'एशिया में अमरीकी वर्चस्व की सदी' होगी''। इस समारोह में मौजूद देश के प्रधानमन्त्री

मनमोहन सिंह ने इस चौंकाने वाली भविष्यवाणी को भावहीन चेहरा बनाकर सुना। बाद में उन्होंने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मामलों में नैतिकता की दुहाई नहीं चलती। क्या प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह को पता नहीं है कि ''एशिया में अमरीकी वर्चस्व की सदी'' का यह विचार सिर्फ नैतिक आधार पर या अविश्वास के चलते नहीं आया है। यह एशिया के भावी उतार-चढ़ावों के बारे में भारतीय शासक वर्ग के रणनीतिक चिन्तन की असहायता और बेचारगी का प्रतिबिम्ब है। भारतीय शासक वर्ग इतना पंगु हो चुका है कि वह अस्थिरता पैदा करने वाली किसी बाहरी ताकत की दखलन्दाजी और ''नेतृत्व'' के बिना एशिया की आर्थिक-राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए खुद किसी कारगर विकल्प के बारे में सोच सकता है, यह उम्मीद भी अब खत्म हो चुकी है।

अमरीका भारतीय शासक वर्ग की इस कमजोर नस को जानता है। यही कारण है कि वह इस लाइन पर भारत के साथ वार्ताएँ चला रहा है कि अमरीका विश्व की प्रमुख 'महाशक्ति' बनने में भारत की मदद करेगा। इसके बदले में भारत को ''एशिया में अमरीकी वर्चस्व की सदी'' को व्यवहार में उतारने के लिए वह सब कुछ करना होगा जो वह कर सकता है। जुलाई 2005 का नाभिकीय समझौता खासकर इसी मन्सूबे से प्रेरित है और यही वह तर्क है जो सैन्य मोर्चे पर अविश्वसनीय सौजन्य को बढ़ावा दे रहा है।

भारतीय शासक वर्ग अमरीका द्वारा की जा रही इस सौदेबाजी के नतीजों को समझते हुए भी उसके साथ समझौते पर समझौता करता चला जा रहा है। वह सोचता है कि कुछ आधे-अधूरे उपाय करके काम चल जायेगा। उसे इस बात का भी अहसास है कि अमरीका की बहुत सी क्षेत्रीय नीतियाँ भारत के हितों की परवाह नहीं करती हैं, जैसे ईरान नीति। खुफिया सूत्रों का अनुमान है कि ईरान को घुड़की देने की अमरीकी कूटनीति, जिसका निमित्ज भी एक हिस्सा है, ईरान संकट को कुछ दिनों तक ही रोक सकती है लेकिन साथ ही यह सैनिक युद्ध की सम्भावना को भी बढ़ा देती है। अगर संकट बढ़ता है तो भारत के लिए इसके परिणाम बहुत बुरे होंगे – ईंधन की आपूर्ति रुक जायेगी, खाड़ी में मौजूद भारतीय मूल के लोगों को भी संकट का सामना करना पड़ेगा और आतंकवाद का खतरा बढ़ेगा। लेकिन अमरीका को इसकी कोई परवाह नहीं है। ईरान मसले पर अमरीकी रणनीति का समर्थन करने के लिए वह भारत पर लगातार दबाव बनाये हुए है।

अमरीका के साथ समझौतों की प्रकृति काफी उलझाने वाली है। हर समझौते में भविष्य के और बहुत सारे समझौते छिपे रहते हैं और ये समझौते पहले वाले समझौते को अमल में लाने की पूर्वशर्त होते हैं। हर समझौता आगे चलकर और भी नये-नये समझौतों में बाँधता चला जाता है। अमरीका और भारत के बीच के सैनिक रिश्तों में भी इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। 123 से लेकर 126 तक समझौते, जिनके जरिये अमरीका नाभिकीय समझौते को बहुउपयोगी लड़ाकू विमानों की बिक्री से जोड़ रहा है, इनके अलावा अमरीका कम से कम दो और रक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में दबाव बना रहा है। वह चाहता है कि भारत परस्पर सेवाओं के लेन-देन और पैठ बनाने के लिए समझौते (एक्सेस एण्ड क्रास-सर्विसिंग एग्रीमेण्ट, ए.सी. एस.ए.) पर हस्ताक्षर करे जो अमरीकी सेनाओं की भारतीय सैन्य सेवाओं तक पैठ और उनके और ज्यादा इस्तेमाल की इजाजत देगा।

मार्च 2006 के बुश-मनमोहन संयुक्त वक्तव्य में भारतीय संवेदनशीलताओं को देखते हुए सैन्य तन्त्रीय सहायता के समझौते को नया रूप देने की बात की गयी थी और कहा गया था कि इसे जल्दी ही तैयार कर लिया जायेगा। लेकिन अमरीका द्वारा पेश की जा रही माँगों की फेहरिस्त इतनी तेजी से बढ़ती जा रही है कि भारतीय शासक वर्ग खुद को आशंकाओं से घिरा हुआ पा रहा है। अमरीका चाहता है कि गोवा और कोची बन्दरगाहों को फारस की खाड़ी में तैनात अमरीकी नौसेना के लिए ''स्थायी बन्दरगाह'' बना दिया जाये। अमरीका की माँग है कि भारत अपनी रूस से आयात की हुई पनडुब्बी सिन्धुघोष (किलो क्लास पनडुब्बी) को संयुक्त अभ्यासों में शामिल करे ताकि अमरीका पानी के भीतर उनकी गति और संचालन के बारे में और ज्यादा जानकारी हासिल कर सके। पेण्टागन के रणनीतिकारों के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ईरान के पास भी किलो क्लास पनडुब्बियाँ हैं और ईरान पर हमला करने वाला अमरीका का कोई भी समुद्री जहाज टारपीडो हमले का शिकार हो सकता है। रूस के अनुरोध पर भारत अभी तक उसे शामिल करने से इनकार करता रहा है।

लेकिन इस तरह के मामलों में अमरीका कोई जल्दीबाजी नहीं करता है और सामने वाले पक्ष को लम्बी वार्ताओं में उलझा-उलझाकर थका डालता है। जनरल किकलाइटर के भारत दौरे के 16 साल बाद निमित्ज ने भारतीय तट पर पड़ाव डाला। अमरीका जानता है कि वह भारत को जितना ज्यादा समझौतों, संयुक्त कार्रवाइयों और व्यापार में

उलझायेगा, भारत के लिए उसकी बढ़ती माँगों को ठुकराना उतना ही मुश्किल होता जायेगा। सैनिक शब्दावली में कहें तो **अमरीका के दो मंसूबे हैं – पहला, यह सुनिश्चित करना कि भारतीय सेना अकेले अपने दम पर या एशियाई ताकतों के साथ मिलकर भी अमरीकी हितों और उसके वर्चस्व के रास्ते में कभी बाधा न बने। दूसरा, किसी देश पर कब्जा करने के दौरान ''निचले दर्जे'' के कामों को भारत जैसे देशों से 'आउट सोर्सिंग' के जरिये करवाना जिनमें गश्त लगाना, मानवीय सहायता, शान्ति कायम करना और स्थिरता लाना जैसे काम शामिल हैं।** भारतीय शासक वर्ग इस पर चाहे जितनी पर्देदारी करे, अमरीकी अपने मंसूबों को नहीं छिपाते। हाल में हुए 123 समझौते के समय अपने आधिकारिक वक्तव्य में राजनीतिक मामलों के अमरीकी उपसचिव निकोलस बर्न्स ने भारत–अमरीका के बीच उच्च–स्तरीय बैठकों की श्रृंखला और ''कहीं ज्यादा रक्षा सहयोग'' की आशा व्यक्त की जिसमें सैनिक प्रशिक्षण, युद्धाभ्यास और भारतीय सेना को अमरीकी सैन्य तकनीक की बिक्री शामिल है। ईरान के साथ सैनिक सम्बन्धों को लेकर पूछे गये सवाल पर बर्न्स ने बताया कि ''भारत जिस दिशा में मुड़ रहा है वह है अमरीका के साथ घनिष्ठ सैनिक सहयोग।'' सितम्बर के पहले सप्ताह में भारत, अमरीका, जापान और आस्ट्रेलिया संयुक्त युद्ध अभ्यास करने जा रहे हैं जिसमें अमरीका का घनिष्ठ सहयोग सिंगापुर भी शामिल होगा। अण्डमान–निकोबार और विशाखापत्तनम के बीच होने वाले इस संयुक्त अभ्यास में तीन विमानवाही युद्धपोत, एक नाभिकीय पनडुब्बी, कई फ्रिगेट (दो मस्तूलों वाले जहाज) और विनाशक और लगभग तीन दर्जन लड़ाकू विमान हिस्सा लेंगे। निमित्ज भी इस युद्ध अभ्यास में भाग लेगा।

अमरीका इस बात को जानता है कि भारत इराक जैसे अभियानों में सेना भेजने के लिए सहमत नहीं होगा लेकिन अगर वह अमरीका के साथ समझौतों में बँधता चला गया तो तीन–चार साल बाद, उदाहरण के लिए, अमरीका भारत को कह सकता है कि अपने सहयोगी देश इथोपिया की मदद से सोमालिया में स्थिरता कायम करने के लिए अमरीका जो बहुराष्ट्रीय अभियान चला रहा है उसमें भाग लेने के लिए भारत आईएनएस – जलअश्व को सोमालिया भेजे। यह ठीक है कि भारत को धकियाया नहीं जा सकता लेकिन **अमरीका जानता है कि दोनों देशों की सेनाओं में सेवाओं और तकनीक का जितना आदान–प्रदान होगा, जितने युद्धाभ्यास होंगे, और अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत जितना ज्यादा अमरीकी मदद पर निर्भर होता चला जायेगा, अपने 'रणनीतिक संश्रयकारी' अमरीका की माँग को ठुकराना भारतीय शासक वर्ग के लिए उतना ही महँगा पड़ेगा।**

निमित्ज का भारत आना भारतीय शासक वर्गों की विदेश नीति में हुए उन बदलावों का नतीजा है जो लगातार अमरीका की ओर झुकते जा रहे हैं। भारत तीसरी दुनिया के देशों के साथ आपसी सहयोग और गुटनिरपेक्षता के पुराने रास्ते को छोड़ चुका है और परमाणु क्लब के साथ बराबरी पर बैठने और 'महाशक्ति' बनने के ख्वाब देख रहा है। यही ख्वाब भारतीय शासक वर्ग को अमरीका के साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने में लगातार सहयोग करने के लिए प्रेरित कर रहा है। अमरीका भारत की इस महत्वाकांक्षा को शह देता है ताकि उसे तीसरी दुनिया के देशों से अलग करके अपने वैश्विक वर्चस्व कायम करने के मंसूबे को पूरा करने के लिए इस्तेमाल कर सके। गुटनिरपेक्ष अन्दोलन से अलग होने की कोण्डालीसा राइस की भारत को की गयी नसीहत को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। पिछले 100 वर्षों के दौरान दुनिया भर में अमरीका द्वारा रचे गये कुचक्र, छल–प्रपंच, धोखाधड़ी और तख्तापलट के बारे में जानने वाला कोई भी व्यक्ति आसानी से इस बात को समझ सकता है कि भारत के अमरीकी वैश्विक रणनीति में भागीदार बन जाने का अंजाम कितना बुरा होगा। ▣

tksgj

जौहर का किस्सा सुना होगा
काश! महारानी पद्मिनी,
चिता में जलने के बजाय
सोलह हजार रानियों के साथ
लैस होकर
चित्तौड़ के किले की
रक्षा करते हुए
मरी नहीं, मारी गयी होतीं
तब तुम्हारा और
तुम्हारे देश का भविष्य
कुछ और होता!

यही आज का तकाजा है
वरना कौन प्रजा कौन राजा है?

–देवेन्द्र कुमार

पेरियार रामास्वामी नायकर
एक आन्दोलन

तमिलनाडु दक्षिण भारत का एक ऐसा राज्य है, जहाँ सबसे ज्यादा उच्च शिक्षण संस्थान और व्यावसायिक कालेज हैं। साक्षरता के मामले में भी देश में महाराष्ट्र के बाद इसका स्थान है। एक ऐसे राज्य में जहाँ की 6 करोड़ 20 लाख आबादी में से 80 फीसदी अन्य पिछड़े वर्गों, अति पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों की है, ये उपलब्धियाँ छोटी नहीं कही जा सकतीं। तमिलनाडु में सरकारी नौकरियों और शिक्षा के क्षेत्र में 1927 से ही आरक्षण लागू है जो मद्रास प्रेसीडेंसी में दशकों तक चले सामाजिक न्याय के आन्दोलन का परिणाम था। इस आन्दोलन को दशकों तक जारी रखने का श्रेय निर्विवाद रूप से पेरियार को जाता है।

पेरियार का पूरा नाम था इरोड वेंकट नायकर रामास्वामी। उनका जन्म 17 सितम्बर 1879 को इरोड कस्बे के एक सम्पन्न रूढ़िवादी हिन्दू परिवार में हुआ था। इरोड पश्चिमी तमिलनाडु का एक व्यस्त व्यावसायिक केन्द्र था। 1885 में वे स्थानीय प्राइमरी स्कूल में दाखिल हुए लेकिन उनकी औपचारिक शिक्षा 5 साल भी नहीं चल पायी। 12 साल की उम्र से ही उन्हें अपने पिता के व्यवसाय में लगना पड़ा।

बचपन में उनके घर पर वैष्णव साधु आते-जाते थे, भजन-कीर्तन, शास्त्रार्थ और प्रवचन हुआ करते थे। पेरियार का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ, उन्होंने उनके बारे में सवाल उठाने शुरू किये। उन्होंने महाकाव्यों और पुराणों के भीतर मौजूद बेतुकी, अन्तरविरोधी और मूर्खतापूर्ण बातों का पर्दाफाश किया। उन्होंने बाल विवाह जैसे अतार्किक और अन्यायपूर्ण रिवाजों, जड़ धार्मिक अनुष्ठानों, महिलाओं – खासकर विधवाओं के साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार, दलित और अछूत जातियों के साथ होने वाले अन्याय और अत्याचार को चुनौती देना शुरू कर दिया।

19 साल की उम्र में उनकी शादी 13 साल की एक नजदीकी रिश्ते की लड़की के साथ हुई। पेरियार तब तक तर्कशील बन चुके थे। उन्होंने अपनी पत्नी को भी तर्कशील बनाया। 1904 में उन्हें कुछ समय के लिए अपना घर छोड़ना पड़ा क्योंकि उनके पिता ने उन्हें सार्वजनिक तौर पर डाँटा था और उनकी पिटाई भी की थी। उनका अपराध यह था कि उन्होंने अपने पिता के श्रद्धेय एक ब्राह्मण मठाधीश के बदमाश भाई के नाम अदालत का सम्मन तामील करवाने में मदद की थी। घर छोड़ने के बाद वे पवित्र नगरी वाराणसी चले गये। लेकिन वहाँ के अनुभवों ने हिन्दूधर्म और उसकी सामाजिक भेदभावपूर्ण प्रकृति के बारे में उनके विचारों को और पुष्ट ही किया। वाराणसी से लौटने के बाद उन्होंने अपने पिता का धन्धा सम्भाल लिया और उसमें अपनी योग्यता प्रमाणित की।

उनके सार्वजनिक जीवन की शुरुआत एक मन्दिर का ट्रस्टी बनने से हुई। जल्दी ही वे अपने कस्बे की नगर पालिका के अध्यक्ष बन गये। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुरोध पर 1919 में वे कांग्रेस में शामिल हुए और शीघ्र ही उसकी तमिलनाडु इकाई के अध्यक्ष बनाये गये। पार्टी की सभी राजनीतिक गतिविधियों, जैसे खादी का प्रचार, शराबबन्दी आन्दोलन आदि में उन्होंने अपनी

पत्नी के साथ सक्रिय हिस्सेदारी की। केरल के कांग्रेसी नेताओं के अनुरोध पर उन्होंने मन्दिर तक जाने वाली सार्वजनिक सड़क पर चलने के दलित वर्गों के अधिकार के लिए वायकोम आन्दोलन का नेतृत्व किया। उनकी पत्नी और मित्रों ने भी इस आन्दोलन में भागीदारी की।

नौजवानों के प्रशिक्षण के लिए कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे एक संस्थान में, जिसका नियन्त्रण एक ब्राह्मण नेता के हाथ में था। गैरब्राह्मणों के साथ भेदभावपूर्ण बर्ताव को देखकर उनका कांग्रेस पार्टी से मोहभंग हो गया। लेकिन उन्होंने कांग्रेस तब छोड़ी जब वे कांग्रेस के नेतृत्व को सरकार और शिक्षण संस्थानों में दलित वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण का समर्थन करने पर राजी नहीं कर पाये।

दलितों के हितों के लिए संघर्ष करने के लिए 1925 में उन्होंने आत्मसम्मान आन्दोलन की स्थापना की। उसी समय वे सोवियत संघ गये। वहाँ की उपलब्धियों का उन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। वहाँ से लौटकर एक सभा में उन्होंने सोवियत संघ की उपलब्धियों की प्रशंसा की और घोषणा की कि उनकी आर्थिक नीतियाँ अब कम्युनिज्म पर आधारित होंगी लेकिन जल्दी ही उनके विचार बदल गये। उन्होंने सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय के लिए सभी स्तरों पर संघर्ष को अपना पहला सरोकार घोषित किया।

आगे चलकर उन्होंने गैरब्राह्मण नेताओं द्वारा गठित जस्टिस पार्टी का नेतृत्व सम्भाला। 1944 में जस्टिस पार्टी का नाम बदलकर द्रविड़ कड़गम रख दिया गया। आजादी के बाद इसमें फूट पड़ गयी और सी. एन. अन्नादुरै व उनके समर्थकों ने इससे अलग होकर द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पार्टी बनायी। उसी समय पेरियार ने तय किया कि वे सत्ता की राजनीति से दूर रहेंगे। उन्होंने द्रविड़ कड़गम को एक गैर राजनीतिक सामाजिक संगठन घोषित कर दिया। इसके बाद से उन्होंने अपनी गतिविधियों को सामाजिक मुद्दों तक सीमित कर दिया और तमाम तरह के अन्धविश्वासों, हिन्दी भाषा थोपे जाने, सामाजिक अन्याय और अन्य सामाजिक बुराइयों के खिलाफ वे मृत्युपर्यन्त अनथक संघर्ष चलाते रहे।

पेरियार ने आरक्षण के लिए 5 दशकों तक लगातार अभियान चलाया। 1973 में अपनी मृत्यु तक वे इसके लिए लड़ते रहे। अपने अन्तिम दिनों में पेरियार ने अपने दो अधूरे कामों के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया था – पहला, शिक्षा और रोजगार में जाति के आधार पर भेदभाव का अन्त करना और दूसरा, छुआछूत से दलितों की मुक्ति। उनका विचार था कि शोषणकारी और ऊँच-नीच पर आधारित जाति व्यवस्था का उन्मूलन ही जाति व्यवस्था से पैदा हुई सभी बुराइयों का अन्तिम तौर पर समाधान कर सकता है।

पेरियार आज भी प्रासंगिक हैं। जब तक भारतीय समाज छुआछूत और दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार जैसी बुराइयों से मुक्त नहीं होता, उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। ▣

मजदूर वर्ग पर हमला जारी

असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रस्तावित असंगठित क्षेत्र मजदूर सामाजिक सुरक्षा विधेयक -2006 को केन्द्र सरकार ने ''सीधे ठुकरा दिया''। उसकी जगह एक राष्ट्रीय सलाहकार बोर्ड का गठन किया जायेगा जो समय-समय पर उनके लिए कल्याण योजनाओं की सिफारिश करेगा। आयोग के एक सदस्य के मुताबिक यह कदम ''प्रधानमन्त्री की सहमति से उदारीकरण समर्थकों की सहूलियत को ध्यान में रख कर ली गयी वैचारिक अवस्थिति है।''

संप्रग सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में देश के 93% असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाला कानून लाने का वादा किया था।

आयोग के सदस्य के मुताबिक मन्त्रालय द्वारा पारित इस नये कानून के तहत गठित बोर्ड के सामने कोई लक्ष्य या समयबद्ध कार्यक्रम नहीं होगा और वह कोई कदम उठाने या पैकेज देने के लिए बाध्य नहीं होगा। रोजगार गारण्टी योजना से अलग इस कानून के तहत मजदूरों को कानूनन कोई हक नहीं दिये गये हैं और न ही सरकार सामाजिक सुरक्षा का इन्तजाम करने के लिए कानूनन बाध्य है।

ठेका खेती को सरकार की हरी झण्डी

■ संजीव

,dHkkstiqjh dkjkorgS µ^^cfj;kjs ds lax [ksrh dcuh] Hkwlk ykn ds ?kjs vcuhA eryc ;g fd fdlh lEiUu vkSj 'kfDr'kkyh ds lkFk la>sukjh ch rks Qly dMus i j fgLls esa vukt ugha cfYd Hkwlk feyrsA**

21 जून को केन्द्र सरकार ने अपने मन्त्रीमण्डल की बैठक में ठेका खेती को मंजूरी दे दी। साथ ही उसने कृषि –व्यापार और खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा देने वाली एक भारी भरकम योजना पर भी स्वीकृति की मुहर लगा दी। इसमें खेती के अलावा बागवानी, दूध उत्पादन, मछली पालन, भेड़-बकरी और मुर्गी पालन इत्यादि को भी शामिल किया गया है।

आज देश भर में वालमार्ट-भारती, रिलायंस फ्रेश, बिग एपल और सुभिक्षा जैसी खाने-पीने की वस्तुओं के संगठित खुदरा व्यापार में लगी दुकान श्रृंखलाएँ तेजी से पाँव पसार रही हैं। खुदरा व्यापार में पैठ बना रहे इन देशी-विदेशी बड़े पूँजीपतियों के हित में सरकार ने कृषि-व्यापार को बढ़ावा देने वाली एक मुकम्मिल रणनीति तैयार की है। इसमें कृषि-व्यापार के लिए जरूरी ढाँचे – बिजली, सड़क, जलापूर्ति का निश्चित समय में पर्याप्त बन्दोबस्त करना, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए कर और चुंगी के मौजूदा ढाँचे को बदल कर उसे रियायती और सरल बनाना तथा निजी कम्पनियों के मार्ग में बाधक पुराने कृषि-व्यापार कानूनों, कृषि विपणन और भण्डारण के सरकारी ढाँचे को बदलना शामिल है। इस सारी सरकारी कवायद का मकसद खेती और कृषि उपज की खरीद-बिक्री को देशी-विदेशी बड़े पूँजीपतियों के हवाले करना है।

सरकार और देशी-विदेशी सरमायादार इस दिशा में काफी अरसे से प्रयासरत थे। केन्द्र की सोनिया-मनमोहन सरकार ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में ठेका खेती को बढ़ावा देने पर काफी जोर दिया है। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा गठित कार्य समिति ने भी ठेका खेती को प्रोत्साहित करने के लिए कई तरह के प्रस्ताव पेश किये हैं। खेती के बारे में भारत-अमरीका ज्ञान पहल नाम से देश की कृषि व्यवस्था को विश्व बाजार के अधीन लाकर उसे मुनाफाखोरी की गिरफ्त में लेने की कोशिश भी चल रही है। अमरीकी कृषि विभाग और भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् (आई.सी.ए.आर.) ने मिलकर मई के पहले हफ्ते में भारत में ठेका खेती का मॉडल तैयार करने के लिए एक चर्चा कार्यशाला का आयोजन किया जिसमें कृषिमन्त्री शरद पवार सहित बड़े-बड़े दिग्गज शमिल हुए। मन्त्रीमण्डल की बैठक में लिया गया यह निर्णय लम्बे समय से चल रहे इन प्रयासों की अन्तिम परिणति है।

ठेका खेती में किसान और खरीदार के बीच फसल लगाने से पहले ही उनके उत्पादन और बिक्री के बारे में करार किया जाता है। इसके तहत किसान जिस व्यापारी या कम्पनी से करार करता है उसकी जरूरत के अनुरूप ही फसल लगाता है और वह उपज की निश्चित मात्रा करार में तय की गयी कीमत और पूर्वनिर्धारित समय पर मुहैया करने के लिए पाबन्द होता है। ठेका खेती में किसान अपनी जमीन पर वही फसल बोता है जो ठेकेदार बताता है और प्रति एकड़ जितनी उपज होने का अनुमान लगाया गया हो उस हिसाब से ठेकेदार को ही अपनी पैदावार बेचने के लिए बाध्य होता है। फसल की कीमत पहले से तय भी हो सकती है और नहीं भी। आम तौर पर किसान इसमें अपनी जमीन और श्रम लगाता है जबकि खेती के लिए जरूरी सभी तरह की लागत और तकनीकी सलाह ठेकेदार पूँजीपति देता है, जिसे वह फसल की कीमत चुकाते समय ब्याज सहित काट लेता है।

आज किसानों के सामने एक तरफ मँहगी कृषि लागत

खरीदने के लिए पूँजी के अभाव और दूसरी तरफ उपज के लिए खरीदार और उचित मूल्य की अनिश्चितता की समस्या मुँह बाये खड़ी है। इसे देखते हुए ठेका खेती की यह व्यवस्था ऊपरी तौर पर लुभावनी लगती है। अगर पूँजीपति किसानों को सभी तरह की लागत मुहैया करायें और फसल तैयार होने पर उसकी खरीद की भी गारण्टी करें, तो भला किसान को और क्या चाहिए। सरकार, पूँजीपति, उनके जरखरीद बुद्धिजीवी और पत्रकार आज ठेका खेती की ऐसी ही मन मोहक तस्वीर पेश करके किसानों को लुभाने का प्रयास कर रहे हैं। कहा जा रहा है कि इससे देशी-विदेशी पूँजीपतियों को प्रोत्साहन मिलेगा और वे खेती और उससे जुड़े अन्य क्षेत्रों में भारी पूँजी निवेश और मशीनीकरण के लिए प्रेरित होंगे। प्रति दिन गहराते खेती के संकट, किसानों की बढ़ती तबाही और आत्महत्याओं के अन्तहीन सिलसिले से निजात दिलाने के लिए सरकार ठेका खेती को रामबाण दवा के रूप में पेश कर रही है जबकि असलियत कुछ और ही है।

कृषि मन्त्रालय से मिली जानकारी के मुताबिक अभी देश भर में 70 लाख एकड़ जमीन पर ठेका खेती हो रही है, जो खेती की कुल जमीन (40 करोड़ एकड़) के दो फीसदी से भी कम है। इसमें भी कॉपरेटिव या सहकारी संस्थाओं के साथ हुए करारों का हिस्सा ज्यादा है। निजी पूँजीपति या कम्पनियों के साथ करार करके लगभग 2 लाख एकड़ जमीन पर ही ठेका खेती की जा रही है। जाहिर है कि ठेका खेती का प्रचलन अभी बहुत कम है, फिर भी देश के विभिन्न इलाकों में ठेका खेती के अनुभवों के बारे में जो अध्ययन किये गये उनसे यह साफ है कि ठेका खेती न तो व्यापक किसानों के हित में है और न ही यह देश हित में है।

पहली बात तो यह है कि हमारे देश के अधिकतर किसान इतने पढ़े-लिखे और तेजतर्रार नहीं हैं कि कम्पनियों के साथ करार में लिखी गयी गूढ़ बातों और कानूनी दाँव-पेंच को समझ सकें। इसीलिए उनके साथ धोखाधड़ी करना आसान है। कम्पनियों के मैनेजर जो इकरारनामा तैयार करेंगे उसमें बड़ी बारीकी से अपने मालिकों के लिए फायदेमन्द बातें घुसा देंगे।

किसानों की इसमें कोई दखलन्दाजी नहीं होगी। दोनों पक्षों के बीच कोई विवाद खड़ा होने की स्थिति में कम्पनियाँ अपने कानूनी सलाहकारों और मँहगी फीस वाले वकीलों के दम पर किसानों को आसानी से पछाड़ सकती हैं। छोटे-मझोले किसान तो कोर्ट कचहरी के चक्कर में पड़ने के बजाय कम्पनी की बात मान लेने, ले-दे कर छुट्टी करने में ही अपनी भलाई समझेंगे। अगर कोई किसान कानूनी घुड़दौड़ में शामिल भी हो जाय तो उसका जीत पाना नामुमकिन होगा। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि हमारे देश में न्याय का पलड़ा उसी की तरफ झुकता है, जिधर पैसा ज्यादा हो। बीज और कीटनाशक के मामलों में ठगे जाने वाले किसानों के साथ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश में ऐसा हो चुका है।

ऐसे कई मामले सामने आये हैं जिनमें कम्पनियों ने करार का पालन नहीं किया और किसानों को चूना लगा दिया। 2003-2004 में पंजाब के भटिण्डा इलाके में पंजाब एग्रो फूड कारपोरेशन और कई निजी कम्पनियों ने धान की रोपाई से पहले किसानों से यह वादा किया था कि वे 1350 रुपये प्रति क्विण्टल के भाव पर उनसे धान खरीदेंगे। लेकिन खरीदते वक्त उन्हें महज 700 रुपया प्रति क्विण्टल के भाव से भुगतान किया गया। कम्पनियों का तर्क था कि धान घटिया किस्म का है। किसानों को 300 रुपया प्रति एकड़ नुकसान हुआ। उसी साल आन्ध्रप्रदेश के चित्तूर जिले के किसानों को भी ठेका खेती का कड़वा स्वाद चखना पड़ा जिन्होंने 30-40 हजार प्रति एकड़ की लागत से खीरे की खेती की थी। दुनिया के बाजारों में खीरे का भाव गिरने का हवाला देकर कम्पनियों ने किसानों की फसल खरीदने से इनकार कर दिया। इसके चलते हजारों किसान कर्ज के जाल में फँस कर तबाह हो गये।

दूसरा यह कि आर्थिक हितों की सुरक्षा को देखते हुए ठेका खेती किसी खास किसान के लिए भले ही तात्कालिक रूप से लाभदायक हो और कई मामलों में ऐसा हुआ भी है लेकिन भविष्य में इसके बुरे नतीजों का सामने आना निश्चित है। ज्यादा से ज्यादा मुनाफे के लोभ में पूँजीपति जमीन को बंजर बना देंगे, जमीन के अन्दर का पूरा पानी सोख लेंगे और फिर किसी दूसरे इलाके में चले जायेंगे। अपने समूचे वर्ग के हित में सोचने वाले बहुत थोड़े से लोग होते हैं। मुसीबत की घड़ी में तो अधिकतर लोग अपने-अपने बारे में ही चिन्ता करते हैं। इसलिए सम्भव है कि फौरी तौर पर होने वाले फायदे के चक्कर में किसान अपनी भावी पीढ़ियों, सारे देश के किसानों और सुदूर भविष्य की चिन्ता न करें, कम्पनियों के झाँसे में आकर उनसे

करार कर लें और विनाश को न्योता दे बैठें। और जब सरकार ही इसे प्रोत्साहन दे रही हो तब तो इसकी सम्भावना और भी अधिक है।

तीसरा मुद्दा देश की खाद्य सुरक्षा का है, जो खेती के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। पूँजीपति जिन फसलों के लिए किसानों से करार करते हैं, वे अमूमन नगदी फसल होती हैं और उनमें भी वे ऐसी फसलों को तरजीह देते हैं जिनकी माँग दुनिया के बाजारों में हो ताकि उनका निर्यात करके वे विदेशी मुद्रा कमा सकें। यही कारण है कि विविधीकरण के नाम पर आजकल जटरोफा, रतनजोत, सफेद मूसली, सब्जियों, सुगन्धित पौधों, फूलों या बासमती चावल की खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। तय है कि बड़े पैमाने पर ऐसी फसलों की खेती होने लगी तो देश में एक भयावह स्थिति पैदा होगी। जब ज्यादा से ज्यादा जमीन इन फसलों के नाम कर दी जायेगी तो देश में अनाज, दाल और तिलहन का उत्पादन गिरेगा और देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी।

इसके लक्षण आज भी साफ-साफ दिखायी दे रहे हैं। पिछले 10-15 वर्षों से खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आ रही है और एक बार फिर भारी मात्रा में विदेशों से गेहूँ, दाल और खाद्य तेल मँगाने की नौबत आ गयी है।

चौथी बात यह है कि ठेका खेती का मॉडल अमरीका से आयातित है, जहाँ खेती में इजारेदार सरमायादारों की जबरदस्त घुसपैठ है। कृषि उत्पादों के विश्व-व्यापार पर कारगिल, मोन्सेंटो और मिडलैण्ड जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का वर्चस्व है। ये कम्पनियाँ खेती से जुड़े हर तरह के कामों में अपना दखल रखतीं हैं, जैसे-बीजों का शोध, उत्पादन और बिक्री, कीटनाशक, मशीनरी, खाद्य प्रसंस्करण, उपज की खरीद-बिक्री इत्यादि। इसके चलते एक तरफ इन कम्पनियों का मुनाफा लगातार बढ़ रहा है जबकि असली उत्पादक किसानों की आय लगातार कम होती जा रही है। बड़ी संख्या में अमरीकी किसान खेती से किसी तरह गुजारा कर पाते हैं। जब अमरीकी किसानों की यह हालत है, जहाँ सरकार उनकी हिफाजत के लिए भारी सहायता देती है और जिनकी आर्थिक-राजनीतिक स्थिति काफी मजबूत है, तो भारत के किसानों की हालत क्या होगी जहाँ 80% किसान छोटी जोत वाले हैं और पहले से बदहाली की गिरफ्त में हैं।

पाँचवीं बात, यह तर्क दिया जाता है कि ठेका खेती से रोजगार के नये अवसर पैदा होंगे। पंजाब का अनुभव बताता है कि सब्जी की खेती में धान-गेहूँ की तुलना में अधिक श्रम की जरूरत होने के चलते वहाँ मजदूरी के नये अवसर पैदा हुए और कुछ लोगों को रोजगार भी मिला। लेकिन भारी संख्या में बेरोजगारी से त्रस्त, स्थानीय और बाहरी मजदूरों के बीच कम से कम मजदूरी पर काम करने की होड़ के चलते वहाँ मजदूरी की दर में काफी गिरावट आयी है। एक तरफ जहाँ मशीनीकरण के चलते पहले ही पुरुष मजदूर काम से वंचित होते जा रहे हैं, वहीं नये तरह के कामों में पुरुषों की जगह बच्चों और औरतों को बहुत ही कम मजदूरी पर रखा जा रहा है। नतीजा यह कि रोजगार के नये अवसर लोगों की जिन्दगी में खुशहाली लाने के बजाय उन्हें पहले से भी बदतर हालात में धकेल रहे हैं। यही नहीं, भविष्य में जब ठेका खेती के चलते भारी संख्या में छोटे उत्पादक किसान अपने रोजगार से उजाड़े जायेंगे तब कुल मिलाकर रोजगार के अवसर कम होते जायेंगे।

छठी बात। पंजाब सरकार ने यह तर्क दिया था कि ठेका खेती फसल विविधीकरण के जरिये वहाँ के पर्यावरण के विनाश और प्राकृतिक साधनों के विवेकपूर्ण दोहन की समस्या का समाधान करेगी। लेकिन हुआ इसका उल्टा। वहाँ सरमायादार बड़े पैमाने पर बासमती धान की खेती को बढ़ावा दे रहे हैं। जिसमें बहुत ज्यादा पानी की खपत होती है। पहले से ही पंजाब में भूजल स्तर तेजी से नीचे जा रहा है। फिर भी पूँजीपति वहाँ के किसानों को बासमती धान की अच्छी कीमत का प्रलोभन दे रहे हैं और उन्हें गहरे से गहरे सबमर्सिबिल पम्प गाढ़ कर बचे-खुचे पानी का भी बेतहाशा दोहन करने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

देश के कई इलाकों में निरन्तर पर्यावरण का विनाश निस्सन्देह आज की गम्भीर समस्या है, लेकिन खेती की मुकम्मिल, चिरस्थायी और दूरगामी योजना ही पर्यावरण की रक्षा कर सकती है। यह काम एक जनपक्षधर, दूरदर्शी और सही मायने में जनता की सरकार के हस्तक्षेप से ही सम्भव है। मुनाफे से प्रेरित निजी पूँजीपतियों के स्वार्थों पर आधारित ठेका खेती के जरिये पर्यावरण की दशा सुधारने की बात करना या तो हद दर्जे की बेवकूफी है या लोगों की आँखों में धूल झोंकने की कुटिल चाल।

ठेका खेती के इन बुरे नतीजों के बारे में हमारे देश और दुनिया के कई जाने-माने अर्थशास्त्रियों ने लगातार आगाह किया, लेकिन फिर भी हमारे देश की सरकार देशी-विदेशी सरमायादारों के

साथ साँठ-गाँठ करके उनके स्वार्थों की पूर्ति के लिए इसे जल्दी से जल्दी पूरे देश में फैलाने का प्रयास कर रही है। किसानों को हर तरह के सरकारी संरक्षण जैसे-खाद, बीज, पानी, बिजली की कीमतों में सहायता, कृषि उपज की खरीद-बिक्री में सरकारी हस्तक्षेप, लाभकारी समर्थन मूल्य, सस्ती ब्याज दरों पर कर्ज की व्यवस्था जैसी रही-सही सहूलियतों से वंचित करके पहले तो सरकार ने किसानों को दुर्दशा का शिकार बनाया और अब उसे सुधारने के नाम पर खेती और खेतिहर आबादी को मुनाफाखोर दरिन्दों के मुँह में धकेल रही है। गौरतलब है कि ठेका खेती का सवाल केवल किसानों को ही नहीं बल्कि यहाँ की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी, पर्यावरण, सामाजिक बुनावट और कुल मिलाकर हम सभी लोगों के भविष्य से जुड़ा हुआ सवाल है। इसके अन्तिम नतीजे के रूप में भविष्य की दो सम्भावनाएँ दिखायी देती हैं। या तो शासक वर्गों की चाहत पूरी हो और इस देश के अधिकांश किसान और इस देश का भविष्य एक चिरकालिक अन्धकार में गर्क हो जायें या फिर देश के किसान और सभी मेहनतकश मिल कर शासक वर्गों की इन आपराधिक कार्रवाइयों को हमेशा-हमेशा के लिए दफ्न कर दें। हर संवेदनशील और जागरूक देशवासी का यह ऐतिहासिक दायित्व है कि वह इस दूसरी सम्भावना को सच्चाई में बदलने का जी-जान से प्रयास करे। ▣

अब एक और नोएडा

उत्तर प्रदेश की मायावती सरकार 189 गाँवों को मिलाकर एक नया प्राधिकरण ग्रेटर नोएडा फेज II बना रही है। इसके पहले से यहाँ नोएडा, ग्रेटर नोएडा और ग्रेटर नोएडा फेज-I प्राधिकरण कार्य कर रहे हैं। न्यू ओखला इण्डस्ट्रियल डिवेलपमेण्ट अथोरिटी अर्थात नोएडा को उत्तरप्रदेश सरकार ने दिल्ली में बनाये गये ओखला इण्डस्ट्रियल डिवेलेपमेण्ट अथोरिटी की तर्ज पर बनाया था। विकास के नाम पर बनाये गये इन प्राधिकरणों द्वारा विगत कुछ सालों में किये गये विकास कार्य पर नजर डालें तो गोल्फ कोर्स, महँगे अस्पताल, स्कूल और शिक्षण संस्थानों, फार्मूला वन रेसिंग कार ट्रैक, फाइव स्टार होटलों के लिए जमीनें आबण्टित की गयी हैं।

इन ऐयाशी के अड्डों के लिए किसानों की जमीनें कौड़ियों के मोल जबरदस्ती अधिग्रहीत कर ली गयी हैं और उनके गाँव झोपड़पट्टियों में बदल दिये गये हैं। उनके बच्चे जरायमपेशा या दो कौड़ी के मजदूर बना दिये गये हैं। हरेक गाँव में दो-तीन परिवारों को छोड़ कर सभी की हालत खराब है। सरकार की तरफ से कोई पुनर्वास नीति नहीं है। मुआवजा भी वही जो सरकार तय कर दे। यहाँ तक कि उन्हें अपनी पुश्तैनी जमीन पर आबादी बनाने का भी अधिकार नहीं है। अब वे अपने बढ़ते परिवार के साथ गाँव के छोटे से मकान में रहने के लिए अभिशप्त हैं। दो-दो किलो अनाज के लिए राशन की दुकान पर धक्के खाते हैं।

मायावती ने अधिसूचित होने के बावजूद अपने पैतृक गाँव में 50 बीघा जमीन पर आबादी दर्ज करवाकर अपनी आलीशान कोठी बनवायी है जबकि उसी गाँव से गरीब किसानों के जर्जर मकान हटाये जा रहे हैं।

सरकारें देश की सबसे कीमती जमीनें किसानों से छीनकर पूँजीपतियों और बिल्डरों को सौंप रही हैं। अपनी छोटी-छोटी जोतों से किसान बेदखल किये जा रहे हैं। बादलपुर में, जहाँ जमीन का भाव 50 लाख रुपये से कम नहीं, किसानों को 3.50 लाख रुपये का मुआवजा लेने के लिए मजबूर किया जा रहा है। सादोपुर, अच्छेजा, बिसनूली की जमीन भी ली जा रही है। ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने बिसरख, सिरसा, खानपुर, कुलेसरा और एमनाबाद में किसानों की वर्षों पुरानी आबादियाँ गिरा दी हैं। आक्रोश से भरे किसानों ने 24 जुलाई को प्राधिकरण के दफ्तर पर एक जोरदार प्रदर्शन करके इसका विरोध किया। किसानों में काफी गुस्सा है। वे जानते हैं कि राजनेता, पूँजीपति, बिल्डर, नौकरशाह और ठेकेदार अपने फायदे के लिए उनकी जमीन छीन लेना चाहते हैं।

कोई भी राजनीतिक पार्टी किसानों के पक्ष में नहीं आ रही है। किसान, संघर्ष समिति बनाकर खुद ही आन्दोलन कर रहे हैं। नन्दीग्राम की लड़ाई उनके सामने है, जहाँ किसानों के संघर्ष के कारण सरकार को अपनी योजना से पीछे हटना पड़ा।

विनाशकारी बीजों के परीक्षण और बिक्री पर कानूनी मुहर

■ अभिलाष

8 मई 2007 को सुप्रीम कोर्ट ने 24 जीन परिवर्तित बीजों के परीक्षण पर लगी रोक को हटाते हुए कुछ शर्तों के साथ उनके परीक्षण की इजाजत दे दी। इन शर्तों का उल्लंघन करने के लिए कई सारे चोर दरवाजे हैं।

1. जैनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी पर्याप्त सावधानी बरते ताकि इन बीजों के परीक्षण से पड़ोस के खेतों में जीन-प्रदूषण न हो।

2. परीक्षण फसल को जिन खेतों में बोया गया है उनकी उसी फसल के अन्य खेतों से दूरी कम से कम 200 मीटर रखी जानी चाहिए।

3. परीक्षण के सभी मामलों में जिम्मेदार वैज्ञानिक और उसके अन्य सभी पहलुओं के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के ब्योरे अप्रूवल कमेटी के पास भेजे जाने चाहिए और उसे नियमित रूप से परीक्षणों की निगरानी करनी चाहिए।

4. जीन परिवर्तित बीज या पौध को ग्रीन हाउस से निकालकर खेत में लगाने से पहले यानि उनके खुले खेत में परीक्षण से पहले किसी मान्यता प्राप्त संस्था द्वारा जारी स्थापित और स्वीकृत मानदण्डों पर आधारित प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जो यह सुनिश्चित करे कि इससे पड़ोस के खेतों में जीन प्रदूषण नहीं फैलेगा।

5.कोर्ट ने पहले ही मंजूर किये गये 4 किस्मों के बीटी कॉटन के बीजों को बाजार में बेचने की इजाजत तो दी लेकिन उसने कहा कि अब और नयी प्रजातियों को मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए।

6.अप्रूवल कमेटी को जीन परिवर्तित बीजों के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों तथा विषैले और ऐलर्जी सम्बन्धी प्रभावों के बारे में कोर्ट में एक विस्तृत रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा गया है।

सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश के आने की देर थी कि जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी ने अपनी 11 मई की बैठक में आनन-फानन में जीन परिवर्तित संकर कपास की 49 नयी किस्मों की व्यावसायिक खेती को मंजूरी दे दी। क्या देश के विशाल बीज बाजार पर घात लगाये बैठी देशी-विदेशी कम्पनियों के साथ देश की प्रशासनिक व्यवस्था की मिलीभगत का पर्दाफाश करने के लिए यह एकमात्र तथ्य काफी नहीं है? क्या इन नई किस्मों को मंजूरी देने के पहले सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का पालन करने की गारण्टी कर ली गयी थी? अप्रूवल कमेटी जैसे पहले ही अपनी रिपोर्ट तैयार करके इस इन्तजार में बैठी थी कि कब सुप्रीम कोर्ट का फैसला आये और कब वह उसे बीज कम्पनियों को सुपुर्द करे, वरना किस जादू की छड़ी से कमेटी के सदस्यों ने दो दिन में ही 49 तरह के बीजों के सभी नकारात्मक पहलुओं की जाँच-पड़ताल करके तसल्ली कर ली?

भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश खेत छोटे-छोटे हैं, यह कैसे सुनिश्चित किया जायेगा कि परीक्षण फसल के चारों ओर 200 मीटर दूर तक कोई दूसरी फसल नहीं लगायी गयी है।

2006 में कपास के कुल क्षेत्रफल के 42 फीसदी यानी 94 लाख एकड़ जमीन पर कपास की जीन परिवर्तित किस्में बोयी गयी थीं। प्रति एकड़ एक पैकेट कपास के बीज की खपत होती है। यदि उसकी औसत कीमत 900 रुपये पैकेट के हिसाब से गणना करें तो देश में जीन परिवर्तित कपास का बाजार 800 करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है। कमेटी द्वारा 49 नयी किस्मों को परीक्षण के बाद बाजार में बेचने की मंजूरी दिये जाने के बाद देश में इन कम्पनियों की घुसपैठ और तेजी से बढ़ेगी। पिछले साल सुप्रीम कोर्ट द्वारा जीन परिवर्तित बीजों के परीक्षणों पर रोक लगाये जाने से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बाजार कब्जा अभियान में बाधा पहुँची थी और वे इसी इन्तजार में थीं कि कब यह रोक हटे और वे दुबारा लूट का अपना धन्धा शुरू करें।

पिछले साल जब सुप्रीम कोर्ट ने जीन परिवर्तित बीजों के खेतों में परीक्षण पर रोक लगायी थी, तब तक सरकार

जीन परिवर्तित चावल, टमाटर, आलू, गोभी, सरसों, भिण्डी आदि 24 फसलों के परीक्षण की इजाजत दे चुकी थी और देश के 91 स्थानों पर उनकी तकरीबन 150 किस्मों के परीक्षण चल रहे थे। कम्पनियों के ''व्यावसायिक हितों'' को ध्यान में रखते हुए उनके बारे में बहुत सारी महत्वपूर्ण सूचनाएँ किसानों और देश की जनता से छिपा कर रखी गयी थीं। कम्पनियों को फायदा पहुँचाने के प्रति सरकार की वचनबद्धता इस एक तथ्य से ही उजागर हो जाती है कि जब सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से इन परीक्षणों के परिणामों और इन फसलों के पर्यावरण और स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों से सम्बन्धित रिपोर्ट दाखिल करने के लिए कहा तो सरकार ने न सिर्फ चुप्पी साध ली बल्कि ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने की सुप्रीम कोर्ट की क्षमता पर ही प्रश्न चिह्न खड़े कर दिये।

बीटी बैंगन के बारे में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर गठित एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ समिति ने जाँच में यह पाया कि बीटी बैंगन के बारे में प्रस्तुत किये गये आँकड़े कई मौकों पर वैज्ञानिक रूप से गलत थे, वैज्ञानिक प्रोटोकॉल का उल्लंघन किया गया था और आदमी व जानवरों के लिए समान रूप से घातक ऐलर्जी सम्बन्धी और विषैले प्रभावों के बारे में गलतबयानी की गयी थी।

किसानों को परीक्षण फसलों के सम्भावित खतरों के बारे में पूरी बात बताये बिना परीक्षण के लिए उनके खेत हासिल करते वक्त छल-प्रपंच का सहारा लिया गया। नतीजा यह कि आशंकित किसानों ने हरियाणा, छत्तीसगढ़ और रामनाथपुरम में बीटी चावल की फसलों को नष्ट कर दिया। कई और जगहों पर भी किसान परीक्षण फसलों को नष्ट करने के लिए मजबूर हो गये। अभी हाल ही में कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ और उडुपि जिलों के किसानों ने बीटी बैंगन की परीक्षण फसलों के दुष्प्रभावों से बैंगन की स्थानीय किस्म 'मट्टूगल्ला' को बचाने के लिए पर्यावरण और वन मन्त्रालय से गुहार लगायी है।

लेकिन क्या उस सरकार से इस तरह की उम्मीदें पालना व्यर्थ नहीं जो बीटी कपास की विफलता और उसके बुरे नतीजे सामने आ जाने के बावजूद उसकी व्यावसायिक बिक्री को बढ़ावा दे रही है। महाराष्ट्र के कृषि मन्त्री बालासाहेब थोराट विदर्भ इलाके में बीटी कपास की विफलता को स्वीकार कर चुके हैं। बीटी कपास के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव भी सामने आ चुके हैं। कपास चुनने वाली महिलाओं, बैलगाड़ी और ट्रेक्टरों में कपास लादने और उतारने वाले मजदूरों और धुनाई मिल के मजदूरों के बदन पर सूजन आना, आँखें लाल होना, बदन में खुजली होना, फफोले पड़ना जैसे लक्षण देखे गये। आन्ध्रप्रदेश चरवाहा संघ का अनुमान है कि बीटी कपास के खेतों में चरने से आन्ध्रप्रदेश में कम से कम 1800 भेड़-बकरियों और पशुओं की मौत हो चुकी है। यदि एक जानवर की कीमत 1500 भी लगायी जाये तो गड़रियों का नुकसान 1 करोड़ 80 लाख रुपये बैठता है। इस मामले में सरकार की संवेदनहीनता के खिलाफ पूरे प्रदेश के विभिन्न जिलों से आये 300 लोगों ने हैदराबाद में प्रदर्शन किया लेकिन न तो मोन्सेण्टो-माह्यको कम्पनी ने और न ही जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी ने ही इन घटनाओं की जाँच-पड़ताल की जरूरत समझी। उल्टे बीटी कपास की 49 और किस्मों को बाजार में उतार दिया गया। जाहिर है कि सरकार बेशर्मी के साथ इन कम्पनियों के दलाल की भूमिका में उतर चुकी है।

सुप्रीम कोर्ट के मौजूदा फैसले ने मोण्सेन्टो-माह्यको कम्पनी के बीटी बैंगन का भारी पैमाने पर खेतों में परीक्षण का रास्ता साफ कर दिया है। यह तय है कि इसी तरह की अन्य फसलों जैसे कीट प्रतिरोधी बीटी चावल, प्रोटीन संवर्धित आलू, रोग प्रतिरोधी मूँगफली और सरसों वगैरह के परीक्षण को भी जल्दी ही मंजूरी दे दी जायेगी। सरकार के मौजूदा निर्णय से उसका रवैया पूरी तरह खुलकर सबके सामने आ चुका है।

कैसी विडम्बना है कि लातिन अमरीका के छोटे से देश मेक्सिको में जो अमरीका की नाक के ठीक नीचे स्थित है, मक्का के जीन परिवर्तित बीजों की बिक्री की इजाजत देने से इनकार करने की ताकत है लेकिन हमारे देश की सरकार में इतनी भी ताकत नहीं रह गयी है कि इन फसलों के घातक नतीजे सामने आने के बावजूद बाजार में उनकी खुलेआम बिक्री पर रोक लगा सके। क्या इस देश को देशी-विदेशी कम्पनियों का चरागाह बनाने पर आमादा भारत सरकार की इनके साथ मिलीभगत को साबित करने के लिए इसके बाद भी किसी प्रमाण की जरूरत रह जाती है? मुनाफे और लूट-खसोट के लिए विदेशी कम्पनियाँ यदि हमारे देश के पर्यावरण का विनाश करने और यहाँ के लोगों की जान लेने पर आमादा हैं तो यह बात समझ में आती है। लेकिन हमारे देश के शासक वर्ग जानबूझ कर इस देश को विनाश की ओर क्यों धकेल रहे हैं? क्या उन्होंने तय कर लिया है कि यह देश उनका नहीं है? ▣

निठारी काण्डः असली मुजरिम को बचाने की कवायद

जिसकी आशंका थी वही हुआ। सी.बी.आई. ने पन्धेर को क्लीन चिट दे दी और सारा दोष पन्धेर के नौकर सुरेन्द्र कोली के सिर मँढ़ दिया। पुलिस जाँच टीम के सामने पन्धेर के इकबालेजुर्म के बावजूद सी.बी.आई. ने अपनी किसी भी चार्जशीट में उसे बलात्कार और हत्या का दोषी नहीं ठहराया। पायल हत्याकाण्ड में अपना अपराध स्वीकार करते हुए पन्धेर ने बताया था कि उसने ही कोली को पायल की हत्या का निर्देश दिया था क्योंकि वह उसे ब्लैकमेल करने लगी थी। दोनों अभियुक्तों की निशानदेही पर पुलिस ने 15 खोपड़ियाँ, हड्डियाँ और हत्या में प्रयुक्त चाकू भी बरामद किये थे। लेकिन इसके बावजूद सी.बी.आई. ने पायल मामले में चार्जशीट दायर करते समय पन्धेर के इकबालेजुर्म की कापी तक लगाना जरूरी नहीं समझा। उल्टे सी.बी.आई. का कहना है कि हत्या और बलात्कार के 19 मामलों में से कम से कम 16 मामलों में पन्धेर को अपने नौकर द्वारा किये गये अपराधों की कोई जानकारी नहीं थी। सी.बी.आई. ने पन्धेर पर केवल घर पर कालगर्ल बुलाने, आपराधिक षड्यन्त्र और सबूत मिटाने के आरोप लगाये हैं।

इस बीच पन्धेर अपनी पूरी चल-अचल सम्पत्ति अपने बेटे के नाम कर चुका है जिसको यह अधिकार होगा कि वह उसे बेच सके। वह पन्धेर के बैंक खातों और लॉकर का संचालन भी कर सकता है। यानि इस मामले के चलते अब पन्धेर को कोई आर्थिक नुकसान भी नहीं होने वाला। उसके बचाव का इन्तजाम पूरा हो चुका है।

सी.बी.आई. के रवैये से हताश, पीड़ित परिवार अब किसी निजी जासूसी संस्था से जाँच करवाने की सोच रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रपति से भी इसकी शिकायत की। लोगों के मन में व्यवस्था की उदासीनता और पन्धेर के प्रति पहले पुलिस-प्रशासन और अब सी.बी.आई. की पक्षधरता को लेकर कितना आक्रोश है, इसका अन्दाजा इस घटना से भी लगाया जा सकता है कि निठारी में 50 साल के एक व्यक्ति द्वारा एक छोटी बच्ची को आइसक्रीम का लालच देकर उसके साथ दुष्कर्म का प्रयास किये जाने पर लोगों ने उसे पीट-पीट कर मार डाला। गाजियाबाद की विशेष अदालत में पन्धेर की पिटाई भी आम लोगों के इसी आक्रोश की अभिव्यक्ति थी। लोगों के आक्रोश को देखते हुए गाजियाबाद की विशेष अदालत ने पन्धेर की चार्जशीट में एक अपराधी को शरण देने और उसके बचाव में घूस देने का आरोप भी जोड़ा।

निठारी काण्ड पर सी.बी.आई. के निदेशक विजय शंकर का यह कहना था कि इस दिल दहला देने वाली घटना को सुनकर कोई ताज्जुब नहीं होता। ''यह तो एक लक्षण मात्र है। निठारी इस समाज में व्याप्त विद्वेष और किसी मामले को नोटिस में लेने और कार्रवाई करने में व्यवस्था की असफलता को दर्शाता है। यह घटना इसलिए घटी क्योंकि सबसे पहले तो पुलिस ने लोगों की सुनवाई नहीं की, उसके बाद प्रशासन ने भी उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया और पूरा समाज इस मामले के प्रति उदासीन बना रहा।''

लेकिन अब कहाँ गयी सी.बी.आई. की यह दार्शनिकता! जैसे ही मामला निठारी से उठकर मानव अंग व्यापार और उससे जुड़े तन्त्र तक पहुँचा, सी.बी.आई. की भाषा बदल गयी। फिर इस लफ्फाजी का मतलब?

देश का खुफिया तन्त्र भी पुलिस-प्रशासन की तरह ही इस व्यवस्था का एक हिस्सा है, जो इस देश के अमीर पूँजीपति वर्ग की सेवा करती है। सी.बी.आई. का मकसद लोगों को न्याय देना नहीं बल्कि जाँच के नाम पर मामले को लटकाना और उसपर लीपापोती करना होता है। यह उस षड्यन्त्र का हिस्सा है जो लोगों द्वारा भोलेपन के साथ व्यवस्था पर किये जाने वाले विश्वास का फायदा उठाकर सरकारी तन्त्र उनको ठगने के लिए करता है। खुद सी.बी.आई. के पूर्व निदेशक बी.आर. लाल ने अपनी किताब 'हू ओन्स सी.बी.आई.' में यह स्वीकार किया था कि सी.बी.आई. ताकतवर लोगों को सजा नहीं दिलवा सकती।

जाहिर है जहाँ मामला आम लोगों को न्याय दिलवाने का हो और अपराधी शासक वर्ग के हों, यह व्यवस्था न्याय देने में असफल है। इससे उपजी निराशा और विक्षोभ में आकर आम आदमी न्याय करने की जिम्मेदारी अपने हाथ में लेने लगे तो इसमें भला आश्चर्य की क्या बात। गाजियाबाद में पन्धेर की पिटाई, वकीलों द्वारा उसका केस लड़ने से सामूहिक इनकार और निठारी में एक अपराधी को पीट-पीट कर मार डालने जैसी घटनाएँ यही बताती हैं कि लोग इस व्यवस्था में विश्वास पूरी तरह खो चुके हैं।

शायलॉक की भूमिका में निजी बैंक

24 जून को बैंक का बकाया पैसा वसूलने गये एक निजी संस्था के गुण्डों ने हैदराबाद निवासी यादैया को पीट-पीट कर मार डाला। स्वास्थ्य विभाग में इलेक्ट्रीशियन की नौकरी करने वाले यादैया ने आइसीआईसीआई बैंक से पन्द्रह हजार रुपये का कर्ज लिया था। समय पर सूद और कर्ज की किस्त नहीं आई तो बैंक ने उसकी वसूली का ठेका एक निजी कम्पनी को दे दिया। कम्पनी के गुण्डे वसूली के लिए सुबह 9 बजे यादैया के घर पहुँचे तो वह ऑफिस जा चुका था। उसकी पत्नी सुनन्दा से यादैया का फोटो लेकर वे गुण्डे उसकी तलाश में उसके ऑफिस पहुँचे। दोपहर बाद उनमें से एक आदमी दोबारा उसके घर आया और उसकी पत्नी से बोला कि वह अपने पति से फोन पर बात करे। फोन पर यादैया ने पत्नी को बताया कि वसूली करने आये कुछ लोग उसकी पिटाई कर रहे हैं, इसलिए वह जल्दी कहीं से दस हजार रुपये का इन्तजाम करे। सुनन्दा अभी पैसा जुटाने के बारे में सोच ही रही थी कि एक निजी अस्पताल से उसके पति के घायल अवस्था में अस्पताल लाये जाने और मरने की खबर मिली।

आसान और लुभावनी शर्तों पर कर्ज देने के बारे में अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी पर दिनों-रात विज्ञापन करने और उदारतापूर्वक कर्ज बाँटने वाला आईसीआईसीआई बैंक कर्जदारों से अपना बकाया वसूलने के मामले में पहले ही काफी कुख्यात रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार ने ऐसे ही एक मामले में आईसीआईसीआई बैंक के प्रबन्ध निदेशक और उच्च अधिकारियों के खिलाफ इलाहबाद हाईकोर्ट में मुकदमा दायर किया था। अभियोग यह था कि बैंक ने अपने एक कर्जदार पर दबाव डालने के लिए अपराधी तत्वों का इस्तेमाल किया था। बैंक के अधिकारी इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले गये जिस पर फैसला देते हुए उसने कहा कि बैंक को अपनी बकाया रकम वसूलने का अधिकार है, लेकिन वे इसके लिए बल प्रयोग नहीं कर सकते। न्यायालय ने बैंक को चेतावनी दी कि आगे से वह गैरकानूनी तौर-तरीके न अपनाये तथा रिजर्व बैंक के निर्देशों और भारतीय कानूनों का पालन करे।

आर्थिक सुधारों के नाम पर देशी-विदेशी पूँजी की नग्न, निरंकुश लूट के इस दौर में कुछ ही वर्षों में आक्रामक गति से बढ़ने वाला यह बैंक, सफलता के नये मानदण्ड और बैंकिंग उद्योग की नयी परिभाषा गढ़ने वाला माना जाता है। इस नयी परिभाषा में सामाजिक बैंकिंग, गरीबों और पिछड़े वर्गों का उत्थान या देश का समग्र विकास जैसी बातों के लिए कोई जगह नहीं। पूँजीप्रतिष्ठानों का सिर्फ एक ही मकसद रह गया है – बाजार पर कब्जा जमाना और बेतहाशा मुनाफा बटोरना। कार, मकान, उपभोक्ता सामान या अन्य किसी भी अनुत्पादक प्रयोजन के लिए कर्ज बाँटना और सूदखोरी के जरिये भारी मुनाफा कमाना ही इनकी एकमात्र प्राथमिकता और लक्ष्य है। इसी दाँव-पेच से आईसीआईसीआई बैंक आज देश में दूसरे नम्बर का कर्जदाता बैंक है और 2500 करोड़ की सालाना कमाई कर रहा है।

सफलता की इस चकाचौंध ने सरकारी बैंकों को भी इसीका अनुसरण करने और इसके साथ साझेदारी करने को प्रेरित किया है। अभी हाल ही में जब बैंक के गुण्डों ने यादैया की नृशंस हत्या की थी, उससे हफ्ते भर पहले आईसीआईसीआई बैंक ने 8750 करोड़ रुपये के शेयर बाजार में उतारे। स्टेट बैंक की निवेश समिति ने अपने इस सबसे प्रमुख प्रतिस्पर्धी के शेयर को निवेश का बेहतर मौका बताते हुए भारी मात्रा में इसके शेयर हथियाने का फैसला किया। इस बैंक ने छोटे निवेशकों (नवधनाड्य मध्यमवर्ग) को रिझाने के लिए उन्हें 50 रुपये प्रति शेयर की छूट देने का भी ऐलान किया था। मुनाफे के बेलगाम घोड़े पर सरपट भागते इस बैंक के शेयरों का धड़ल्ले से बिक जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

यादैया की हत्या कोई अपवाद नहीं। कर्ज अदा न करने वाले लोगों के साथ पाशविक व्यवहार, उनके गुर्दे निकाल लेने, तरह-तरह की यातनाएँ देने, हत्या करने या आत्महत्या के लिए मजबूर करने की खबरें आये दिन सामने आती रहती हैं। तेजी से मुनाफा बटोरने वाले आईसीआईसीआई जैसे बैंकों की सफलता के पीछे शायलॉक की हृदयहीनता और क्रूरता है जो अपना सूद वसूलने के लिए अपने कर्जदार के कलेजे से एक पौण्ड मांस काट लेने से भी बाज नहीं आता। इस खूनी खेल में हमारे देश के अभिजात शासक-प्रशासक और शेयर धारक भी शरीक हैं जिनके शेयरों की कीमत ऐसे हर जघन्य हत्याकाण्ड के साथ परवान चढ़ती है।

जहाँ सेज वहीं लड़ाई

सिंगुर और नन्दीग्राम, सेज के खिलाफ संघर्ष के प्रतीक बन चुके हैं, लेकिन किसानों का असन्तोष वहीं तक सीमित नहीं है। हरियाणा में गुड़गाँव-झज्जर, उत्तर प्रदेश में दादरी, महाराष्ट्र में रायगढ़ और पुणे, उड़ीसा में कलिंगनगर और जगतसिंहपुर तथा कर्नाटक में नन्दगावदी में सेज के लिए जबरन जमीन अधिग्रहण को लेकर किसानों का आक्रोश कभी भी नन्दीग्राम का रूप ले सकता है। इसको लेकर सरकार भी आशंकित है।

जगतसिंहपुर, उड़ीसा में दक्षिण कोरिया की कम्पनी पोस्को के लिए 4000 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। इसके खिलाफ सबसे ज्यादा आक्रोश आदिवासियों के तीन गाँवों में है। कम्पनी के अधिकारी गाँव के किसानों को छल-बल से जमीन देने के लिए तैयार करने के प्रयास में लगे हैं। ऐसे ही तीन अधिकारियों को धनकिनिया गाँव के लोगों ने बन्दी बना लिया और कम्पनी के साथ इस समझौते के बाद ही उन्हें छोड़ा कि अब वे ग्रामीणों को परेशान करने नहीं आयेंगे। लेकिन उन्हें छुड़ाने के बाद कम्पनी ने उस समझौते को तोड़ दिया और ग्रामीणों के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट कर दी जिसके बाद इन गाँवों में पुलिस की एक दर्जन प्लाटून तैनात कर दी गयी हैं।

दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल के मेयर की प्रधानमन्त्री से मुलाकात के बाद केन्द्र सरकार ने उड़ीसा सरकार को भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया तेज करने के लिए कहा। साथ ही पोस्को के अधिकारियों को यह छूट भी दी गयी कि वे स्थानीय बिल्डर्स और व्यापारियों को सेज के दर्जे का लालच देकर अपने साथ मिलाकर उनकी मार्फत भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया तेज करें। पोस्को को प्रदूषण के मामले में क्लीन चिट दे दी गयी। इसका विरोध करते हुए लोगों ने राष्ट्रीय नवनिर्माण समिति के बैनर तले प्रदूषण बोर्ड कार्यालय पर धरना दिया।

रिलायंस को सेज के लिए जमीन दिये जाने के खिलाफ रायगढ़ महाराष्ट्र में किसानों का उग्र प्रतिरोध जारी है। पेन, उराल और पनवेल तालुका के 45 गाँव इसमें आ रहे हैं। अधिग्रहण की सरकारी सूचना वापस लेने की माँग करते हुए किसानों ने कलेक्टर का घेराव किया और आगे विधानसभा को घेरने की योजना बनायी। लोगों के आक्रोश को देखते हुए एक सरकारी जाँच दल ने रायगढ़ को दूसरा नन्दीग्राम बनने से बचाने के लिए अधिग्रहण की अधिसूचना वापस लेने का सुझाव दिया है।

महाराष्ट्र में पुणे के पास वीडियोकोन के सेज के लिए चार गाँवों की जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। इसके लिए स्थानीय प्रशासन द्वारा बुलायी गयी पंचायत में ग्रामीणों ने कम्पनी के अधिकारियों को घेर लिया। बड़ी मुश्किल से ही उन्हें वहाँ से बचाकर ले जाया गया।

रिलायंस की 25000, एकड़ की गुड़गाँव-झज्जर सेज को भी भारी प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। इसमें झज्जर के 22 और गुड़गाँव के 18 गाँवों की जमीन जा रही है। रिलायंस ने बेरोजगार नौजवानों और अराजक तत्वों को शराब, नौकरी और थोड़े से पैसे का लालच देकर उन्हें अपना कमीशन ऐजेण्ट बना लिया है। ये लोग किसानों पर दबाव डालकर उन्हें जमीन देने के लिए तैयार करते हैं और उनसे झूठे हलफनामे लेते हैं, जैसे – उन्हें बेटे की पढ़ाई के लिए पैसा चाहिए, उनकी जमीन बंजर है, वगैरह। वे किसानों के संगठित प्रतिरोध के प्रयासों को भी तोड़ने की कोशिश करते हैं। ग्रामीणों ने हरियाणा किसान-मजदूर संघर्ष समिति का गठन करके कम्पनी से सीधे भिड़ने की तैयारी शुरू कर दी है और वे सेज में गाड़े जा रहे खम्भे उखाड़ रहे हैं। उनका नारा है – ''नन्दीग्राम की सेना तैयार करो।''

कर्नाटक में नन्दगावदी के उपजाऊ इलाके का सेज के लिए अधिग्रहण करने का भारी विरोध हो रहा है। यहाँ 12,350 एकड़ की सेज में कुल 36 गाँव आ रहे हैं। विपक्षी पार्टी ने भी इस सेज को रद्द करने के माँग की है। कर्नाटक सरकार द्वारा औद्योगिक बोर्ड के मार्फत 20,556 एकड़ जमीन अधिग्रहित करके रामनगरम के पास सेज के लिए दिये जाने का भारी विरोध हो रहा है। नियम के अनुसार बोर्ड साल में 1000 एकड़ से ज्यादा जमीन का अधिग्रहण नहीं कर सकता। विरोधियों का आरोप है कि सरकार औद्योगिक बोर्ड का इस्तेमाल करके कम्पनी को फायदा पहुँचा रही है। दलित संघर्ष समिति धारवाड़ के समीप टाटा को 300 एकड़ जमीन दिये जाने का तीखा विरोध कर रही है।

सेज के औचित्य को लेकर व्यवस्था के भीतर से ही सवाल उठ रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन ने आशंका जतायी है कि सेज पूँजी निवेश और रोजगार वृद्धि का सबसे अच्छा तरीका है भी या नहीं। उसका मानना है कि सेज में पूँजी केन्द्रित निवेश को बढ़ावा दिया जाता है इसलिए खास तौर पर अकुशल या कम कुशल लोगों को सेज कोई रोजगार नहीं देता। उद्योगपति राहुल बजाज ने सेज को '' विकास के नाम पर किया जा रहा भूमि घोटाला'' बताया। महाराष्ट्र बोर्ड ने सेज की नीति पर पुनर्विचार करने और उसकी जगह छोटे उद्योगपतियों को प्रोत्साहन देने का सुझाव दिया और इस बात पर चिन्ता जतायी कि बड़े पूँजीपतियों को सेज के बहाने टैक्स में छूट दिये जाने से क्षेत्रीय असमानता और अमीर-गरीब के बीच की खाई बढ़ेगी। चीन के मॉडल पर सेज बनाने को लेकर भी सवाल उठे हैं क्योंकि चीन में सेज के जरिये आयी समृद्धि की चौतरफा कीमत चुकानी पड़ रही है – पर्यावरण की तबाही, तेजी से बढ़ते अपराध, मजदूरों की बिगड़ती दशा और उनमें तेजी से बढ़ता असन्तोष और सरकार से मोहभंग। इसके चलते पिछले साल गुआंग दोंग प्रान्त में 1000 विरोध-प्रदर्शन आयोजित हुए (न्यूयार्क टाइम्स, 19/12/06)।

लेकिन अपने देश के भीतर और पूरी दुनिया में की जा रही इन आलोचनाओं पर ध्यान दिये बिना सरकार सेज के प्रस्तावों को स्वीकृत करती जा रही है। जगह-जगह हो रही थुक्का फजीहत को देखते हुए सरकार ने खुद को बिचौलिये की भूमिका से पीछे हटाने की घोषणा तो की है और सेज के क्षेत्रफल के लिए सीलिंग भी घोषित की है, लेकिन न तो सरकार और न ही पूँजीपति इन बातों के प्रति गम्भीर दिखायी दे रहे हैं। रिलायंस और अन्य कम्पनियों ने विश्वास व्यक्त किया है कि सीलिंग के नियम सख्ती से लागू नहीं किये जायेंगे और अपने वादे के मुताबिक सरकार भूमि अधिग्रहण में उनकी मदद करेगी। वाणिज्य मन्त्री कमलनाथ ने यह कहकर कि – ''सीलिंग सेज एक्ट का हिस्सा नहीं बल्कि नोटीफिकेशन का हिस्सा है और सरकार सेज के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को देखते हुए सीलिंग से ज्यादा क्षेत्रफल भी मंजूर कर सकती है'' साबित कर दिया है कि पूँजीपति वर्ग के प्रति वह कितने वफादार हैं।

सेज के नियम कानूनों में मामूली फेरबदल करके सरकार जनता की आँखों में धूल झोंकना चाहती है। लेकिन सबके बावजूद वह किसानों को अपनी नेकनीयती पर भरोसा दिलाने में असफल रही है। किसान सरकार की पक्षधरता और उसके चरित्र को समझने लगे हैं। जमीन की लूट और किसानों की बेदखली के खिलाफ आज पूरा देश नन्दीग्राम की तरह भीतर ही भीतर सुलग रहा है। लेकिन आपसी तालमेल, केन्द्रीय नेतृत्व और किसी मजबूत संगठन के अभाव में ये स्थानीय और स्वत:स्फूर्त संघर्ष सरकार के लिए चुनौती नहीं बन पा रहे हैं। फिर भी इस बात की पूरी सम्भावना है कि आने वाले दिनों में प्रतिरोध संघर्ष इन समस्याओं पर काबू पायेगा और निर्णायक दिशा में आगे बढ़ेगा।

शिद्दत से गरीब हैं
खाना-कपड़ा, कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हैं
आधा तिहाई फेफड़ा तपेदिक से
सड़-गल गया है
जलजला, तूफान में घर का घर
शहर का शहर बह गया है
फिर भी सन्तुष्ट हैं
झाड़-फूँक, किस्मत, भगवान के भरोसे हैं।

वाह रे मेरे देशवासियों!
एक कतार में खड़ा करके
सबके सब भले ही गोली से भून दिये जाओ
पर मर-मिट नहीं सकते
जुर्म के खिलाफ उखड़ना, आवाज उठाना
तो दूर रहा
खुलकर आह भी नहीं भर सकते
क्यों जान इतनी प्यारी है?

जहाँ बुनियाद में ही तफर्का कमजोरी हो
वहाँ विपत्ति लाजमी है
उसे कोई रोक नहीं सकता!

-देवेन्द्र कुमार

अमरीका से विनाशकारी खरपतवारों का आयात

अमरीका से आयात हो रहे गेहूँ की जाँच के लिए गयी भारत की टीम को अमरीकी गेहूँ के नमूने में तेजी से फैलने वाले 19 किस्मों के खतरनाक और प्रतिबन्धित खरपतवारों के बीज मिले। अनाज में और भी ढेरों तरह के खरपतवारों की मिलावट थी लेकिन उन सबकी पहचान नहीं की गयी। मई 2007 में पेश की गयी अपनी रिपोर्ट में जाँच दल ने बताया कि यह अनाज आयात के लिए **अनुपयुक्त** है।

लेकिन अमरीका के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की गरज से सरकार ने इस रिपोर्ट को दबा दिया। अमरीका के फार्मर कुल 6 करोड़ टन गेहूँ का उत्पादन करते हैं जिसमें से आधे का निर्यात होता है। इस लिहाज से भारत को 30-50 लाख टन गेहूँ निर्यात करने का सौदा अमरीका के लिए भारी महत्व रखता है और वह लगातार इसके लिए दबाव बनाये हुए है।

अमरीका और अन्य गेहूँ निर्यात करने वाले देशों का दबाव है कि भारत आयात के लिए गेहूँ की गुणवत्ता के निर्धारित मानकों को ढीला करे। साल भर पहले तक 200 किग्रा गेहूँ के एक नमूने में एक भी प्रतिबन्धित खरपतवार का बीज मिलने पर भारत में उसे आयात के लिए अनुपयुक्त माना जाता था। अमरीका की माँग है कि भारत सरकार प्रति 200 किग्रा गेहूँ में 12 हजार प्रतिबन्धित खरपतवार के बीजों की इजाजत दे।

ये खरपतवार कितने विनाशकारी हैं इसका अन्दाजा केवल दो उदाहरणों से लगाया जा सकता है। 1961 में मेक्सिको से गेहूँ के साथ कनेरी घास का बीज भारत आया था। जल्दी ही यह खरपतवार देश के पूरे गेहूँ के इलाके में फैल गया। यह खरपतवार मिट्टी से पोषक तत्वों को सोखकर गेहूँ के उत्पादन को 16-50% तक कम कर देता है। अकेले पंजाब और हरियाणा में इसके चलते सालाना लगभग 3700 करोड़ रुपये का नुकसान हो रहा है। दूसरी पार्थेनियम या कांग्रेस घास है, जो अमरीका के पीएल-480 गेहूँ के साथ भारत आयी थी और अभी तक देश के 70-80 लाख हेक्टेयर गैर कृषि क्षेत्र पर फैल चुकी है। यदि इसे पूरी तरह साफ करने के बारे में सोचा जाये तो कम से कम 1600 करोड़ रुपये का खर्च आयेगा।

लेकिन भारत सरकार को अपने देश की जनता से ज्यादा अमरीका, यूरोप और आस्ट्रेलिया के निर्यातकों की चिन्ता है। पिछले साल आस्ट्रेलिया से आये गेहूँ की खेप में भी विनाशकारी खरपतवार मौजूद थे, लेकिन सरकार ने थोड़ी खींचतान के बाद उसे भी स्वीकार कर लिया। कांग्रेस के किसान मोर्चे के एक नेता ने इसकी शिकायत करते हुए कहा, ''मेक्सिको के गेहूँ के साथ आये एक अकेले खरपतवार से लड़ते हुए हम करोड़ों रुपये खर्च कर चुके हैं और अब हमने आस्ट्रेलियाई गेहूँ बोर्ड को खुश करने के लिए 12 खरपतवार मोल लिये हैं।''

सच्चाई यह है कि भारत सरकार अमरीका और अन्य निर्यातक देशों के दबाव के आगे झुकती चली जा रही है। अप्रैल 2006 में अमरीका के राजदूत ने भारत से माँग की थी कि वह आयातित गेहूँ की गुणवत्ता के मानक ढीले करे ताकि अमरीकी कम्पनियाँ भी गेहूँ आयात के टेण्डर में बोली लगा सकें। मई में भारत सरकार ने नये मानकों का एक प्रारूप तैयार किया जिसे औपचारिक घोषणा से पहले अमरीकी अधिकारियों को दिखाया गया। **(एक आजाद देश के लिए यह कितनी शर्मनाक बात है कि उसकी सरकार देश की जनता के बजाय देश के दुश्मन से पूछकर नीतियाँ तय करे। अगर सुनिश्चित मानदण्ड का पालन न करना अपराध है तो ऐसे अपराधी के साथ मिलकर मानदण्ड को ढीला करने वाला कितना बड़ा अपराधी है?)** बुश प्रशासन ने घुन लगने, फफूँदी लगने और खरपतवारों के बीजों की मौजूदगी सम्बन्धी मानकों में और ढिलाई करने के सुझाव दिये। अमरीका ने भारत सरकार द्वारा लगायी गयी इस शर्त का भी विरोध किया कि गेहूँ में मौजूद उन कीटों को खत्म करने के लिए जो अमरीका में पाये जाते हैं, पर भारत में नहीं, अमरीका को गेहूँ का 'मिथाइल ब्रोमाइड' से धूम्रीकरण करना होगा। कनाडा, यूरोपीय संघ, रूस और आस्ट्रेलिया ने भी मानकों को और संशोधित करने के लिए दबाव डाला।

जून में शरद पवार की अमरीका यात्रा के समय अमरीकी कृषि मन्त्री ने अपने पक्ष में दबाव बनाया। इसके चलते जून में छोड़े गये टेण्डर में मानक ढीला करके गेहूँ की एक खेप में प्रति 200 किग्रा गेहूँ पर 100 प्रतिबन्धित खरपतवार के बीजों की अनुमति दे दी गयी। लेकिन अमरीका और दूसरे निर्यातक देश इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। **तब अगस्त में भारत सरकार ने निर्णय किया कि अगर**

आयात किया जाने वाला गेहूँ गुणवत्ता के मानकों पर खरा नहीं उतरता और टेण्डर में दी गयी शर्तों के अनुरूप नहीं है तो भी वह गेहूँ का आयात करेगी। कृषि मन्त्रालय ने सिर्फ इतना आदेश दिया कि ऐसे आयातित गेहूँ को, जिससे पूरे देश में घुनों, रोगों और खरपतवारों के संक्रमण के फैलने का खतरा हो ''जल्दी से जल्दी पीस दिया जाये।''

इस तरह, अमरीकी कम्पनियाँ टेण्डर में बोली लगा सकें, इसके लिए मानक अघोषित रूप से इतने गिरा दिये गये कि दरअसल कितना भी खराब गेहूँ स्वीकार किया जा सकता है। भारत सरकार की करतूतों को देखते हुए यह भी सम्भव नहीं लगता कि वह संक्रमित गेहूँ कि पिसाई के अपने आदेश का पालन सुनिश्चित कर सकेगी। भारत के कृषि वैज्ञानिकों ने मानकों में इस तरह ढिलाई करने के दुष्परिणामों को लेकर सरकार को आगाह किया था, पर सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

अमरीकी दबाव के सामने भारत सरकार का यह खुला आत्मसमर्पण पिछले 16 सालों से जारी आर्थिक नीतियों की अनिवार्य परिणति है। गेहूँ के मामले में आत्मनिर्भर भारत कैसे गेहूँ का आयात करने वाला देश बना दिया गया, इसके पीछे भारत की जनता के साथ भारत के शासक वर्गों द्वारा किये जा रहे छल-फरेब की एक लम्बी दास्तान है।

कुछ साल पहले तक देश के गोदामों में गेहूँ और चावल रखने की जगह नहीं थी। इसका फायदा उठाकर भारत सरकार ने अतिरिक्त गेहूँ के साथ-साथ गेहूँ के सुरक्षित भण्डार भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, निर्यातकों और आटा पैक करने वाली कम्पनियों को सस्ते में बेच डाले। इसके बाद भी जो गेहूँ बच गया, उसे एक बहुत बड़े घोटाले के तहत गोदामों से गायब करवा दिया। सरकारी खरीद कम कर दी और बहुराष्ट्रीय और देशी कम्पनियों को किसानों से सीधे खरीद करने की छूट दे दी। इन नीतियों के चलते जून 2006 तक सरकारी गोदामों में अनाज का भण्डार जरूरत से कम हो गया। लेकिन फिर भी गेहूँ की प्रचुरता बताकर सरकार खुले बाजार में गेहूँ बेचती रही और आयात की योजना से इनकार करती रही। फिर अचानक नयी फसल के आने के ठीक दो महीने पहले गेहूँ की कमी के बारे में देश को बताया गया और उसके आयात की घोषणा की गयी।

इस तरह एक सोची समझी षड्यन्त्रकारी नीति के तहत देश की खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता खत्म कर दी गयी और उसे बहुराष्ट्रीय निगमों के आयातित गेहूँ का मोहताज बना दिया गया। स्वाभाविक है कि साम्राज्यवादी इसका फायदा उठायें और अपनी शर्तें थोपें। अभी तो इसकी शुरुआत है।

जाहिर है भारत का शासक वर्ग अमरीका से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए पूरे देश की खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण तक को दाँव पर लगाने के लिए तैयार है। वह अमरीका से आ रही संक्रमित गेहूँ की खेप को रोककर उसकी नाराजगी मोल नहीं लेना चाहता, वह भी ऐसे समय में जब अमरीका भारत के साथ ''नाभिकीय समझौता'' करके उसे ''परमाणु शक्ति'' का दर्जा दिलवा रहा हो और उसके ''क्षेत्रीय महाशक्ति'' बनने में मदद दे रहा हो। लेकिन शासक वर्ग की इस महत्वाकांक्षा की कीमत इस देश की जनता कब तक चुकाती रहेगी?

न्यायपालिका में भ्रष्टाचार

मुजरिम बने मुन्सिफ

हमारे मुल्क में जिस किसी का भी कोर्ट-कचहरियों से साबका पड़ता है, उसे खुद ही इस बात का तजुर्बा हो जाता है कि इन्साफ और चाँदी के जूतों में क्या रिश्ता है। 'ट्राँसपिरेन्सी इण्टरनेशनल' नामक एक संस्था की 'वैश्विक भ्रष्टाचार रिपोर्ट 2007' ने इसी आम-फहम हकीकत को दर्ज किया है। इस रिपोर्ट में दुनिया के 32 देशों की न्यायपालिकाओं में भ्रष्टाचार की मौजूदा स्थिति का लेखा-जोखा लिया गया है जिसमें भारत भी शामिल है।

रिपोर्ट में कहा गया है – '' हालाँकि भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और जवाबदेही विद्यमान है, लेकिन भ्रष्टाचार वहाँ दिनोंदिन खुलेआम होता जा रहा है। दो फैसले इसका प्रमाण देते हैं, पहला 2002 में हुए गुजरात दंगों के बारे में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला जिसमें इस बात का पर्दाफाश किया गया है कि सत्ताधारी पार्टी से जुड़े लोगों को बरी करके यह व्यवस्था न्याय की हत्या को रोक पाने में असफल रही है।

दूसरा फैसला एक युवती, जेसिका लाल की 1999 में हुई हत्या में शामिल 9 आरोपियों को 2006 में बरी किये जाने से जुड़ा हुआ है, जबकि यह वारदात ढेर सारे गवाहों की मौजूदगी में हुई थी। आरोपियों में से एक किसी राजनेता का बेटा था।

रिपोर्ट के अनुसार ''भ्रष्टाचार दो तरह से सामने आता है – **एक है मुन्सिफ अधिकारी का भ्रष्टाचार और दूसरा है व्यापक न्याय व्यवस्था में भ्रष्टाचार। ...व्यापक न्याय व्यस्था में भ्रष्टाचार इसके पूरे ढाँचे में मौजूद है।** मुकदमे के दौरान कागजी कार्रवाई प्रक्रिया में किसी व्यक्ति विशेष को मनचाहे तरीके से फैसला लेने की काफी गुंजाइश है और ऐसे कई मोड़ आते हैं जहाँ कचहरी के बाबू, अभियोक्ता और तफतीश करने वाले पुलिस अधिकारी अपने अधिकार का इस तरह दुरुपयोग कर सकते हैं कि किसी को पता भी न चलने पाये।

2005 में सेण्टर फॉर स्टडीज ने पूरे भारत की निचली अदालतों में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में आम जनता के प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभवों का एक सर्वेक्षण किया। अधिकांश लोगों की राय थी कि अगर पैसा देने से उनका काम हो जाये तो रिश्वत देने में उन्हें कोई हर्ज नहीं।

रिपोर्ट बताती है कि ''12 महीने की अवधि में दी गयी रिश्वत की कुल रकम लगभग 2,630 करोड़ रुपये है। विभिन्न लोगों के बीच रिश्वत का का बँटवारा इस अनुपात में हुआ – 61 फीसदी वकीलों को, 29 फीसदी कोर्ट के हाकिमों को , 5 फीसदी जजों को और 5 फीसदी बिचौलियों को।

भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण मामले के निपटारे में देर होना, जजों की कम संख्या और जटिल न्याय प्रक्रिया है।

फरवरी 2006 में सर्वोच्च न्यायालय में 33,635 मुकदमें लम्बित थे जहाँ केवल 26 जज हैं और उच्च न्यायालयों में 33,41,040 मुकदमें लम्बित थे, जहाँ केवल 670 जज हैं। अनिर्णीत मुकदमों का यह भारी ढेर, सुनवाई को बार-बार स्थगित करने को बाध्य करता है, जिसे तेजी से निबटाने के लिए लोग घूस देने को मजबूर हो जाते हैं।

मुकदमों की सुनवाई में विलम्ब और भ्रष्टाचार के चलते लोगों में न्याय व्यवस्था के प्रति निराशा और क्षोभ व्याप्त है। न्याय के मन्दिर में अन्याय का यह नंगा नाच देख कर भला इस न्याय व्यवस्था में किसका भरोसा कायम रहेगा?

विदेशी नावों को लाइसेन्सः मछुआरों को रोटी के लाले

विदेशी नावों को गहरे समुद्र में मछली पकड़ने का लाइसेन्स जारी रखने के सरकारी फैसले से मछलियों की संख्या काफी तेजी से घट रही है और मछुआरों की जीविका तबाह होती जा रही है।

अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में विदेशियों की घुसपैठ के चलते देश के विभिन्न हिस्सों में लाखों लोग अपने परम्परागत रोजगारों से उजाड़े जा चुके हैं। '90 के दशक में विदेशी नावों से मछली मारने की अनुमति दिये जाने के खिलाफ मछुआरों ने जबरदस्त आन्दोलन किया था, लेकिन सरकार पर उसका कोई खास असर नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा गठित मुरारी कमेटी की रिपोर्ट में विदेशियों को गहरे समुद्र में मछली मारने का लाइसेन्स नहीं देने का सुझाव दिया गया था। सरकार ने नेशनल फिशरमैन फोरम को यह आश्वासन भी दिया था कि वह मुरारी कमेटी की सिफारिशों को लागू करेगी। बाद में सरकार अपने वादे से मुकर गयी और उसने 110 विदेशी नावों को लाइसेन्स जारी कर दिया।

मानसून से पहले 50 औद्योगिक कम्पनियों द्वारा 90 विदेशी ट्रॉवलर्स (मछली पकड़ने का जहाज) का प्रयोग होने के चलते मछलियों की संख्या लगातार घटती जा रही है। मानसून के दौरान मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध होता है। लेकिन इस वर्ष विदेशी कम्पनियों द्वारा अत्याधुनिक मशीनों से बेतहाशा मछली पकड़ने के कारण मानसून से ही मछुआरों को मछली की कमी के चलते अपना काम बन्द कर देना पड़ा। मानसून से पहले बहुतायत में मिलने वाली मकरैल, सारडीन और झींगा जैसी मछलियाँ भी दुर्लभ हो गयी हैं, जिससे मछुआरों के आगे रोजी-रोटी का संकट आ गया।

बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियों को मछली मारने का लाइसेन्स देकर सरकार ने गरीब मछुआरों को उन नरभक्षी शार्कों के जबड़े में धकेल दिया है। सरकार के खिलाफ मछुआरों में घोर नफरत और आक्रोश व्याप्त है और वे आन्दोलन की तैयारी में लगे हैं।

कानूनी कारोबार पर विदेशी पूँजी की निगाह

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर में भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में विदेशी पूँजी का निर्बाध गति से प्रवेश जारी है, चाहे उद्योग, बैंक-बीमा, दूरसंचार और खेती हो या शिक्षा, मीडिया और सिनेमा। अब न्याय और कानून के क्षेत्र को भी विदेशी पूँजी निवेश के लिए खोलने की तैयारी है।

ब्रिटेन चाहता है कि कानून के क्षेत्र में काम करने वाली कम्पनियों को भारत में धन्धा करने की अनुमति दी जाये। इस दिशा में बात काफी आगे बढ़ चुकी है। भारतीय वकीलों और न्यायाधीशों का एक प्रतिनिधि मण्डल इसी उद्देश्य से मार्च महीने में ब्रिटेन के दौरे पर गया था।

लॉ सोसाइटी ऑफ इंग्लैण्ड एण्ड वेल्स ने अखिल भारतीय अधिवक्ता संघ और भारतीय न्यायाधीश परिषद् को ब्रिटिश विधि कम्पनियों के भारत में प्रवेश की सम्भावनाएँ तलाश करने के लिए अपने देश के दौरे पर बुलाया था।

ब्रिटेन की कानून राज्यमन्त्री श्रीमती बारोनेस आश्टन ने स्पष्ट किया कि ब्रिटेन के वकीलों को भारतीय न्यायालयों में काम करने में कोई रुचि नहीं है। यहाँ की कम्पनियाँ भारत में सिर्फ व्यापारिक सौदों और लेन-देन के मामलों में ही काम करने की इच्छुक हैं जिसका उद्देश्य विदेशी निवेशकों को सुविधाएँ और सलाह देना होगा। उन्होंने कहा कि कानून सम्बन्धी ब्रिटिश कम्पनियाँ भारत में पूँजी निवेश करने वाले विदेशी कारपोरेट मुवक्किलों के लिए डाक्यूमेण्ट तैयार करने, व्यापारिक विवादों का सुलह-समझौता करवाने तथा वित्त और बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करने तक सीमित रहेंगी। इसका फायदा गिनाते हुए ब्रिटिश कानून मन्त्री ने कहा कि भारत के वकील उनके ज्ञान और अनुभव से काफी फायदा उठा सकते हैं और उनसे प्रतियोगिता भी कर सकते हैं। इस काम में हमें कोई जल्दी नहीं है क्योंकि जब हम भारत में अपनी कम्पनियों का दफ्तर खोल लेंगे तभी अपने देश में भारतीय वकीलों को काम करने की अनुमति देंगे। इसलिए यदि भारतीय वकील इस काम में अड़ंगा लगाते हैं तो हमें इसकी कोई परवाह नहीं है।

ब्रिटिश कानून मन्त्री का यह तेवर तब सामने आया जब यहाँ प्रतिनिधियों ने साफ तौर पर उन्हें बता दिया कि भारतीय वकील किसी भी कीमत पर किसी भी तरह के काम के लिए विदेशी वकीलों को भारत में आने की अनुमति दिया जाना स्वीकार नहीं करेंगे।

अपने विदेशी मुवक्किलों के मुकदमे लड़ने के उद्देश्य से विदेशी कानूनी कम्पनियों द्वारा भारत में दफ्तर खोलने के बारे में वकीलों और न्यायाधीशों के प्रतिनिधि मण्डल ने कहा कि इसके बारे में सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद ही फैसला लिया जायेगा। उनका कहना था कि भारत में 95 फीसदी वकील व्यक्तिगत रूप से अपना काम करते हैं। यहाँ कानूनी मामलों से सम्बन्धित कम्पनियाँ बहुत थोड़ी हैं। इसके विपरीत इंग्लैण्ड में कानूनी मामलों का संचालन बड़े-बड़े पूँजी-प्रतिष्ठानों के द्वारा होता है। इनके भारत में प्रवेश करने पर यहाँ के वकीलों का भारी नुकसान होगा।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल को अपने देश में आमन्त्रित करने, विभिन्न न्यायालयों, हाउस ऑफ लॉर्डस और कानून के महाविद्यालयों का दौरा करवाने और कानून मन्त्री सहित अनेक संस्थाओं के शीर्षस्थ लोगों के साथ इन प्रतिनिधियों का विचार-विमर्श आयोजित करने का मकसद ब्रिटिश कानूनी कम्पनियों को भारत में प्रवेश दिलाना है। ब्रिटिश सरमायादार भारत के कानूनी कारोबार में अपनी दखलंदाजी, पूँजी निवेश और बेतहाशा मुनाफे के लिए जो जोड़-तोड़ कर रहे हैं, उसी की अगली कड़ी है इस भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का ब्रिटिश दौरा।

इसी बीच लॉ सोसाइटी ऑफ इंग्लैण्ड तथा कानूनी कारोबार में लगी भारतीय कम्पनियों और अखिल भारतीय अधिवक्ता संघ ने कानूनी कारोबार में आपसी सहयोग का एक समझौता भी किया। बार कौंसिल ऑफ इण्डिया ने इस समझौते को अवैध बताते हुए कहा कि भारत में कानूनी शिक्षा को नियन्त्रित करने वाली विधिसम्मत संस्था केवल बार कौंसिल ऑफ इण्डिया ही है। इसके अलावा कोई अन्य संगठन ऐसे समझौते के लिए अधिकृत नहीं है।

कई वर्षों से भारत में कानूनी कारोबार करने के लिए विदेशी कम्पनियाँ ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर रही हैं। लेकिन वकीलों और बार कौंसिल के प्रबल विरोध के चलते अब तक इसपर रोक जारी है। यह स्थिति आगे भी कायम रहेगी, यह कहना मुश्किल है क्योंकि वकीलों के बीच ही एक बड़ा तबका विदेशियों को बुलाये जाने के पक्ष में है। सरकार तो ऐसा चाहती ही है।

कानून के धन्धे में विदेशी सरमायादारों की घुसपैठ के दुष्परिणाम केवल मुट्ठी भर कम्पनियों के एकाधिकार, कानूनी कारोबार के निगमीकरण और वकीलों की आय में कमी जैसे आर्थिक मामलों तक ही सीमित नहीं रहेंगे। भारतीय न्याय प्रणाली जो पहले ही पैसे वालों के पक्ष में है, आने वाले दिनों में बेहिसाब पैसेवालों (विदेशी सरमायादारों) के इशारों पर नाचने लगेगी, इसकी पूरी सम्भावना है। न्याय के क्षेत्र में विदेशी पूँजीपतियों का प्रवेश न्याय कारोबार में लगे लोगों के लिए ही नहीं बल्कि देश की आम आबादी के लिए भी खतरनाक साबित होगा।

सुरक्षा बलों में बढ़ता तनाव और असन्तोष

31 अक्तूबर 2006: 26 फरवरी को सिपाही एस सी बोहरा ने लेफ्टीनेण्ट कर्नल को गोली से उड़ा दिया। कोर्ट मार्शल में 31 अक्तूबर को उसे मौत की सजा सुनायी गयी।

18 अप्रैल 2007: जम्मू-कश्मीर में लाइन ऑफ कण्ट्रोल के पास अपने कैम्प में सेना के एक जवान ने आत्महत्या कर ली। साल के पहले तीन माह में ही सेना में अभी तक 22 आत्महत्याएँ हो चुकी हैं।

26 मई 2007: पिछले साल अपने अधिकारी को गोलियों से भून डालने के अपराध में सिग्नल यूनिट के सिपाही सत्यम कुमार को कोर्ट मार्शल में मृत्युदण्ड दिया।

4 जून 2007: सिक्ख लाइट इनफेण्ट्री की 13वीं बटालियन के सिपाही मलखान सिंह ने अधिकारी लांसनायक से कहासुनी होने पर अपनी सर्विस रिवाल्वर से उसे गोली मार दी।

8 जून 2007: ललितपुर उत्तर प्रदेश में जवान संजीव शर्मा ने अपने अधिकारी सूबेदार ठाकुर से झगड़ा होने पर उसे गोली से उड़ा दिया।

25 जून 2007: पिछले अक्तूबर में जम्मू-कश्मीर में अपने तीन अधिकारियों को गोली से उड़ा देने वाले सिपाही को कोर्ट मार्शल में उम्र कैद की सजा सुनायी। कोर्ट मार्शल के मुताबिक एक महीने पहले रिक्रूट हुए इस सिपाही के साथ अधिकारियों का व्यवहार गलत था और उसके स्वाभिमान और संयम को क्षति पहुँचाने वाला था। ''गम्भीर उकसावे'' के बाद ही उसने ये हत्याएँ कीं। इस महीने में हुआ यह तीसरा कोर्ट मार्शल है। जनवरी 2006 के बाद से 140 से ज्यादा सिपाहियों ने आत्महत्या की है और 25 पर अपने अधिकारियों को मारने के केस चल रहे हैं।

29 जून 2007: पंजाब पुलिस में 52 फीसदी सिपाही और दरोगा नशाखोरी के शिकार हैं। पिछले तीन महीनों में 115 सिपाहियों पर अपराध के 90 मामले दर्ज किये गये हैं जिनमें बैंक डकैती भी शामिल है। पंजाब पुलिस के आई जी के मुताबिक, इसका कारण है काम का बढ़ता दबाव, डयूटी के घण्टों का बहुत ज्यादा होना और नशीली दवाओं और भाँग-शराब आदि का आसानी से उपलब्ध होना। पंजाब पुलिस यहाँ के समाज से अलग नहीं है जो खुद नशाखोरी में डूबा है। पुलिस विभाग अकेले इस समस्या का समाधान नहीं कर सकता।

30 जून 2007: अधिकारी के छुट्टी देने से मना करने पर तीसरी बटालियन के सिपाही ए के सरकार ने सशस्त्र पुलिस हैडक्वार्टर के बड़े अधिकारियों की आवासीय बिल्डिंग पर अपनी रायफल की पूरी मैगजीन फायर कर दी।

3 जुलाई 2007: अपने वरिष्ठ अधिकारियों के बुरे बर्ताव के कारण सेना की कैप्टन मेघा राजदान ने आत्महत्या कर ली। पिछले साल एक और सैनिक अधिकारी लेफ्टीनेण्ट सुष्मिता चक्रवर्ती ने भी अधिकारियों के बुरे सुलूक के कारण खुद को गोली मार ली थी। 12 लाख की भारतीय सेना में हर साल औसतन 90 आत्महत्याएँ होती हैं।

23 जुलाई 2007: जम्मू-कश्मीर के गुरेज में तैनात बिहार रेजिमेण्ट के सिपाही मोहन चन्द्र मुण्डा ने अपने अधिकारी मेजर पी. अलक्जेण्डर की गोली मार कर हत्या कर दी। इस वर्ष अब तक 54 सैनिकों द्वारा आत्महत्या और अपने 6 सहकर्मियों की हत्या की घटनाएँ सामने आ चुकी हैं। अधिकांश घटनाएँ जम्मू-कश्मीर में तैनात राष्ट्रीय रायफल में हुई हैं।

सुरक्षा बलों से सम्बन्धित ऐसे ही समाचार लगातार अखबारों में प्रकाशित होते रहते हैं। ये घटनाएँ अपवाद नहीं बल्कि स्थायी परिघटना बनती जा रही हैं तथा भारतीय सेना और पुलिस बलों में लगातार गहराते संकट की अभिव्यक्तियाँ हैं। सैनिकों और सिपाहियों के भीतर बढ़ता तनाव कहीं आत्महत्या के रूप में सामने आता है, कहीं नशे की लत के रूप में, तो कहीं अधिकारियों की हत्या करने तक भी बात चली जाती है। साइकोसिस, न्यूरोसिस, नशाखोरी और गहरे अवसाद जैसी मानसिक बीमारियों के कारण सेना छोड़ देने वालों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। पिछले साल 558 लोगों को इन कारणों के चलते नौकरी से हटाया गया जबकि 2004 में ऐसे 406 मामले सामने आये थे।

फौज में बढ़ती इन हत्याओं-आत्महत्याओं की अनदेखी करना अब सरकार के लिए असम्भव हो चुका है। रक्षा मन्त्री के निर्देश पर डिफेंस इंस्टीट्यूट ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्च द्वारा किये गये एक अध्ययन में यह स्वीकार किया गया है कि ''पेशागत और पारिवारिक तनावों के अलावा अधिकारियों द्वारा अपमानित और परेशान किया जाना भी .. आत्महत्या की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाला एक प्रमुख कारण है।'' रिपोर्ट के मुताबिक ''घरेलू परेशानियों में फँसा सिपाही वरिष्ठ अधिकारियों से मदद, समर्थन और मार्गदर्शन की उम्मीद करता है। अधिकारी को संकट के समय उपलब्ध रहना चाहिए। उन्हें सिपाही की समस्याओं के प्रति मानवीय

रुख अपनाना चाहिए और उसके साथ गाली-गलौज का बर्ताव नहीं करना चाहिए।'' इस बात में यह निहित है कि अधिकारी ऐसा नहीं करते, बल्कि इससे ठीक उल्टा व्यवहार करते हैं। सैनिक व अर्ध सैनिक बलों तथा जम्मू-कश्मीर में तैनात राष्ट्रीय रायफल में आत्महत्या या अधिकारियों की हत्या के मामले सबसे ज्यादा हैं, खासकर अग्रिम मोर्चों पर तैनात टुकड़ियों में या उन इलाकों में ऐसे मामले बढ़े हैं, जहाँ स्थानीय विद्रोह को दबाने के लिए सेना लगायी जाती है (एक लाख के पीछे 9 मामले)।

रिपोर्ट में की गयी सिफारिशों के आधार पर सेना में जवानों की भर्ती के दौरान भी मनोवैज्ञानिक और व्यक्तित्व परीक्षण शुरू किया गया है। इसके अलावा कुछ कल्याण कार्यक्रम भी शुरू करने की योजना है, जैसे – फील्ड में और विद्रोही इलाकों में तैनात सिपाहियों को प्रोत्साहन, शान्तिपूर्ण इलाके और फील्ड पोस्टिंग से सम्बन्धित नियमों का सख्ती से पालन, छुट्टी के नियम में परिवर्तन ताकि जवान को उसकी जरूरत के समय छुट्टी मिल सके, जवानों की पारिवारिक समस्याओं के हल के लिए उपाय करना तथा अधिकारियों और सिपाहियों के बीच नजदीकी रिश्ता कायम करना। सिपाहियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की जाँच नियमित रूप से करने की भी सिफारिश की गयी है।

डिफेंस इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट में पहली बार कुछ बातों को स्वीकार जरूर किया गया है लेकिन मामला सिर्फ इतना ही नहीं है। सशस्त्र बलों के भीतर दिखायी दे रहा यह संकट कोई छोटी-मोटी समस्या नहीं है कि कुछ सतही सुधारों से इसका समाधान हो जायेगा। यह संकट फौज और पुलिस के ढाँचे से सम्बन्धित है और इसकी जड़ें इतिहास में हैं। इसलिए बुनियादी ढाँचे में बदलाव करके ही इन समस्याओं से निजात पायी जा सकता है।

हमारे देश में फौज और पुलिस व्यवस्था औपनिवेशिक शासकों से विरासत में मिली है। आजादी के बाद भी कुछ सतही सुधारों के अलावा उसके ढाँचे में कोई बुनियादी बदलाव नहीं किया गया। अंग्रेजों द्वारा बताये गये कारण अभी भी जारी हैं। फौज की बटालियनें अपने गौरवशाली इतिहास में उस समय को भी शामिल करती हैं जब वे अंग्रेज बहादुर के हुक्म पर देश की जनता का दमन किया करती थीं। फौज के अधिकारी जवानों के साथ गुलामों जैसा बर्ताव करते हैं और गोरे साहबों से भी ज्यादा ऐश-मौज की जिन्दगी गुजारते हैं। छोटी सी गलती पर जवानों को कड़ी सजाएँ देना, उनके साथ गाली-गलौज और अपमानजनक व्यवहार करना आम बात है। अधिकारी को उनकी परेशानियों से कोई लेना-देना नहीं होता, उन्हें तो बस हुक्म की तामील से मतलब होता है। सिपाहियों को उबाऊ और अनुत्पादक कामों में लगाया जाता है और आम आबादी से अलग उन्हें बैरकों के भीतर कठोर नियन्त्रण में रखा जाता है। उनकी सोचने-समझने की क्षमता को कुन्द करके उन्हें उत्पीड़न के बेजान हथियार में बदल दिया जाता है।

लेकिन आज जमाना बदल रहा है। भारी संख्या में पढ़े-लिखे नौजवान भी पुलिस-फौज में भर्ती हो रहे हैं, जो आजादी, स्वाभिमान और आत्मसम्मान जैसी बातों के प्रति सचेत हैं। वे अधिकारियों के निर्देश पर अनुशासित तरीके से लोगों पर गोली भी चलाते हैं लेकिन अनुचित आदेशों और अनावश्यक रौब-गालिब करने से वे विचलित भी होते हैं। वे अपने और अधिकारियों के रहन-सहन और जीवन स्तर की भी तुलना करते हैं और उसके कारणों को भी समझने का प्रयास करते हैं।

वे उन किसानों के बेटे हैं जो सरकारी नीतियों के कारण तबाह हो रहे हैं और आत्महत्या करने लिए मजबूर हैं। सरकार द्वारा बताये जा रहे दुश्मन से ज्यादा सरकारी नीतियों के चलते बढ़ती जा रही सामाजिक और पारिवारिक समस्याएँ उन्हें कहीं ज्यादा कचोटती हैं और उनके समाधान की चिन्ता भी उन्हें सताती है। उन अधिकारियों के प्रति उनके मन में कोई सम्मान का भाव नहीं रह गया है, जो बिना कुछ किये जवान से बहुत अच्छा जीवन जीते हैं और उनके साथ गुलामों जैसा बर्ताव करते हैं।

फौज का औपनिवेशिक ढाँचा चरमरा रहा है। सिपाहियों में इसको लेकर तनाव और असन्तोष बढ़ता जा रहा है। एक नयी व्यवस्था ही इस समस्या को हल कर सकती है, जो बराबरी और जनवाद पर आधारित हो, जिसमें अधिकारी और जवान के बीच बराबरी पर बात करने के रिश्ते हों और उनके रहन-सहन में जमीन-आसमान का अन्तर न हो, जहाँ फौज का मुख्य काम जनता के आन्दोलनों का दमन करना नहीं बल्कि देश के निर्माण में जनता के साथ मिलकर रचनात्मक सहयोग करना हो। मौजूदा ढाँचे के भीतर छोटे-मोटे सुधारों से यह चीज नहीं आ सकती। सिपाहियों द्वारा की जा रही हत्या या आत्महत्या की हर घटना सुरक्षा बलों की पूरी व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन की जरूरत का शिद्दत के साथ अहसास करा रही है।

मासूम बच्चों के खून से सने हीरे

करोल बाग का एक इलाका है बेदनपुरा। करोल बाग के बाकी मुहल्लों की तरह भीड़भाड़ वाला इलाका। यहाँ बाथरूम साइज के सैकड़ों दड़बेनुमा कमरों में छोटे-छोटे बच्चे हीरा तराशने का काम करते हैं। 23 मार्च 2007 को इस खूनी कारोबार के बारे में लोगों को पता तब चला जब एक बिल्डिंग में लगी भयानक आग में 6 कारीगर बच्चे झुलस कर मर गये। मालिक ने उनके काम करने के कमरों में बाहर से इलेक्ट्रॉनिक ताला लगा दिया था। इन नरक से भी बदतर कारखानों में जहाँ बच्चे हीरे और सोने के आभूषण बनाते हैं, हमेशा बाहर से ताला लगा होता है ताकि बच्चे सामान लेकर न भागने पायें।

इस काम में लगे हजारों बाल मजदूरों में से अधिकांश पश्चिम बंगाल के गरीब इलाकों से आते हैं। कारीगर के रूप में ऐसे बच्चों को काम पर रखने के कई फायदे हैं। चरमगरीबी के कारण अपने घर-परिवार और माँ-बाप को छोड़कर आने वाले ये बच्चे नाममात्र की मजदूरी पर खटने के लिए मजबूर होते हैं। ये कठिन से कठिन परिस्थिति में काम करके भी खुश रहते हैं क्योंकि इससे उन्हें कम से कम दो वक्त की रोटी तो मिल ही जाती है। मालिक उन्हें इसलिए भी रखना पसन्द करते हैं क्योंकि बच्चों से लम्बे समय तक काम करवाया जा सकता है और उन्हें बन्धक बनाकर भी रखा जा सकता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कारण है कुपोषण के शिकार उन दुबले-पतले बच्चों की नाजुक और लचीली उंगलियाँ जो जटिल आभूषणों को भी कुशलता से गढ़ सकती हैं।

सोना 1064 डिग्री सेल्सियस पर पिघलता है, जो पानी के उबलने के तापमान से 10 गुना ज्यादा है। अमूमन गर्म चाय का प्याला भी अगर शरीर पर गिर जाये तो दो-तीन सेकेण्ड में शरीर को बुरी तरह जला सकता है जबकि उसका तापमान 80 डिग्री सेल्सियस होता है। अंदाजा लगाया जा सकता है कि ये बच्चे कितने खतरनाक माहौल में काम करते हैं। एक छोटी सी गलती, थकान से बोझिल बच्चों की एक छोटी सी झपकी उनकी तबाही और मौत का कारण बन सकती है।

ठेकेदार और कारखाने के मालिक जानते हैं कि अगर किसी बच्चे के साथ कोई भी दुर्घटना हुई तो उसकी आवाज फिर कभी बाहर सुनायी नहीं देगी। बच्चे अपने घरों से इतनी दूर हैं कि उनकी मौत की खोज-खबर लेने वाला कोई नहीं होता। उनके अधिकारों के लिए लड़ने वाली कोई यूनियन भी नहीं है।

इस दुर्घटना के बाद भी यही हुआ – मरने वाले 6 बच्चों में से किसी को भी कोई मुआवजा मालिकों को नही देना पड़ा। कोई नेता भी उनकी खोज खबर लेने नहीं आया क्योंकि आभूषण फैक्ट्री के मालिक उनकी जेब गरम करते हैं, और उनकी पार्टी को चन्दा देते हैं। पुलिस ने भी मामले को दबा दिया। पुलिस यह जानती है कि कमरे के दरवाजे पर बाहर से ताला लगाया गया था, लेकिन फिर भी उसने हत्या का मामला दर्ज नहीं किया। गैरइरादतन हत्या की धारा लगायी गयी जिसमें अधिकतम सजा तीन साल की हो सकती है। ये हत्याएँ लापरवाही की श्रेणी में नहीं रखी जा सकतीं क्योंकि दरवाजे पर ताला यह जानबूझ कर लगाया गया था कि दुर्घटना भी हो सकती है। यदि दरवाजा खुला होता तो बच्चे जलकर क्यों मरते?

जाहिर है कि लेबर ठेकेदार और मालिक का कुछ नहीं बिगड़ेगा। इस देश में जब ऐसे लोगों को न्याय नहीं मिलता जिनकी पैरवी करने वाले लोग हैं, तो इन बच्चों के लिए न्याय की उम्मीद कैसे की जाये।

यह हृदयविदारक दुर्घटना जिन्दा बच गये कारीगर बच्चों की नारकीय जिन्दगी में कोई बदलाव लाये बिन गुजर गयी। जब तक कोई और बड़ा हादसा न हो जाये तब तक इस पर अब कोई चर्चा तक नहीं करेगा। न उनके काम करने की परिस्थितियों में कोई सुधार होगा और न ही कोई यह पूछने आयेगा कि बाल मजदूरी पर कानूनी रोक का मजाक उड़ाते हुए इन हजारों बच्चों को काम पर रखने वाले क्या अपराधी नहीं हैं? हाँ, टीवी और अखबारों में बाल मजदूरी के खिलाफ मनोहर सरकारी विज्ञापन बदस्तूर आते रहेंगे।

बेदनपुरा का यह हादसा 'ब्लड डायमण्ड' नाम की एक दिल दहला देने वाली फिल्म की याद दिलाता है जिसमें अफ्रीका की हीरा खदानों में ढेर सारे लोगों को उनके गाँवों से जबरदस्ती पकड़ कर लाया जाता है। लोगों से मजदूरी

करवायी जाती है और उनके छोटे बच्चों को पेशेवर हत्यारा बनाया जाता है ताकि वे किसी भी बगावत को कुचल सकें। मजदूरों को दिनभर पानी में खड़े रहकर हीरे खोजने होते हैं। चोरी का सन्देह होने पर ही उन्हें गोली मार दी जाती है। हीरे का व्यापार करने वाली कम्पनियाँ इन खानों पर कब्जे के लिए आपस में लड़ती रहती हैं और इसके लिए कबीलों को एक-दूसरे से लड़वाती रहती हैं। अराजकता, हत्या, लूट और बर्बरता का चारों ओर राज दिखाई देता है। लेकिन जहाँ इस लूट की योजनाएँ बनती हैं, वे होटल जगमगाते रहते हैं।

बेदनपुरा के इन बच्चों के बनाये आभूषण रोशनी से जगमगाते वातानुकूलित ज्वैलरी हाउसों और शोरूमों में प्रदर्शित किये जाते हैं और उन्हें पहनने वाले गर्व महसूस करते हैं। उन हीरे जड़े गहनों की चमक-दमक और उसे धारण करने वालों का सौन्दर्य बनाये रखने के लिए कितनी मासूम जिन्दगियाँ नरक-कुण्ड में झोंक दी जा रही हैं, कौन जानता है! और जान भी लें तो क्या उन पर कोई असर होगा?

आर्थिक सुधार

राज्य सरकारों पर केन्द्र की तानाशाही

1990 के दशक के आरम्भ से ही हमारे देश में आर्थिक बदलावों की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी वह आज भी जारी है। राज्य के विभिन्न अंगों - वित्त मन्त्रालय, योजना आयोग या वित्त आयोग द्वारा पिछले दिनों उठाया गया हर एक कदम, इस बात का गवाह है कि इन नीतियों को बढ़ाया ही जा रहा है, राज्यों को भी उन्हीं नीतियों पर चलने के लिए मजबूर किया जा रहा है। उन्हें अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप जरूरी लचीलापन अपनाने से भी रोका जा रहा है। मौजूदा संघीय ढाँचे के खिलाफ, केन्द्र सरकार की तानाशाही है जो आर्थिक नीतियों और सख्त नियम-कानून के जरिये सभी मन्त्रालयों और राज्य सरकारों को एक ही खाँचे में फिट करती है, उन्हें जरूरी लचीलापन अपनाने से रोकती है और यह सब अर्थव्यवस्था के मुक्त करने के नाम पर किया जाता है। आर्थिक बदलावों की इस प्रक्रिया की शुरुआत से ही केन्द्र सरकार का यही रवैया रहा है।

देश में 1990 के बाद से अपनायी गयी आर्थिक नीतियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं–

1. बाजार की शक्तियों को खुली छूट देना, देशी-विदेशी कम्पनियों और आर्थिक ऐजेण्टों के निवेश या कार्यकारी निर्णयों के मामले में राज्य का हस्तक्षेप घटाना, उनकी क्षमता के विस्तार, उत्पादन और कीमतों पर लगे तमाम नियन्त्रण पूरी तरह खत्म करना या उनमें भारी कमी लाना।

2. अन्तरराष्ट्रीय बाजार के साथ खुली होड़ और कीमतों में उतार-चढ़ाव को खुली छूट देना, घरेलू बाजार के आर्थिक निर्णयों को भी अन्तरराष्ट्रीय बाजार और कीमतों से प्रभावित होने की खुली छूट देना।

3. वित्तीय उत्तरदायित्व के अपेक्षाकृत कड़े मानक बनाना जिससे वित्तीय घाटा सीमित किया जा सके, सार्वजनिक ऋणों में कटौती हो और इस तरह सार्वजनिक खर्चों में कमी आये।

4. उत्पादन और व्यापार के क्षेत्र से सरकारी संस्थाओं को बाहर कर देना ताकि देशी-विदेशी निजी कारोबारी इन क्षेत्रों में मुनाफा बटोर सकें।

5. वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण, बैंकिंग व्यवस्था पर लगे नियन्त्रण कम करना, वित्तीय संस्थाओं और वित्तीय उपकरणों के प्रसार में मौजूद बाधाएँ हटाना और वित्तीय क्षेत्र में भी विदेशियों के प्रवेश की इजाजत देना।

इन नीतियों के परिणाम आज हमारे सामने हैं। जहाँ एक ओर आर्थिक तौर पर उभार दिखायी देता है, वहीं दूसरी ओर उत्पादन से जुड़े रोजगारों में कमी आयी है, आय और सम्पत्ति के बँटवारे में समानता बढ़ी है और एक बहुत बड़ी आबादी विकास से कट चुकी है, विस्थापित की जा रही है या हाशिये पर फेंक दी गयी है। इस तरह जनता की एक अच्छी-खासी आबादी इन नीतियों से खुश नहीं है।

लेकिन इसकी ओर ध्यान दिये बिना भारत सरकार सभी राज्यों में सभी लोगों पर समान रूप से इन नीतियों को थोप रही है। राज्यों को बाध्य कर रही है कि वे भी इन्हीं नीतियों पर चलें। उसके द्वारा अपनाये जा रहे कुछ प्रमुख तरीके निम्नलिखित हैं –

(i) संविधान के मुताबिक वित्त आयोग केन्द्र और राज्य सरकार के बीच करों से होने वाली कुल आय के बँटवारे के सिद्धान्त तय करने तक ही खुद को सीमित रखता था और जिन राज्यों का खर्च आय से ज्यादा होता था, उनकी आर्थिक मदद के लिए केन्द्र सरकार से सिफारिश करता था। लेकिन अब सरकार ने 12वें वित्त आयोग की भूमिका बदल दी है। वह

केन्द्र और राज्य सरकारों के सार्वजनिक वित्त के पुनर्गठन की योजना प्रस्तावित करेगा। उसने वित्तीय उत्तरदायित्व को सख्ती से पालन करने के आधार पर राज्यों से अपने ऋण के पुनर्गठन की सिफारिश की है। यहाँ तक कि राज्यों के लिए सालाना लक्ष्य तक तय कर दिये गये हैं।

(ii) आधारभूत ढाँचे से लेकर शिक्षा तक सभी क्षेत्रों में राज्यों को उन्हीं नीतियों पर अमल करना होगा जिनपर केन्द्र सरकार चल रही है। नीतियों की समानता ही राज्यों को दी जाने वाली तमाम वित्तीय सहायता का आधार होगी।

आज केन्द्र सरकार सीधे सार्वजनिक निवेश करने की जगह सार्वजनिक-निजी साझेदारी को बढ़ावा दे रही है, यानि सारे खतरे सरकार उठायेगी और लाभ उठायेंगे निजी व्यापारी और कम्पनियाँ। तो राज्यों को भी यही करना होगा अन्यथा उन्हें केन्द्र से पैसा नहीं मिलेगा।

नयी सूचना तकनीक सम्बन्धी नीति के तहत राजय सरकारों को सार्वजनिक-निजी भागीदारी में गाँव-गाँव में संसाधन केन्द्र कायम करने होंगे, भले ही वहाँ पहले से ही पंचायतों के अधीन सार्वजनिक केन्द्र अच्छी तरह फलफूल रहे हों।

(iii) जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन के तहत मिलने वाला पैसा उन्हीं राज्यों को मिलेगा जो स्टॉम्प ड्यूटी को कुर्बान करेंगे। इसका मतलब है कि कई राज्यों को घाटा उठाना पड़ेगा।

(iv) राष्ट्रीय बिजली नीति राज्यों के बिजली बोर्डों को तीन में तोड़ने (उत्पादन, पारेषण, वितरण कम्पनियों में), व्यावसायीकरण करने और उनका निजीकरण करने की माँग करती है। यही स्थिति लगभग सभी क्षेत्रों में है। राज्यों को एक निश्चित समय सीमा के भीतर निजीकरण की प्रक्रिया को पूरा करना है।

केन्द्र सरकार द्वारा थोपी जा रही इन आर्थिक नीतियों ने बहुत सी राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है। सभी चुनी हुई राज्य सरकारें इन नीतियों पर चलने के लिए बाध्य की जा रही हैं, भले ही राज्य की विशिष्ट परिस्थितियों के हिसाब से वह नीति सही न हो, भले ही राज्य में शासन कर रही पार्टी अलग कार्यक्रम के आधार पर जीतकर सत्ता में आयी हो, भले ही राज्य का जनमत इन नीतियों के पक्ष में न हो और भले ही राज्य सरकार इन नीतियों से अलग, इनसे ज्यादा सृजनात्मक, लचीली और लोकप्रिय रणनीति पर चलने की स्थिति में हो।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की हाल की बैठक में केरल के मुख्यमन्त्री ने इसी विसंगति की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा– '' हर राज्य को अपनी रणनीति खुद तय करने दीजिये केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह तटस्थ होकर राज्यों की मदद करे। आज जब केरल में हमारे द्वारा अपनायी गयी रणनीति के परिणाम आने का वक्त आया है तो हमसे उस रणनीति को त्यागने और एक ऐसी रणनीति पर अमल करने के लिए कहा जा रहा है जिसमें हमें कोई भरोसा नहीं है। यह तो इस तरह की बात होगी जैसे कोई हाथ में आयी दो चिड़ियों के बदले में झाड़ी में बैठी एक चिड़िया का सौदा करे! इसलिए हमारी केन्द्र सरकार से प्रार्थना है कि वह (कृषि के लिए सहायता) को किसी खास रणनीति पर अमल से न जोड़े।''

इस प्रार्थना को स्वीकार करना तो दूर, शायद ही इस पर कोई ध्यान दिया जाये क्योंकि आज देश में बड़े निगमों, शहरी उच्चवर्ग और मध्यम वर्ग के लोग, जिनके हाथों में देश की राजनीति की बागडोर है और जिनमें अपने हितों के लिए दबाव बनाने की क्षमता मौजूद है, चाहते हैं कि पूरे देश में समान रूप से इन नीतियों को लागू किया जाये।

प्रधानमन्त्री द्वारा आर्थिक विकास और सामाजिक सशक्तीकरण में सबको शामिल करने की बातें कोरा ढकोसला मात्र है क्योंकि केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को अलग-अलग कार्यक्रमों के अनुरूप अपने लिए विकास का अलग रास्ता अपनाने की इजाजत नहीं देती। यह भारत के संघीय ढाँचे और राज्यों की रही-सही स्वयत्तता का खुला मखौल है।

''दुनिया की वित्तीय व्यवस्था को सबसे अच्छी तरह समझने वाले लोगों की चिन्ताएँ बढ़ती जा रही हैं और इसके बहुत वाजिब कारण हैं। जिनकी सबसे ज्यादा ''साख'' है उन स्रोतों से कठोर चेतावनियाँ मिल रही हैं। यथार्थ हमारे नियन्त्रण के बाहर हो चुका है। लालच के नरकदूत बन्धन मुक्त हो गये हैं।''

– इतिहासकार ग्रेब्रियल काल्को
(व्हाई ए ग्लोबल इकॉनामिक डिल्यूग लूमस)

गुजरात के किसान भी आत्महत्या करने को मजबूर

अभी तक किसानों की आत्महत्या की खबरें मुख्यत: महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और केरल राज्यों से आ रही थीं। परन्तु पिछले साल देश के औद्योगिक रूप से अग्रणी राज्य 'गुजरात' में भी किसानों द्वारा आत्महत्या के समाचार आये हैं।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार सन 2006 में गुजरात के 148 किसानों ने आत्महत्या की, लेकिन इन सरकारी आँकड़ों की पोल खोलने का काम गुजरात में सत्तारूढ़ भाजपा से जुड़े किसान संगठन के राज्य अध्यक्ष ने एक प्रेसवार्ता में किया। उनके मुताबिक गुजरात में 300 से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है।

इसके बावजूद गुजरात के मुख्यमन्त्री नरेन्द्र मोदी एक जनसभा में बेहयाई से कहते हैं कि ''गुजरात के किसानों की स्थिति अन्य राज्यों के किसानों से अच्छी है। हमारे राज्य के किसान मारुति कार से चलते हैं।''

पूरे गुजरात में किसानों की आत्महत्या की घटनाओं को या तो दर्ज ही नहीं किया जाता है या गलत ढंग से दर्ज किया जाता है – विडम्बना तो यह है कि सत्तारूढ़ दल के किसान नेता ही अपनी सरकार के इस किसान विरोधी रवैये का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि बहुत सी घटनाओं को पुलिस दर्ज ही नहीं करती और अगर दर्ज भी करती है तो आत्महत्या के कारणों में सामाजिक परेशानी या घरेलू झगड़े को ही दर्शाती है। सच्चाई तो यह है कि आर्थिक संकट के कारण ही घरेलू झगड़े जैसी समस्याएँ पैदा होती हैं।''

राजकोट जिले के सरपदार गाँव के किसान रमेश ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी। रमेश के भाई अमरसी भाई का कहना है कि पिछले दो सालों से हमारी जीरे और कपास की फसलें बर्बाद हो रही थीं जिसके कारण मेरा भाई बहुत ज्यादा तनाव में था। पुलिस रिपोर्ट में कहा गया कि रमेश ने परिवारिक कलह के कारण आत्महत्या की थी। एफ. आई.आर. में फसल बर्बाद हो जाने को आत्महत्या का कारण बताया गया था। परन्तु बाद में पुलिस ने सारी कहानी ही बदल दी। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारा इतना बड़ा घर है, इसलिए आत्महत्या का कोई दूसरा कारण है। उनका कहना था कि यदि हमने एक मामले में मुआवजा दिलवा दिया तो दूसरे किसान भी मुआवजे के लालच में आत्महत्या करने लगेंगे। किसान नेता बिनु भाई दुधीत का कहना है कि ''पुलिस बहुत घिनौने तरीके से आत्महत्या की घटनाओं को दबाती है। जैसे कई पुलिस रिपोर्टों में कहा गया है कि किसान बीमार था और उसने गलती से दवाई के बजाय कीटनाशक पी लिया''। उनका कहना है कि मोदी सरकार ने किसानों के लिए कुछ भी नहीं किया और उल्टे अब यह सरकार हमारी जमीनें हमसे छीनकर सेज बनाने के लिए उद्योगपतियों को दे रही है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुजरात के छोटे किसान आज गम्भीर संकट में हैं और इससे निकलने की कोई राह न पाकर वे आत्महत्या करने को विवश हैं। इसके लिए सरकार की किसान विरोधी नीतियाँ और किसानों के प्रति उसकी घोर उपेक्षा ही पूरी तरह जिम्मेदार है। किसानों की आत्महत्या के बारे में सरकार की गम्भीरता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि जब कृषि मन्त्री 'भूपेन्द्र सिंह चूड़समा से इसके बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि गुजरात में एक भी किसान ने आत्महत्या नहीं की है। जब उन्हें याद दिलाया गया कि सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2006 में 148 किसानों ने आत्महत्या की है तो उनका कहना था कि ये सभी आत्महत्याएँ पारिवारिक समस्याओं के कारण हुई हैं, जैसे एक आदमी कई शादियाँ कर लेता है...इसके लिए सरकार जिम्मेदार नहीं है।

नवम्बर 2006 में पनिया देव गाँव के एक ही परिवार के चार लोगों – बल्लम (80) मनसुख (40) व उन दोनों की पत्नियों ने सोमनाथ मन्दिर के पास समुद्र में कूदकर जान दे दी। इसके बाद मनसुख के तीनों बेटे गाँव छोड़कर काम की तलाश में सूरत चले गये। अब मनसुख के घर पर ताला पड़ा है। इस परिवार को आत्महत्या इसलिए करनी पड़ी क्योंकि उन्होंने 60 फीसदी सालाना ब्याज पर डेढ़ लाख रुपये कर्ज लिया था। महाजन ने बाद में मय ब्याज उनसे 12 लाख रुपये की माँग की तो उन्होंने उससे अपनी सारी जमीन ले लेने को कहा। महाजन इसके लिए भी तैयार नहीं हुआ। अन्तत: वे आत्महत्या करने पर मजबूर हो गये। यह घटना कोई अपवाद नहीं है। गाँव के आधे लोग महाजनों के चंगुल में हैं।

महाजन कर्ज देकर सब कुछ हड़प लेते हैं। गाँवों में महाजनों का आतंक है। उन्होंने इस गाँव के एक दलित को 5000 रुपये उधार देकर उससे उसका घर छीन लिया और उनके भय से गाँव में कोई कुछ भी नहीं बोला पुलिस भी महाजनों के साथ है।

गुजरात में कपास उगाने वाले एक भी छोटे किसान की हालत ठीक नहीं है। लोग भूखों मर रहे हैं। बहुत से लोग गाँव छोड़ रहे हैं। खेती में होने वाले खर्च जैसे बीज, बिजली, खाद, कीटनाशक की कीमतें लगातार तेजी से बढ़ रही हैं, लेकिन कपास की कीमतों में नाममात्र की वृद्धि हुई है। खेती उनके लिए घाटे का सौदा है।

किसान को एक किलो कपास के लिए 26 रुपये मिलते हैं जबकि उसी से बना सिला-सिलाया कपड़ा 1000-12000, रुपये में बिकता है। सारा मुनाफा वे लोग ही लेते हैं जो कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर बेचते हैं जबकि उसे पैदा करने वाला किसान आत्महत्या की ओर धकेल दिया जाता है।

एक संवाददाता जब मलकनेस गाँव के किसानों से मिला तो उन्होंने उसे अपनी चप्पलें दिखायीं और उन्हें फर्श पर फेंकते हुए कहा कि ''हमारी चप्पलें टूटी हुई हैं फिर भी हम इन्हें घसीट रहे हैं। तुम ये चप्पलें नरेन्द्र मोदी को ले जाकर दिखाओ और उससे पूछो कि गुजरात के कौन से किसान हैं जिनके पास मारुति कार है। हम तो एक जोड़ी नयी चप्पल भी नहीं खरीद सकते।''

कैसा महिला सशक्तीकरण?

किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति उस समाज की सेहत और प्रगति की सूचक होती है। 29 राज्यों में किये गये 'राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III' के आँकड़ों से भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति की जो तस्वीर उभरती है, वह सरकार के तीव्र आर्थिक विकास के दावों की कलई खोल देती है।

बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति एक गम्भीर ढाँचागत संकट का शिकार है। 2005-06 में भारत में तीन साल से कम उम्र के 45.9 फीसदी बच्चे (लगभग साढ़े चार करोड़ छोटे बच्चे और बच्चियाँ) कम वजन या कुपोषण के शिकार थे। 1998-99 में यह अनुपात 46.7 फीसदी था। यानी पिछले सात वर्षों में इस महत्वपूर्ण सूचक में कोई खास प्रगति नहीं हुई। इस मामले में भारत की स्थिति इथोपिया और सोमालिया जैसे सब-सहारा अफ्रीकी देशों से भी बदतरीन है जहाँ कुपोषण का स्तर 28 फीसदी है। गौरतलब है कि एक पुष्ट बच्चे की तुलना में एक गम्भीर रूप से कुपोषित बच्चे में बालरोगों की चपेट में आकर मरने की सम्भावना 8 गुनी ज्यादा होती है।

20-30 फीसदी बच्चे तो पैदाइश के समय ही वजन की कमी के शिकार थे, यानि उनकी माताएँ भी कुपोषण से ग्रस्त थीं जिसके चलते गर्भ में उनको पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाया। देश की करीब एक तिहाई औरतों में पोषण की कमी भयावहता की हद तक मौजूद है और सार्वजनिक स्वास्थ्य तक उनकी पहुँच बहुत ही सीमित है। सर्वे के मुताबिक 2005-06 में 1-2 साल के केवल 44 फीसदी बच्चों का पूरी तरह टीकाकरण हो पाया था। केवल 26 फीसदी हैजा पीड़ित बच्चों को जीवन रक्षक घोल पिलाये गये थे। श्वसन तन्त्र में गम्भीर संक्रमण और बुखार के बावजूद मुश्किल से केवल दो-तिहाई बच्चे ही अस्पताल ले जाये गये थे। केवल 51 फीसदी गर्भवती महिलाएँ ही बच्चे के जन्म से पहले तीन बार अस्पताल ले जायी गयीं थीं और आधे से कम सिर्फ 48 फीसदी बच्चों के जन्म के समय कोई प्रशिक्षित दाई, नर्स या डाक्टर मौजूद थी। कुपोषित बच्चों में से 55 फीसदी अनपढ़ माताओं के बच्चे थे जबकि 26 फीसदी उन माताओं के थे जो 10वीं तक पढ़ी थीं। स्पष्ट है कि औरतों में अशिक्षा भी इस समस्या को और अधिक बढ़ाने वाला एक कारक है।

15 से 49 साल की शादीशुदा औरतों में से 51.8 फीसदी 1998-99 में खून की कमी की शिकार थीं। इनकी संख्या 2005-06 में बढ़कर 57.1 फीसदी हो गयी। गर्भवती महिलाओं के मामले में स्थिति और भी बुरी है, उनमें से 56.9 फीसदी औरतें खून की कमी की शिकार हैं। 6 महीने से लेकर 3 साल की उम्र तक के बच्चों में से 2005-06 में 79 फीसदी बच्चे खून की कमी के शिकार पाये गये जबकि 1998-99 में इनकी संख्या 74.2 फीसदी थी।

अलग-अलग राज्यों में भी स्थितियों में भिन्नताएँ हैं। कम वजन वाले बच्चों का प्रतिशत पंजाब और केरल में सबसे कम, क्रमशः 27 फीसदी तथा 28 फीसदी है। झारखण्ड और मध्यप्रदेश में 59 फीसदी से ज्यादा बच्चे वजन की कमी के शिकार हैं। सात राज्यों में बच्चों का कुपोषण तेजी से बढ़ा है जिनमें मध्यप्रदेश और हरियाणा की स्थिति सबसे बदतर है।

देश की 20-25 साल की शादीशुदा औरतों का सर्वे करने पर पता चला कि इनमें से 45 फीसदी औरतों की शादी 18 साल की आयु से पहले ही कर दी जाती है। आठ राज्यों में यह संख्या 50 फीसदी से भी ज्यादा है। झारखण्ड में 61 फीसदी, बिहार में 60 फीसदी, राजस्थान में 57 फीसदी और आन्ध्रप्रदेश में 55 फीसदी, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में 53 फीसदी और छत्तीसगढ़ में 52 फीसदी औरतों की शादी 18 साल की उम्र होने से पहले कर दी जाती है। इस समस्या के पीछे भी शिक्षा की कमी प्रमुख कारण है। जिन औरतों की कम उम्र में शादी हुई उनमें से 71 फीसदी अनपढ़ हैं। 6 राज्यों – अरुणाचल प्रदेश, पंजाब, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में 1998-99 की तुलना में कम उम्र में शादी की घटनाएँ बढ़ीं हैं। अधिकारियों के मुताबिक 15 साल की उम्र में शादी की घटनाएँ बढ़ रही हैं।

गाँव में 18 साल से कम उम्र में 52.5 फीसदी लड़कियों की शादी कर दी जाती है। शहरी इलाकों में यह संख्या 28.1 फीसदी तक है।

पूरे देश में शादीशुदा औरतों में से 37 फीसदी का पतियों द्वारा शारीरिक या यौन शोषण किया जाता है। बिहार में सबसे ज्यादा 60 फीसदी, राजस्थान में 46 फीसदी, मध्यप्रदेश में 45.3 फीसदी, त्रिपुरा में 44.1 फीसदी, मणिपुर में 43.9 फीसदी, मणिपुर में 34.9 फीसदी, उत्तर प्रदेश में 42 फीसदी, तामिलनाडु में 41.9 फीसदी और अरुणाचल प्रदेश में 38.8 फीसदी औरतें पतियों द्वारा प्रताड़ना की शिकार हैं।

सर्वे के मुताबिक अशिक्षित औरतें अन्य औरतों की तुलना में आसानी से घरेलू हिंसा की शिकार हो जाती हैं, लेकिन यह व्याख्या पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि सर्वे के आँकड़े बताते हैं कि माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त औरतों में से 16 फीसदी घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं।

ग्रामीण इलाकों में 40.2 फीसदी और शहरी में 30.4 फीसदी औरतें घरेलू हिंसा की शिकार हैं। बिहार में शहरी महिलाओं की स्थिति ग्रामीण महिलाओं से भी बुरी है। शहरों में 62.2 फीसदी औरतें घरेलू हिंसा की शिकार हैं जबकि गाँवों में 58.5 फीसदी।

वास्तविक स्थिति इससे भी बहुत बुरी है, खासकर दलित महिलाओं की।

सरकार 8 फीसदी विकास दर का दावा कर रही है लेकिन कुपोषण की व्यापकता में इससे कोई कमी नहीं आ रही है। इस रफ्तार से आने वाले दशक में प्रति व्यक्ति आय के दोगुना हो जाने के सरकार के दावों के बरक्स 6 से 36 महीने के बच्चों में कुपोषण भी बढ़कर 90 फीसदी हो जायेगा। उच्च वर्ग की 10 फीसदी उपभोक्ता महिलाओं के नीचे कुपोषण, खून की कमी, खराब स्वास्थ्य सेवाओं और अकथनीय बर्बरता की शिकार महिलाओं की भारी आबादी रहती है।

25 अक्तूबर 2006 को घरेलू हिंसा कानून पारित हुआ, लेकिन अभी भी अपनी कोख को धनी महिलाओं को किराये पर देने वाली धाय माताओं के बारे में बने कानून सबसे बर्बर कानूनों में से हैं। बच्चे के जन्म के समय धाय माँ को बच्चे पर अपने अधिकार छोड़ने पड़ते हैं। विदेशों में दो बार की तुलना में हमारे देश में 5 बार कृत्रिम गर्भाधान की अनुमति है।

औरतों का श्रम आज भी बड़ी मात्रा में अर्थव्यवस्था के बाहर है। न सिर्फ हमारे देश में बल्कि विकसित बाजार अर्थव्यवस्थाओं में भी। अमरीका में औरतों को मर्दों की तुलना में 76 फीसदी वेतन मिलता है और उसके बाद उन्हें घरेलू काम और बच्चों की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती है।

गैरबराबरी पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में औरतों की गुलामी का अन्त नहीं हो सकता। हमारे देश में चाहे जितनी भी ऊँची विकास दर हो, महिला सशक्तीकरण के नाम पर चाहे जितने पैसे लुटाये जायें, महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार होने वाला नहीं है। न्याय और समानता पर आधारित एक स्वस्थ समाज व्यवस्था ही उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक बराबरी की गारण्टी कर सकती है। इसीलिए समाज परिवर्तन की लड़ाई में महिलाओं ने बढ़चढ़ कर हिस्सेदारी की और कुर्बानियाँ दीं। हमारे देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन और उसके बाद के सभी जनसंघर्षों में महिलाओं

की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नेपाल के लोकयुद्ध में भी महिलाएँ हर मोर्चे पर आगे रही हैं। वहाँ के माओवादी क्रान्तिकारियों ने न केवल संघर्षों में महिलाओं की भूमिका सुनिश्चित की बल्कि नेतृत्व में उनकी हिस्सेदारी के सवाल को भी हल किया। नेपाल की अन्तरिम सरकार के लिए चुने गये प्रतिनिधियों में से 40 फीसदी औरतें हैं। उनकी जनसेना के सिपाहियों और कमाण्डरों में भी औरतों की संख्या बहुत ज्यादा है।

महिलाओं का परत-दर-परत दमन-शोषण केवल एक व्यापक और सतत क्रान्ति के जरिये ही खत्म किया जा सकता है और इसलिए वे अगुवा दस्तों की भी सबसे विश्वस्त अगुवा दस्ता होंगी। महिला संगठनों को सतही सुधारों के झाँसे में न आकर एक मुकम्मिल लड़ाई की तैयारी में लगना चाहिए, यही आज समय की माँग है।

मानवाधिकारों का ढकोसला

[जनसंहार के अपराधी को पनाह देने वाला सर्बिया यूरोप की परिषद् का अध्यक्ष बनेगा]

यूरोपीय संघ से भी पुरानी, यूरोप के देशों की एक अन्य संस्था है – यूरोपीय परिषद्, जिसका गठन ''न्याय पर आधारित शान्ति के उद्देश्य'' की घोषणा के साथ 1949 में किया गया था। इसने मानवाधिकार समझौतों की रूपरेखा तैयार की और यह मानवाधिकार के मामलों के यूरोपीय कोर्ट का भी संचालन करती है। इस समय इसका सालाना बजट 19.7 करोड़ यूरो है और 46 देश इसके सदस्य हैं। इसमें बेलारूस और मोण्टेनीग्रो को छोड़कर यूरोप के सभी देश शामिल हैं।

इस साल यूरोपीय परिषद् का अध्यक्ष बना है – सर्बिया, जो यूरोप के उन देशों में से है जहाँ मानवाधिकार का सबसे ज्यादा हनन होता है। ह्यूमन राइट्स वाच से लेकर बुश तक सभी सर्बिया सरकार से सारायेवो नरसंहार के आरोपी जनरल रात्को म्लादिक को हेग स्थित मानवाधिकार ट्राइब्यूनल को सौंपने की माँग करते रहे हैं। विडम्बना देखिये कि इस माँग को बूटों तले रौंदने वाला सर्बिया अब यूरोपीय देशों में मानवाधिकारों की हिफाजत करने वाली संस्था के शीर्ष पर बैठा है।

सर्बिया को इस परिषद् का अध्यक्ष बनाया जाना हर उस चीज का मजाक है जिसके नाम पर यूरोपीय परिषद् का गठन किया गया। लेकिन यूरोप के सभी देश, जो इसके सदस्य हैं, इस बात पर मौन साधे रहे। जाहिर है कि अगर वे सर्बिया की आलोचना करते तो मानवाधिकारों के उनके खुद के रिकार्ड पर उँगली उठना लाजमी था।

यूरोप के मानवाधिकार कोर्ट ने बार-बार चेचेन्या में रूसियों के अत्याचार के खिलाफ फैसला सुनाया। रूस यह दिखावा करता रहा कि वह उसके फैसलों का पालन कर रहा है। एक तरफ वह अपहरण और उत्पीड़न करने वालों की हिफाजत करता है तो दूसरी ओर मानवाधिकार हनन की शिकायत करने वालों के आगे बतौर मुआवजा कुछ रूबल भी फेंकता रहता है। यह एक तरीका है। उसका दूसरा तरीका है शिकायत करने वालों की पिटाई या हत्या करवाना। परिषद् के सदस्य देशों से उम्मीद की जाती है कि वे कोर्ट के फैसलों का समर्थन करेंगे, लेकिन वे उसे ठेंगे पर रखते हैं। यहाँ तक कि 2003 में खुद यूरोपीय परिषद् के प्रतिनिधिमण्डल को ही चेचेन्या में बम से उड़ा दिया गया, फिर भी सदस्य देशों की सरकारों ने इस घटना के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। नतीजा यह है कि रूस ने आज तक इस घटना की ठीक से जाँच तक नहीं करवायी।

मानवाधिकारों के हर उल्लंघन के साथ परिषद् की साख गिरती जाती है। लेकिन फिर भी न तो परिषद् को चलाने वाले यूरोप के देशों के विदेश मन्त्रियों ने और न ही उसके सचिवालय ने इस पर कोई ध्यान दिया।

पिछले साल रूस इस परिषद् का अध्यक्ष बना था तो परिषद् के तत्कालीन महासचिव लेबर पार्टी के पूर्व ब्रिटिश सांसद टेरी डेविस ने रूस के पक्ष में दलील देते हुए कहा था कि चेचेन्या को लेकर जो भी बवाल मचा वह पश्चिमी देशों द्वारा पूर्वी यूरोप के देशों को बलि का बकरा बनाये जाने का नतीजा था। साथ ही उसने ''भविष्य में इस तरह के मानवाधिकार उल्लंघन को रोकने के उद्देश्य से रूस द्वारा बनायी गयी योजनाओं'' को भी भरोसेमन्द बताया। रूस के बचाव में दी गयी ये दलीलें जिन्दा मक्खी निगलने के समान थीं।

रात्को म्लादिक को शरण देने के लिए सर्बिया किसी भी हद तक जाने को तैयार है। इसके चलते वह पहले ही यूरोपीय संघ में शामिल होने के लिए वार्ताओं, मोण्टेनीग्रो के

साथ संघ बनाने और करोड़ों डालर की विदेशी सहायता से वंचित हो चुका है। लेकिन परिषद् का अध्यक्ष बनने के मामले में सदस्य देशों की चुप्पी से सर्बिया के म्लादिक समर्थक अन्ध राष्ट्रवादियों को जरूर बल मिलेगा।

नाटो ने सर्बिया को अपने शान्ति कार्यक्रम में शामिल करने की पूर्वशर्त के तौर पर रात्को म्लादिक की गिरफ्तारी और प्रत्यर्पण की जो माँग की थी, उसे पिछले साल त्याग दिया। यूरोपीय संघ के एनलार्जमेण्ट कमिश्नर आली रेहन ने भी कुछ महीने पहले यह सुझाव दिया कि म्लादिक वाले मुद्दे को छोड़कर भी समझौता वार्ताएँ फिर से शुरू की जा सकती हैं। सर्बिया के परिषद् का अध्यक्ष और आधिकारिक तौर पर मानवाधिकारों का संरक्षक बनने के बाद वे लोग खुशी से फूले नहीं समायेंगे जो म्लादिक जैसे क्रूर व्यक्ति को अपना राष्ट्रीय हीरो समझते रहे हैं।

लेकिन निष्पाप और निष्कलंक कौन है जो पहला पत्थर मारे! सवाल केवल सर्बिया और रूस का ही नहीं है। यूरोप में कौन सा देश, कौन सी सरकार ऐसी है जिसके पास छिपाने के लिए कुछ न हो! सबके दामन पर खून के धब्बे हैं। ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, मेसीडोनिया और यहाँ तक कि स्वीडन भी सी. आई. ए. के ''असाधारण तालमेल'' में सहयोगी रहे हैं जिसके तहत लोगों का अपहरण करके उन्हें उन सरकारों के हवाले किया जाता है जो अमरीका के आदेश पर उन्हें प्रताड़ित करती हैं। पोलैण्ड और रूमानिया की धरती पर अमरीका के गुप्त कैदखाने हैं। आस्ट्रिया, जर्मनी और इंग्लैण्ड अपने शरणार्थियों को पहले तो कैदियों को प्रताड़ित करने वाली सरकारों के हवाले करते हैं और फिर उसे उचित ठहराने के लिए कूटनीतिक बयानबाजी का सहारा लेते हैं। स्पेन बेसहारा बच्चों को वापस उनके देश भेज देता है। यूक्रेन की पुलिस वेश्याओं को प्रताड़ित करती है और उन्हें ऐसे अपराधों को कबूलने के लिए बाध्य करती है जो उन्होंने किये ही नहीं।

यूरोपीय परिषद् के सदस्य देशों में इतना दम नहीं है कि वे सर्बिया को कुछ कह सकें। वे अच्छी तरह जानते हैं कि जब सभी पापी हैं तो एक दूसरे के राज को राज रहने देने में ही सबकी भलाई है। मानवाधिकार उनके लिए एक ढोंग है, महज एक कूटनीतिक औपचारिकता। सच तो यह है पूँजीवादी सभ्यता और संस्कृति के वैभवशाली महलों की रौनक मानवाधिकारों के पल-प्रतिपल होने वाले कत्ल के दम पर ही कायम है।

नकली हीरो का असली चेहरा

हिन्दी सिनमा में 'एंग्री यंग मैन' के रूप में जाने वाले अमिताभ बच्चन का असली चेहरा आज लोगों के सामने है। ''मंगल'' ग्रह और अन्य ग्रह ''दोषों'' की शान्ति तथा उनके बुरे प्रभावों से अपने बेटे-बहू और परिवार को बचाने के लिए अमिताभ बच्चन ने तिरुपति, बालाजी, संकटमोचन, विन्ध्याचल समेत बहुत से मन्दिरों में पूजापाठ करवाया और सालों तक पवित्र स्थानों के चक्कर लगाता रहा।

अमिताभ के पिता हरिवंश राय बच्चन एक प्रगतिशील कवि थे। लेकिन अमिताभ कभी भी प्रगतिशील भारत का प्रतीक नहीं रहा है। देशी-विदेशी पूँजी और बाजार का ब्राण्ड एम्बेसडर बनने के लिए वह अपनी अभिनय कला, अन्तरात्मा और जमीर सब कुछ बेच चुका है। धन ही उसकी अन्तरात्मा है, पैसा ही उसका जमीर है। वह उस बाजार अर्थव्यवस्था का चाकर बन चुका है, जो पर्दे की नकली दुनिया को असली बना कर पेश करती है, जिसका आम लोगों की जिन्दगी, उनके दुख-दर्द और पीड़ा से कोई लेना-देना नहीं है।

अमिताभ का अन्धविश्वासी होकर इस तरह पूजा पाठ करना आम लोगों और अपनी विरासत से उसके अलगाव, उसकी सांस्कृतिक दरिद्रता और वैचारिक दिवालियेपन से पैदा हुई गहरी असुरक्षा को दर्शाता है। देश की नौजवान पीढ़ी को सोचना चाहिए कि बाजार द्वारा खड़े किये गये अमिताभ जैसे नकली हीरो, जो खुद ही तमाम तरह के अन्धविश्वासों में जकड़े हैं, लोगों से दूर हैं और गहरी असुरक्षा के शिकार हैं, हमारे दिलोदिमाग में देशी-विदेशी पूँजी और बाजार की गुलामी भरने के सिवाय ये हमें और क्या दे सकते हैं?

आज देश और समाज का हीरो कौन हो सकता है? इस बारे में इस नकली हीरो के पिता हरिवंशराय बच्चन ने लिखा था–

''धर्म ग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मन्दिर मस्जिद, गिरजे सब को
तोड़ चुका जो मतवाला
पण्डित, मोमिन, पादरियों के
फन्दों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला।''

हैरी पॉटर परिघटना

यथार्थ विमुख लोगों का जादुई संसार

■ ज्ञानेन्द्र

भारी शोर शराबे के बीच हैरी पॉटर शृंखला की आखिरी किताब 'हैरी पॉटर एण्ड डैथली हॉलोज' प्रकाशित हुई। बाजार में आने के पहले ही किताब की कहानी लीक न हो जाये, इसके लिए प्रकाशकों ने एक करोड़ डॉलर खर्च किये। विशेष गोदाम लिये गये, सुरक्षा गार्ड रखे गये और किताब ढोने वाले ट्रकों पर सेटेलाइट से नजर रखने की व्यवस्था की गयी ताकि कोई ड्राइवर रास्ते से ही किताब लेकर गायब न हो जाये। वितरकों और दुकानदारों से कानूनी अनुबन्ध किये गये। यहाँ तक कि किताब छापते समय मजदूर उसे पढ़ न लें, इसके लिए छपाई का काम लगभग अँधेरे में करवाया गया और मजदूरों को मोबाइल रखने और बाहर से खाना मँगवाने से भी रोका गया।

अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में किताब के चर्चे छाये रहे। अकेले भारत में इस किताब की पहले ही दिन 1 लाख 70 हजार प्रतियाँ बिक गयीं। 1997 से प्रकाशित हो रही हैरी पॉटर शृंखला की यह सातवीं किताब है। पहली 6 किताबों में से हरेक की साढ़े पाँच से लेकर साढ़े छः करोड़ तक प्रतियाँ बिकी थीं और मीडिया के मुताबिक यह किताब पिछले सारे रिकार्ड तोड़ने वाली है। हैरी पॉटर शृंखला पर बनी फिल्मों ने भी भरपूर कमाई की। इस किताब की लेखिका जे.के. रोलिंग को अब तक इससे 1.1 अरब डॉलर की आमदनी हो चुकी है।

इस सारे धूम-धड़ाके के बीच जिस चीज को ढँक दिया गया वह है इस किताब की अन्तर्वस्तु और गुणवत्ता। किताब के बाजार से जुड़े पक्षों को जितना प्रचारित किया गया, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इस किताब की अन्तर्वस्तु पर गौर करने की जरूरत नहीं समझी गयी। बाजार को सिर्फ मुनाफे से मतलब है– किताब के अच्छे-बुरे होने या समाज पर गलत प्रभाव छोड़ने से उसका कोई लेना-देना नहीं। इस विषय पर छपी खबरों और टीवी पर दिन-रात चली चर्चाओं में किताब की विषयवस्तु, बच्चों पर उसके प्रभावों, उसकी सामाजिक उपयोगिता और उसके सांस्कृतिक प्रभावों पर गम्भीर बहसें नदारद रहीं। हैरी पॉटर शृंखला की साहित्यिक मानदण्डों पर परख करने की जगह पाठकों के दीवानेपन और मुनाफे के आँकड़ों को किताब को परखने और उसकी सफलता का आधार बनाया गया।

किताब की खूबी के तौर पर बताया गया कि यह बच्चों में पढ़ने की भूख पैदा करती है, लेकिन यह अर्द्धसत्य है। 2007 में करवाये गये एक ताजा अध्ययन के मुताबिक हैरी पॉटर के दीवाने बच्चे केवल इसी शृंखला की किताबें ही पढ़ते हैं, दूसरी किताबें नहीं। जाहिर है कि ऐसी कोई भी रोचक से रोचक किताब बच्चों की कोर्स की उन किताबों में रुचि नहीं पैदा कर सकती जो बेहद नीरस और उबाऊ तथा जिनका उनके जीवन की ठोस सच्चाइयों, दिलोदिमाग और व्यक्तित्व के विकास से कोई वास्ता नहीं।

साहित्यिक मानदण्डों के लिहाज से परखने की कोशिश करें तो हैरी पॉटर शृंखला की किताबें भी उस हल्के-फुल्के और सतही मनोरंजक साहित्य से अलग नहीं हैं जिन्हें बच्चों के सामने कई दशकों से परोसा जा रहा है और जिनको पढ़ते वक्त पाठक को दिमाग पर जोर नहीं डालना पड़ता। फिर इस किताब की इतनी भारी बिक्री की क्या वजह है? यह सही है कि मार्केटिंग और विज्ञापन के आधुनिक तरीकों की इस किताब को 'बेस्ट सेलर' बनाने में प्रमुख भूमिका है, जिनका मूलमन्त्र है, पहले माँग पैदा करो और फिर भरपूर आपूर्ति करके बेतहाशा मुनाफा कमाओ। चाहे साबुन-सेण्ट-पाउडर हो या रोजमर्रा की अन्य उपभोक्ता वस्तुएँ या फिर मनोरंजन उद्योग जैसे किताबें, सिनेमा या गीत-संगीत। लेकिन इस किताब के बेस्ट सेलर होने के पीछे यही एकमात्र कारण नहीं है। हमें गहराई में जाकर देखना होगा कि इस किताब की विषय वस्तु में ऐसी कौन सी बात है, जो पाठकों को हैरी

पॉटर का दीवाना बना देती है?

हैरी पॉटर की लेखिका ने एक ऐसे मायावी संसार की रचना की है जहाँ वास्तविक और जादुई, साधारण और चमत्कारिक, सांसारिक और अलौकिक चीजें एक साथ घुली-मिली हैं। इस दुनिया की कल्पना इतनी बारीकी में जाकर की गयी हैं और उसकी परम्पराएँ, उसके नियम-विधान और इतिहास को इतने तफसील से दर्शाया गया है कि वह पाठक के लिए सहज स्वीकार्य होती है। वह बच्चों की अपनी दुनिया है – माँ-बाप, दोस्ती-गद्दारी, स्कूल-कालेज, अच्छे-बुरे अध्यापक, बच्चों के ऊपर कालेज प्रशासन की तानाशाही, उनकी क्षमताओं पर अविश्वास किया जाना, सब कुछ है लेकिन साथ ही वह कल्पना लोक भी है जिसमें झाड़ू पर बैठकर उड़ा जा सकता है और जादू की छड़ी से बुरे अध्यापकों और प्रशासन को सबक सिखाया जा सकता है। वास्तविक दुनिया के साथ गुँथी इस मायावी दुनिया में अच्छे और बुरे के बीच संघर्ष चल रहा है जिसमें हैरी पॉटर और उसके दोस्त भी शामिल हैं। तिलिस्म और जादू की दुनिया का स्वप्न लोक और वास्तविक दुनिया के दुख-दर्द, आशा-निराशा किताब में इस कदर घुले-मिले हैं कि नन्हे पाठक सहज ही उससे जुड़ाव महसूस करने लगते हैं। एक नशे की तरह यह मायावी संसार उनके ऊपर हावी हो जाता है। वास्तविक जिन्दगी में होमवर्क और पाठ्यक्रमों के बोझ से दबे तथा परीक्षा में अव्वल आने या लगातार बेहतर प्रदर्शन करने के लिए माँ-बाप की ओर से भारी दबाव झेलते बच्चों को यह मायावी संसार काफी राहत और सुकून देता है। जादू के दम पर अपनी समस्याओं को हल करते और भारी-भरकम दम-पिशाचों से लड़ते हैरी पॉटर और उसके साथी बच्चों के साथ पाठकों का पूरी तरह तादात्म्य स्थापित हो जाता है। यह किताब उन्हें एक जादुई दुनिया में ले जाकर उनके जीवन की वास्तविक समस्याओं का नकली और हवाई समाधान देती है और इसलिए बच्चे इस किताब में पूरी तरह तल्लीन हो जाते हैं। किताब से बाहर निकलने के बाद भी यह मायालोक बच्चों का पीछा नहीं छोड़ता। वे काफी हद तक यथार्थ विमुख और कल्पनाजीवी हो जाते हैं। यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि – कल्पनाजीविता एक नकारात्मक प्रवृति है और बच्चों में सहजात कल्पनाशीलता से इसका कोई लेना-देना नहीं,जो एक सकारात्मक प्रवृत्ति है और जिसका बच्चों में लगातार क्षरण हो रहा है। यह गम्भीर चिन्ता का विषय है। लेकिन इससे भी ज्यादा बुरी और चिन्ताजनक बात है कि अच्छी-खासी तादाद में बड़े लोगों का हैरी पॉटर के पीछे पागल होना। इसमें से अधिकांश ऐसे लोग हैं जो इस पूँजीवादी समाज की चूहादौड़ में शामिल हैं। रोजमर्रा की जीवन की भागमभाग और मुश्किलें तथा लगातार तनावग्रस्त होती जिन्दगी अव्वल तो उनके पास इतनी ऊर्जा और समय ही नहीं रहने देते कि वे कुछ पढ़ सकें। कुछ लोग अगर पढ़ते भी है तो ऐसी आसान और चलताऊ मनोरंजक किताबें चाहते हैं, जिन्हें पढ़ने के लिए दिमाग पर बिल्कुल जोर न देना पड़े। साथ ही, हैरी पॉटर जैसा साहित्य ऐसे लोगों की जरूरत पूरी करता है जो वास्तविक जगत में समस्या का समाधान खोजने से बचते हैं और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से मुँह चुराने के लिए बच्चे बने रहना चाहते हैं।

हैरी पॉटर का कथानक और उसकी पूरी तिलिस्मी दुनिया पश्चिमी जगत के परम्परागत साहित्य की शैलियों, बिम्ब-प्रतीकों से काफी गहराई तक जुड़ी है – ग्रीक मिथकों से लेकर गुलीवर ट्रेवल्स, डिकन्स की कथाओं और हालीवुड के स्टारवार तक सब कुछ अपने अन्दर समोये हुए है। इसलिए पश्चिम के पाठकों का उससे सहज जुड़ाव फिर भी समझ में आता है, लेकिन हमारे देश में उसकी पाठक-संख्या के इस कदर रातों-रात बढ़ने का क्या मतलब है? अपनी जड़ों से उखड़े शहरी एकल परिवारों की त्रासदी है कि वह अपने लोक जीवन की परम्पराओं, महाकाव्यों, नाना-दादी की कहानियों और देशी आख्यानों से दिनोंदिन वंचित होता जा रहा है। दूसरी ओर उसके सांस्कृतिक जीवन में इन चीजों का कोई सार्थक और स्थायी विकल्प भी नहीं मिल पाया है। इसके चलते जो शून्य पैदा हुआ है, उसे भरने के लिए हर नये फैशन की ओर लालायित होकर भागना और बिना सोचे-विचारे उसकी नकल करना उसकी नियति बन गयी है। ऐसे ही घरों में इस किताब की सबसे ज्यादा धूम है। अंग्रेजी में लिखी गयी इस महँगी किताब के पाठक भारत के आम बच्चे नहीं बल्कि इसी खास वर्ग के बच्चे हैं।

यह वर्ग देश की 200 साल लम्बी गुलामी की पैदाइश है। विदेशी सामानों का उपभोग करके, विदेशियों की नकल करके, उनसे पुरस्कार पाकर या सिर्फ प्रशंसा के दो बोल सुनकर वह खुद को गौरवान्वित महसूस करता है। अपने देश, अपने लोगों, अपनी भाषा-संस्कृति को लेकर अपनी अलग स्वतन्त्र पहचान बनाने की कोशिश करने की जगह उनसे पीठ फेर कर वह पूरी तरह से अमरीका और यूरोप का पिछलग्गू

बन चुका है। देश के निर्माण और विकास से नाता तोड़ चुके इस वर्ग के पास गर्व करने के लिए क्या है? गरीबी, बेरोजगारी, बीमारियों, भ्रष्टाचार, औरतों पर हिंसा, अपराध, दंगा-फसाद जैसी इस देश की अन्तहीन समस्याओं पर तो गर्व नहीं किया जा सकता। तब वह विदेशियों की नकल करके या कामयाब विदेशियों (लक्ष्मी मित्तल या सुनीता विलियम्स जैसे) के साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर खुश होता है। यह वर्ग अपने बच्चों से अंग्रेजी में बातें करता है और उनपर हिन्दुस्तानी छाया पड़ने से बचाता है। खुद अपने बच्चों को हैरी पॉटर जैसी किताबें खरीकर देता है ताकि लोगों को बता सके कि पश्चिमी दुनिया की 'बेस्ट सेलर' उनके बेटे ने पहले दिन ही खरीदकर पढ़ ली।

हैरी पॉटर की मुख्यत: बाजार निर्मित लोकप्रियता साम्राज्यवादी देशों के द्वारा चलायी जा रही सांस्कृतिक वर्चस्व कायम करने की उस वृहद प्रक्रिया का परिणाम है जिसके तहत पूरी दुनिया की विविधताओं – भाषा, बोली, चाल-चलन, पहनावा, मिथकों, बिम्बों, प्रतीकों आदि की बहुलता का अन्त करके साम्राज्यवादी साँचे में ढली एक ऐसी दुनिया आरोपित की जा रही है जिसमें केवल एक ही संस्कृति – उपभोक्तावाद की संस्कृति का राज हो। यह साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। एक अनुमान के मुताबिक यह सामाजिक-सांस्कृतिक सफाया अभियान अभी तक छ: हजार भाषाओं और बोलियों को निगल चुका है, जबकि न जाने कितने मिथकों, नायकों और बिम्ब-प्रतीकों को लोगों की स्मृतियों से मिटाया जा चुका है। हमारे देश में भी यह परिघटना तेजी से घट रही है।

चन्द्रकान्ता सन्तति जैसे तिलिस्मी उपन्यासों और पौराणिक मिथकों से भरे हमारे समृद्ध साहित्य की विरासत से महरूम देश का अंग्रेजीदाँ शहरी मध्यवर्ग बड़ी आसानी से पश्चिमी संस्कृति को स्वीकारता जा रहा है। हालीवुड की तर्ज पर बम्बई की फिल्म नगरी को बालीवुड बोलकर और लिजहर्ले जैसी थर्ड ग्रेड हालीवुड अभिनेत्रियों के दर्शन करके हमारे देश के लोग अपने को धन्य समझते हैं। विदेशी कम्पनियों द्वारा छापे गये वेलण्टाइन कार्ड से उनके बताये वेलेण्टाइन डे पर अपने प्रेम का इजहार करते हैं क्योंकि विदेश में ऐसे ही होता है। यह बात और है कि असली प्रेमी-युगल यहाँ नृशंसतापूर्वक मार दिये जाते हैं। अंग्रेजी हमारी क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों को निगलती जा रही है और उसके साथ-साथ लोक कथाएँ, लोक जीवन के मुहावरे और लोकोक्तियाँ, हमारे क्षेत्रीय नायक सभी लुप्त होते जा रहे हैं और उनकी जगह हैरी पॉटर जैसे नायक ले रहे हैं, जिनका भारतीय लोक जीवन और हमारे रोजमर्रा के कड़वे यथार्थ से कोई लेना देना नहीं है। हमारे देश के शासक वर्ग और देश के शहरी मध्यवर्ग की यह सांस्कृतिक परनिर्भरता और देश को आर्थिक तौर पर गुलाम बना देने में उनकी सहर्ष सहयोगी की भूमिका के बीच अटूट रिश्ता है। हमलावर साम्राज्यवादी संस्कृति जनमानस को गहराई तक प्रभावित करती है और आर्थिक गुलामी को सहज स्वीकार्य बनाती है, इसलिए यह कहीं ज्यादा घातक है। अपनी समृद्धि और यथास्थिति को बनाये रखने के लिए उन्हें दोनों ही कबूल हैं।

दूसरी ओर देश की आम जनता के जीवन का कठोर यथार्थ उसे इस बात की इजाजत नहीं देता कि वह हैरी पॉटर जैसे कथानकों में शरण ले सके। हैरी पॉटर परिघटना इस देश के मध्यवर्ग और हमारे देश के शासक वर्ग के निकम्मेपन को ही सामने लाती है जो आजादी के साठ सालों के बाद भी देश की समस्याओं के समाधान और आम लोगों की जिन्दगी की बेहतरी की कोई उम्मीद तक नहीं जगा सका। वह एक शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र का सपना जरूर देखता है लेकिन उसके लिए पुरुषार्थ नहीं कर सकता। देश के यथार्थ को स्वीकारने और उसको बदलने की जहमत उठाने का साहस उसमें नहीं है। वह हैरी पॉटर जैसी एक जादू की छड़ी चाहता है जो उसकी समस्याओं का समाधान कर दे।

साम्राज्यवादी वर्चस्व और उसके खिलाफ निर्णायक संघर्ष – दोनों ही के लिए संस्कृति एक अनिवार्य मोर्चा है। साम्राज्यवादी इसे अच्छी तरह समझते हैं और इसलिए अपने विभिन्न सांस्कृतिक माध्यमों द्वारा अपने सड़े-गले प्रतिगामी मूल्यों-विचारों का अहर्निश प्रचार-प्रसार करते रहते हैं। जनपक्षधर शक्तियों को भी संस्कृति की इस महत्वपूर्ण भूमिका को समझना होगा और इसे अपनी कार्यसूची पर प्रमुखता से रखकर इसके लिए सुनिश्चित कार्यभार तय करना होगा। ▣

विचारों को कत्ल नहीं किया जा सकता

■ फिदेल कास्त्रो रूज़

कुछ दिनों पहले एस्ट्यूट शृंखला की तीन पनडुब्बियों के निर्माण में होने वाले खर्च का विश्लेषण करते हुए मैंने कहा था कि इस धन से ''15 करोड़ लोगों की देखभाल करने के लिए 75 हजार डाक्टरों को प्रशिक्षित किया जा सकता था। मैंने हिसाब यह मानकर लगाया था कि हमारे देश में एक डाक्टर के प्रशिक्षण पर अमरीका की तुलना में एक तिहाई खर्च आता है।'' अब इसी हिसाब से गणना करने पर मुझे हैरानी होती है कि इराक और अमरीका के घरों में विषाद के बीज बोने के लिए एक साल में बुश जो 100 अरब डालर खर्च करता है उससे कितने डाक्टर प्रशिक्षित किये जा सकते हैं? जवाब है – 9 लाख 99 हजार 990 डाक्टर, जो उन 2 अरब लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल कर सकते थे, जो आज किसी भी तरह की स्वास्थ्य सेवा से वंचित हैं।

अमरीकी हमला शुरू होने के बाद से अभी तक इराक में 6 लाख से भी ज्यादा लोग अपनी जान से हाथ धो चुके हैं और 20 लाख से ज्यादा लोग देश छोड़ने के लिए मजबूर कर दिये गये हैं।

अमरीका में ऐसे 5 करोड़ लोग हैं जिनका स्वास्थ्य बीमा नहीं हुआ है। यह अनिवार्य सेवा उन्हें मिलेगी या नहीं यह बाजार की अन्धी ताकतें तय करती हैं और महँगा होने के कारण विकसित देशों में भी बहुत से लोग अपना इलाज नहीं करवा पाते। ये स्वास्थ्य सेवाएँ अमरीका के सकल घरेलू उत्पाद को भले ही बढ़ाती हैं, लेकिन न तो वे उन लोगों में अन्तश्चेतना पैदा करती हैं जो इन्हें मुहैया कराते हैं और न ही मरीजों को मानसिक शान्ति दे पाती हैं।

कम विकास और अधिक बीमारियों वाले देशों में सबसे कम डाक्टर हैं – हर पाँच हजार, दस हजार, पन्द्रह हजार, बीस हजार या इससे भी ज्यादा लोगों पर केवल एक डाक्टर है। यौन-क्रिया के जरिये फैलने वाली एच.आइ.वी. और एड्स जैसी नयी बीमारियाँ प्रकट हो रही हैं, जिसने सिर्फ बीस सालों में लाखों लोगों की जानें ली हैं। करोड़ों लोग आज इस रोग से पीड़ित हैं जिनमें बहुत सी माताएँ और बच्चे भी शामिल हैं। हालाँकि अब इसका असर कम करने के उपाय भी मौजूद हैं, लेकिन मरीज के इलाज का सालाना खर्च पाँच हजार, दस हजार या पन्द्रह हजार डालर तक हो सकता है। विकासशील देशों की एक बहुत बड़ी आबादी इतनी भारी रकम खर्च करने की बात सपने में भी नहीं सोच सकती। जहाँ के थोड़े से सरकारी अस्पतालों में मरीजों की बेतहाशा भीड़ लगी रहती है, जो अचानक किसी महामारी के प्रकोप से मरने वाले जानवरों की तरह झुण्ड के झुण्ड मरते रहते हैं। अगर इस यथार्थ पर विचार करें तो हम इस त्रासदी को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। इसे समझने के लिए भारी धन और तकनीक लगाकर बनाये गये किसी व्यावसायिक विज्ञापन की दरकार नहीं है।

अब इसमें करोड़ों इनसानों को अपनी चपेट में ले लेने वाली भुखमरी को भी जोड़ लीजिए, फिर भोजन को ईंधन में बदलने का विचार भी इसमें शामिल कर लीजिए और फिर इसके लिए किसी उपमा की तलाश कीजिये। उत्तर होगा – जार्ज, डब्लू. बुश।

जब एक महत्वपूर्ण व्यक्ति ने हाल ही में उससे क्यूबा नीति के बारे में सवाल किया तो उसका जवाब था, ''मैं एक कट्टरपन्थी राष्ट्रपति हूँ और मैं बस कास्त्रो की मौत का इन्तजार कर रहा हूँ।'' ऐसे शक्तिशाली महानुभाव की इच्छाएँ निरापद नहीं होतीं। बुश ने जिनकी हत्या का आदेश दिया है, जिनका व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कत्ल करने का वह इरादा रखता है उनमें से न तो मैं पहला व्यक्ति हूँ और न ही आखिरी ''विचारों को कत्ल नहीं किया जा सकता।'' सारिया ने जोरदार तरीके से यह बात कही थी। सारिया एक अश्वेत लेफ्टीनेण्ट था – बातिस्ता की फौज में एक गश्ती टुकड़ी का नायक। उसने हमें उस समय गिरफ्तार किया था, जब मोनकाडा गैरीसन पर अधिकार करने के असफल प्रयास के बाद हममें से तीन लोग थके-माँदे एक छोटी सी पहाड़ी झोंपड़ी में सोये हुए थे। नफरत और गुस्से से भरे सिपाहियों ने बिना यह जाने कि मैं कौन हूँ – मुझ पर बन्दूकें तान दी थीं। वह अश्वेत लेफ्टीनेण्ट दबी हुई अवाज में लगातार अनायास इन शब्दों को दोहराता रहा ''विचारों को कत्ल नहीं किया जा सकता।''

बुश महोदय!

मैं वे शानदार शब्द आपको समर्पित करता हूँ। ▣

नरसंहार का अन्तरराष्ट्रीयकरण

■ **फिदेल कास्त्रो रूज़**

हाल ही में कैम्प डेविड में हुई अमरीका और ब्राजील के राष्ट्रपतियों की एक बैठक में किसी ने भी इन सवालों का उत्तर नहीं दिया कि अमरीका, यूरोपीय संघ और धनी देश जितनी भारी मात्रा में एथेनॉल का उत्पादन करवाना चाहते हैं, उन देशों की बड़ी कम्पनियाँ अपने भारी भरकम निवेश के बदले जिसकी माँग कर रही हैं, उसके लिए आवश्यक 50 करोड़ टन से भी ज्यादा मक्का और अनाजों की खेती कहाँ की जायेगी? सोयाबीन, सूरजमुखी और रेपसीड (तोरी) कहाँ से आयेंगे जिन्हें ये देश ईंधन में बदलना चाहते हैं?

कुछ देश अपने अतिरिक्त अनाज का निर्यात करते हैं। अन्य कई देशों को उस वक्त खतरनाक स्थितियों का सामना करना पड़ता है, जब अनाज की कीमतें आसमान छूती हैं। बाजरा, जौ, राई और जई जैसे अनाजों को राष्ट्रपति जार्ज बुश एथेनॉल उत्पादन के लिए कच्चे माल में बदल देना चाहते हैं। ताजा आँकड़ों के मुताबिक इन अनाजों के उत्पादक पाँच प्रमुख देश दुनिया में कुल 67 करोड़ लाख टन अनाज की आपूर्ति करते हैं। इसी तरह इनका उपयोग करने वाले 5 प्रमुख देशों को, जिनमें से कुछ अनाज ये देश खुद भी पैदा करते हैं, वर्तमान में सालाना 60 करोड़ 40 लाख टन अनाज की जरूरत होती है। यानि 8 करोड़ टन से भी कम अतिरिक्त उत्पादन ही शेष बचता है।

ईंधन के उत्पादन के लिए खाद्यान्नों का इतना भारी अपव्यय जबकि इनमें तिलहन शामिल नहीं है, धनी देश इससे ऑटोमोबाइल इंजनों की सालाना खपत का 15 फीसदी से भी कम बचा पायेंगे।

कैम्प डेविड बैठक में राष्ट्रपति बुश ने इस नुस्खे को पूरी दुनिया में आजमाने का अपना इरादा भी जाहिर किया। दुनिया के लिए इसका एक ही मतलब है – नरसंहार का अन्तरराष्ट्रीयकरण।

कैम्प डेविड बैठक की पूर्वसन्ध्या पर वाशिंगटन पोस्ट में प्रकाशित वक्तव्यों में ब्राजील के राष्ट्रपति लूला ने यह स्वीकार किया है कि एथेनॉल उत्पादन के लिए इस्तेमाल होने वाले गन्ने की खेती में ब्राजील की कुल खेती योग्य जमीन का केवल 1 फीसदी हिस्सा ही प्रयोग में लाया जायेगा। जमीन का यह रकबा, सोवियत संघ के संकटग्रस्त होने और पर्यावरण में बदलाव आने से पहले क्यूबा जितनी जमीन पर गन्ने की खेती करके एक करोड़ टन चीनी का सालाना उत्पादन किया करता था, उससे तीन गुना है।

काफी लम्बे अरसे से क्यूबा चीनी का उत्पादन और निर्यात करता रहा है। पहले-पहल, यह खेती गुलामों के श्रम पर आधारित थी। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में 3 लाख से ज्यादा गुलाम इसमें लगे थे जिसके चलते स्पेन का यह उपनिवेश दुनिया का पहले नम्बर का चीनी निर्यातक देश बन गया था। लगभग 100 साल बाद, 20वीं सदी के प्रारम्भ में, जब क्यूबा एक छद्म गणराज्य था और अमरीका की दखलन्दाजी के चलते पूरी तरह आजाद नहीं हो सका था, यहाँ गन्ने की खेती का भार वेस्टइण्डीज से आने वाले अप्रवासियों और अनपढ़ क्यूबाइयों पर आ पड़ा। जब गन्ने की खेती का सीजन नहीं होता था, वह समय हमारे लोगों के

लिए महाविपत्ति से कम नहीं होता था। गन्ने के खेत अमरीकी कम्पनियों या क्यूबा के बड़े भूस्वामियों की सम्पत्ति थे। इस तरह क्यूबा को दूसरे किसी भी देश की तुलना में इस फसल के सामाजिक प्रभावों का ज्यादा अनुभव है।

हमारा यह गरीब द्वीप, जो और चाहे कुछ भी हो लेकिन उपभोक्तावादी नहीं है, यहाँ गन्ने की खेती से जुड़ी कठिनाइयों को झेल सकने वाले पर्याप्त मजदूर नहीं मिल पायेंगे, जो पहले से भी ज्यादा कड़ी गर्मी, सूखा या बारिश में फसल की देखभाल कर सकें। जब हमारे द्वीप पर तूफान का हमला होता है तो अच्छी से अच्छी मशीनें भी झुके और ऐंठे हुए गन्ने को काट नहीं पातीं। सदियों तक, गन्ने को जलाने की प्रथा से लोग परिचित नहीं थे तथा जटिल मशीनों और ट्रकों ने पहले मिट्टी को रौंदा नहीं था। नाइट्रोजन, पोटाश और फास्फेट जैसे आज के महँगे-महँगे खाद उस समय मौजूद नहीं थे और नियमित रूप से मौसम एक साल खुश्क और अगले साल नम रहता था। आधुनिक खेती में बिना फसल चक्र अपनाये ऊँची पैदावार लेना सम्भव नहीं है।

पर्यावरण में बदलाव का प्रभाव

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के मुताबिक पर्यावरण में बदलाव का अमरीकी महाद्वीप पर भारी प्रभाव पड़ेगा। और ज्यादा तबाही ढाने वाले तूफान आयेंगे और लू चलेगी जिसके कारण भीषण गर्मी और सूखा पड़ेगा। कुछ प्रजातियाँ विलुप्त हो जायेंगी और लातिन अमरीका में भुखमरी भी पैदा हो सकती है। पर्यावरण में बदलावों पर अन्तरसरकारी पैनल ने चेतावनी दी है कि इस सदी के अन्त तक हर गोलार्द्ध को पानी से जुड़ी समस्याओं का सामना करना पड़गा और यदि सरकारें कोई कदम नहीं उठातीं तो बढ़ते हुए तापमान के कारण मृत्युदर, प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाओं और संक्रामक रोगों का खतरा बढ़ सकता है।

विश्व का तापमान बढ़ने के कारण लातिन अमरीका में एण्डीज के ग्लेशियर पिघल रहे हैं और अमेजन नदी की घाटी में वनों के विनाश का खतरा पैदा हो गया है। ऐसी खबरें मिली हैं कि ये जंगल बाहर की ओर से धीरे-धीरे सवाना घास के मैदानों में बदल रहे हैं। चूँकि अमरीका की आबादी का काफी बड़ा हिस्सा भी समुद्र तटों के किनारे बसा हुआ है, इसलिए अमरीका भी इन विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं के हमले से सुरक्षित नहीं है, जैसा कि 2005 में आये हरीकेन केटरीना ने दिखा दिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट बताती है कि यदि कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करने के लिए आमूलचूल तरीके अपनाये जायें तो भी आने वाले दशकों में पृथ्वी के तापमान में होने वाली वृद्धि को रोका नहीं जा सकेगा।

जैसी कि उम्मीद थी, कैम्प डेविड बैठक में क्षेत्र के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार डान फिस्क ने घोषणा की कि ''क्षेत्रीय मुद्दों पर बहस के दौरान (मैं उम्मीद करता हूँ) क्यूबा को भी विचार के लिए रखना चाहिए (...) अगर कोई ऐसा आदमी है जो जानता है कि भुखमरी कैसे पैदा की जाती है, तो वह है – फिदेल कास्त्रो। वह यह भी जानता है कि एथेनॉल क्यों नहीं बनाना चाहिए।''

मैं उसे याद दिलाना चाहता हूँ कि क्यूबा की शिशु-मृत्यु दर अमरीका से कम है। क्यूबा के सभी नागरिकों को मुफ्त इलाज की सुविधा मिली हुई है। हरेक को शिक्षा उपलब्ध है और यहाँ कोई बेरोजगार नहीं है – इसके बावजूद कि लगभग आधी सदी से अमरीका ने हमारे ऊपर आर्थिक नाकेबन्दी थोपी हुई है। वह न सिर्फ क्यूबा की जनता को भूखों मारना चाहता है बल्कि उसका आर्थिक तौर भी गला घोंट देने का नापाक इरादा रखता है।

चीन एथेनॉल उत्पादन के लिए एक टन भी अनाज या तिलहन नहीं देगा। वह आर्थिक रूप से सम्पन्न देश है और विकास के सारे रिकार्ड तोड़ रहा है। चीन में सभी नागरिक मेहनत करके अपनी कमाई से ही

जरूरी उपभोक्ता सामानों को खरीदते हैं। चीन की कुल 1 अरब 30 करोड़ से ज्यादा आबादी में से 48 फीसदी लोग खेती पर निर्भर हैं। चीन उन हजारों कारखानों को बन्द करके जिनमें बहुत ज्यादा बिजली और हाइड्रोकार्बन ईंधन खर्च होता है, ऊर्जा के उपभोग में कमी लाने की शुरुआत कर चुका है। चीन बहुत से खाद्य पदार्थों का आयात करता है।

ऐसे बीसियों देश हैं जहाँ हाइड्रोकार्बन नहीं पैदा होते। वे मक्का, अन्य अनाज या तिलहन उगाने में भी असमर्थ हैं क्योंकि उनके पास इतना भी पानी नहीं कि वे अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकें।

अर्जेण्टीना तेल उद्योग चेम्बर और खाद्यान्न निर्यातक संघ ने ब्यूनस आयर्स में एथेनॉल उत्पादन पर एक बैठक बुलायी थी। इस बैठक में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओ.ई.सी.डी.) के वाणिज्यिक और मार्केटिंग डिवीजन के डच प्रमुख लोएक बूनेकैम्प ने प्रेस को बताया था कि सरकारें इस प्रक्रिया को लेकर उत्साहित हैं, लेकिन उन्हें वस्तुगत होकर सोचना चाहिए कि क्या एथेनॉल को इतनी मजबूती से समर्थन दिया जाना चाहिए। श्रीमान बूनेकैम्प के मुताबिक अमरीका एकमात्र देश है जहाँ एथेनॉल फायदेमन्द हो सकता है बिना सब्सिडी दिये, दूसरे किसी देश में यह लाभप्रद नहीं होगा।

आज विकसित देश खनिज ईंधन में करीब 5 फीसदी जैव ईंधन मिलाकर इस्तेमाल करने को बढ़ावा दे रहे हैं और इतने से ही कृषि-उत्पादों के दाम प्रभावित हो रहे हैं। अब यदि इसे बढ़ाकर 10 फीसदी कर दिया जाये तो बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए अमरीका की खेती योग्य जमीन के 30 फीसदी और यूरोप की खेती योग्य जमीन के 50 फीसदी की जरूरत होगी। यही कारण है कि श्रीमान बूनेकैम्प को खुद से पूछना पड़ रहा है कि यह प्रक्रिया टिकाऊ होगी अथवा नहीं? एथेनॉल उत्पादन के लिए आवश्यक फसलों की माँग बढ़ने से उनकी कीमतें ज्यादा ऊँची लेकिन कम स्थायी हो जायेंगी। आजकल प्रचलित तापदीप्त बल्बों की जगह प्रतिदीप्त बल्बों (फ्लोरिसेण्ट बल्बों) का इस्तेमाल करने मात्र से ही करोड़ों डालर का निवेश और ऊर्जा बचायी जा सकती है और इसमें एक भी एकड़ कृषि योग्य जमीन का इस्तेमाल नहीं करना पड़ेगा।

बदतरीन हालात तो अभी आने हैं – गैस और तेल की नियमित आपूर्ति को कायम रखने के लिए एक नया युद्ध जो मानवता को पूर्ण विनाश के कगार पर पहुँचा सकता है। तीसरी दुनिया के गरीब देशों को अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए आवश्यक बुनियादी संसाधन कहाँ से मिलेंगे? मैं न तो बढ़ा-चढ़ाकर बात कर रहा हूँ और न ही अतिशयोक्ति पूर्ण भाषा बोल रहा हूँ। मैं खुद को सिर्फ तथ्यों तक ही सीमित रख रहा हूँ। हम जानते हैं कि बहुमुखी जीव के कई चेहरे काले होते हैं। ▣

चीनी बच्चों में इण्टरनेट की बीमारी

चीन में बच्चों में इण्टरनेट की लत बीमारी का रूप ले चुकी है। इसके इलाज के लिए बीजिंग के पास एक स्वास्थ्य केन्द्र खोला गया है। चीन में 18 साल से कम उम्र के 13% बच्चे इस बीमारी के शिकार हैं जिनकी संख्या लगभग 23 लाख बैठती है। सरकार ने इससे निपटने के लिए कुछ कदमों की घोषणा की है। इस बीमारी के शिकार लोगों को अगर इण्टरनेट इस्तेमाल करने से रोका जाये तो वे इण्टरनेट कैफे में जाने के लिए किसी भी कीमत पर – चोरी या हिंसा के जरिये पैसा पाना चाहते हैं। अक्सर वे खाना-सोना छोड़कर घण्टों कम्प्यूटर के सामने बैठे रहते हैं। उनमें चिड़चिड़ाहट, आत्मविश्वास की कमी, निराशा, कुपोषण, नींद न आना, अपने पर नियन्त्रण न होना जैसे लक्षण पाये जाते हैं।

इस बीमारी का कारण है माँ-बाप और स्कूल की ओर से बच्चों पर परीक्षा में अच्छे स्थान के साथ पास होने के लिए पड़ने वाला अनुचित दबाव। लगातार आलोचना और उम्मीदों के दबाव को झेल पाने में असमर्थ नौजवान असली जिन्दगी के तनाव से बचने के लिए इण्टरनेट पर निर्भर हो जाते हैं।

आततायी साम्राज्यवाद

■ ह्यूगो शावेज फ्रियास

(20 सितम्बर 2006 को काराकास में हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन में बोलीवेरियाई गणतन्त्र वेनेजुएला के राष्ट्रपति ह्यूगो शावेज फ्रियास का संयुक्त राष्ट्र संघ और दुनिया की जनता के नाम सन्देश)

अध्यक्ष महोदया, महामहिम राज्याध्यक्ष, सरकारों के प्रमुख और दुनिया की सरकारों के उच्चस्तरीय प्रतिनिधिगण आप सब को शुभ दिवस!

सबसे पहले आपसे मेरा विनम्र अनुरोध है कि जिसने भी यह किताब नहीं पढ़ी है, इसे जरूर पढ़ लें। अमरीका ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के बहुत ही सम्मानित बुद्धिजीवी नोम चोम्सकी की ताजा रचना मैंने पढ़ी – 'वर्चस्व या अस्तित्व रक्षा? दुनिया पर प्रभुत्व कायम करने की अमरीकी कोशिश।' यह किताब 20वीं सदी के दौरान जो कुछ हुआ और जो आज भी हो रहा है, हमारे भूमण्डल के ऊपर जो गम्भीर खतरे मँडरा रहे हैं, अमरीकी साम्राज्यवाद के जिस वर्चस्ववादी मंसूबे ने मानव जाति के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है, उन सबको समझने में यह काफी मददगार है। डेमोक्लीज की तलवार की तरह हमारे ऊपर लटक रहे इस खतरे के प्रति हम लगातार अमरीका और पूरी दुनिया की जनता को चेतावनी दे रहे हैं और उनका आह्वान कर रहे हैं।

मैं इसका एक अध्याय यहाँ पढ़ना चाहता था, लेकिन समय के अभाव में मैं केवल आपसे पढ़ने का अनुरोध भर कर रहा हूँ। यह काफी प्रवाहमय है। अध्यक्ष महोदया, यह वास्तव में बहुत अच्छी किताब है और आप जरूर इससे वाकिफ होंगी। यह अंग्रेजी, जर्मन, रशियन और अरबी में छपी है। देखिए, मेरे खयाल से संयुक्त राज्य अमरीका के हमारे भाई-बहनों को तो सबसे पहले इसे पढ़ना चाहिए क्योंकि खतरा उनके घर में है। शैतान उनके घर में है। शैतान खुद उनके घर के भीतर है।

शैतान कल यहाँ भी आया था। (हँसी और तालियाँ)। कल शैतान यहीं था। ठीक इसी जगह। यह टेबुल जहाँ से मैं बोल रहा हूँ, वहाँ अभी भी सल्फर की बदबू आ रही है। कल, बहनो-भाइयो ठीक इसी सभागार में संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति जिसे मैं शैतान कह रहा हूँ, आया था और ऐसे बोल रहा था, जैसे वह दुनिया का मालिक हो। कल उसने जो भाषण दिया था, उसे समझने के लिए हमें किसी मनोचिकित्सक की मदद लेनी पड़ेगी।

साम्राज्यवाद के प्रवक्ता के रूप में वह हमें अपने मौजूदा वर्चस्व को बनाये रखने, दुनिया की जनता के शोषण और लूट की योजना का नुस्खा देने आया था। इसपर तो अल्फ्रेड हिचकॉक की एक डरावनी फिल्म तैयार हो सकती है। मैं उस फिल्म का नाम भी सुझा सकता हूँ – ''शैतान का नुस्खा।'' मतलब अमरीकी साम्राज्यवाद, और यहाँ चोम्सकी इस बात को गहरी और पारदर्शी स्पष्टता के साथ कहते हैं कि अमरीकी साम्राज्यवाद अपनी वर्चस्ववादी प्रभुत्व की व्यवस्था को मजबूत बनाने की उन्माद भरी कोशिशें कर रहा है। हम ऐसा होने नहीं देंगे, हम उन्हें विश्वव्यापी तानाशाही लादने नहीं देंगे।

दुनिया के इस जालिम राष्ट्रपति का भाषण मानवद्वेष से भरा हुआ था, पाखण्ड से भरा हुआ था। यही वह साम्राजी पाखण्ड है जिसके सहारे वे हर चीज पर नियन्त्रण कायम करना चाहते हैं। वे हम सबके ऊपर अपने द्वारा गढ़े गये लोकतन्त्र के नमूने को थोपना चाहते हैं, अभिजात्यों का

फर्जी लोकतन्त्र। और इतना ही नहीं, एक बहुत ही मौलिक लोकतान्त्रिक नमूना जो विस्फोटों, बमबारियों, घुसपैठों और तोप के गोलों के सहारे थोपा जा रहा है, क्या ही सुन्दर लोकतन्त्र है! हमें अरस्तु और प्राचीन यूनानियों के लोकतन्त्र के सिद्धान्तों का पुनरावलोकन करना होगा यह समझने के लिए कि यह किस प्रकार के लोकतन्त्र का नमूना है जो समुद्री बेड़ों, आक्रमणों, घुसपैठों और बमों के जरिये आरोपित किया जा रहा है।

अमरीकी राष्ट्रपति ने इस छोटे से सभागार में कल कहा था कि ''आप जहाँ भी जाओ, आपको उग्रवादी यह कहते हुए सुनायी देते हैं कि आप हिंसा और आतंक, मुसीबतों से छुटकारा पा सकते हैं और अपना सम्मान फिर से हासिल कर सकते हैं।'' वह जिधर भी देखता है, उसे उग्रवादी दिखाई देते हैं। मुझे यकीन है कि वह आपकी चमड़ी के रंग को देखता है भाई, और सोचता है कि आप एक उग्रवादी हो। अपनी चमड़ी के रंग के चलते ही बोलीविया के माननीय राष्ट्रपति इवो मोरालेस जो कल यहाँ आये थे, एक उग्रवादी हैं। साम्राज्यवादियों को हर जगह उग्रवादी दिखायी देते हैं। नहीं ऐसा नहीं कि हम लोग उग्रवादी हैं। हो ये रहा है कि दुनिया जाग रही है और हर जगह जनता उठ खड़ी हो रही है। मुझे ऐसा लगता है श्रीमान् साम्राज्यवादी तानाशाह कि आप अपने बाकी के दिन एक दु:स्वप्न में गुजारेंगे, क्योंकि आप चाहे जिधर भी देखेंगे हम अमरीकी साम्राज्यवाद के खिलाफ उठ खड़े हो रहे होंगे। हाँ, वे हमें उग्रवादी कहते हैं क्योंकि हम दुनिया में सम्पूर्ण आजादी की माँग करते हैं, जनता के बीच समानता की माँग करते हैं और राष्ट्रीय सम्प्रभुता के सम्मान की माँग करते हैं। हम साम्राज्य के खिलाफ, वर्चस्व के ताने-बाने के खिलाफ उठ खड़े हो रहे हैं।

आगे राष्ट्रपति ने कहा कि ''आज हम सारे मध्यपूर्व की समूची जनता से सीधे-सीधे कहना चाहेंगे कि मेरा देश शान्ति चाहता है।'' यह पक्की बात है। अगर हम ब्रोंक्स की सड़कों से गुजरें, यदि हम न्यूयार्क, वाशिंगटन, सान दियेगो, कैलीफोर्निया, सान फ्रांसिस्को की गलियों से होकर गुजरें और उन गलियों के लोगों से पूछें तो यही जवाब मिलेगा कि अमरीका की जनता शान्ति चाहती है। फर्क यह है कि इस देश की, अमरीका की सरकार शान्ति नहीं चाहती। युद्ध का भय दिखाकर हमारे ऊपर अपने शोषण और लूट और प्रभुत्व का प्रतिमान थोपना चाहती है। यही थोड़ा सा फर्क है।

जनता शान्ति चाहती है लेकिन इराक में हो क्या रहा है? और लेबनान और फिलिस्तीन में क्या हुआ? और सौ सालों तक लातिन अमरीका और दुनियाभर में क्या हुआ? और वेनेजुएला के खिलाफ धमकी और ईरान के खिलाफ नयी धमकी? लेबनान की जनता से उसने कहा, ''आप में से बहुतों ने अपने घर और अपने समुदायों को जवाबी गोलाबारी में फँसते देखा।'' क्या सनकीपन है? दुनिया के सामने सफेद झूठ बोलने की कैसी महारत है? बेरूत के ऊपर एक-एक सेण्टीमीटर की नाप-जोख करके गिराये गये बम क्या ''जवाबी गोलाबारी'' थी! मेरे खयाल से राष्ट्रपति उन पश्चिमी फिल्मों की बात कर रहा है जिसमें वे कमर की ऊँचाई से दूसरे पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलातें हैं और बीच में फँस कर कोई मर जाता है।

साम्राज्यवादी गोलाबारी, फासीवादी गोलाबारी! हत्यारी गोलाबारी! साम्राज्यवादियों और इजरायल के द्वारा फिलिस्तीन और लेबनान की निर्दोष जनता के खिलाफ नरसंहारक गोलाबारी, यही सच है। अब वे कहते हैं कि वे तबाह किये गये घरों को देखकर परेशान हैं।

आज सुबह मैं अपने भाषण की तैयारी के दौरान कुछ भाषणों को देख रहा था। अपने भाषण में अमरीकी राष्ट्रपति ने अफगानिस्तान की जनता को, लेबनान की जनता को, ईरान की जनता को सम्बोधित किया। कोई भी, अमरीकी राष्ट्रपति को उन लोगों को सम्बोधित करते हुए सुनेगा तो वह अचरज में पड़ जायेगा। वे लोग उससे क्या कहेंगे? यदि वे लोग उससे कुछ कह पाते तो उससे भला क्या कहते? मुझे इसका कुछ अन्दाजा है क्योंकि मैं उन लोगों की, दक्षिण के लोगों की आत्मा से परिचित हूँ। यदि दुनियाभर के वे लोग अमरीकी साम्राज्यवाद से एक ही आवाज में बोलें, तो दबे-कुचले लोग कहेंगे – यांकी साम्राज्यवादी वापस जाओ! यही वह चीख होगी जो पूरी दुनिया में गूँज उठेगी।

अध्यक्ष महोदया, साथियो और दोस्तो, पिछले साल हम लोग ठीक इसी सभागार में आये, पिछले आठ

वर्षों से हम लोग यहाँ जुटते हैं और हम सबने कुछ बातें कही थीं जो आज पूरी तरह सही साबित हुई हैं। मेरा विश्वास है कि इस जगह बैठे हुए लोगों में से कोई भी नहीं होगा जो संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के समर्थन में खड़ा होगा। हमें इस बात को ईमानदारी से स्वीकार करना चाहिए कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद जिस संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्‌भव हुआ था, उसका पतन हो गया है, वह छिन्न-भिन्न हो गया है, वह किसी काम का नहीं रहा। हाँ, ठीक है कि यहाँ आना और भाषण देना और एक-दूसरे से साल में एक बार मिलना-जुलना, इतना काम तो होता है। लम्बे दस्तावेज तैयार करना, अपने विचार व्यक्त करना और अच्छे भाषण सुनना, जैसा कल इवो ने और लूला ने दिया था, हाँ इसके लिए यह ठीक है। और भी कई अच्छे भाषण भी, जैसा अभी-अभी श्रीलंका के राष्ट्रपति और चिली के राष्ट्रपति ने दिया। लेकिन हमने इस मंच को महज एक विचार मण्डल में बदल दिया है जिसमें आज पूरी दुनिया जिन भयावह सच्चाइयों से रूबरू है उन्हें रत्ती भर भी प्रभावित करने का कोई दम नहीं है। इसलिए हम यहाँ एक बार फिर आज, यानि 20 सितम्बर 2006 को संयुक्त राष्ट्र संघ की पुनर्स्थापना का प्रस्ताव रखते हैं। पिछले साल अध्यक्ष महोदया, हमने चार निम्न प्रस्ताव रखे थे, जिन्हें मैं महसूस करता हूँ कि राज्याध्यक्षों, सरकार के प्रमुखों, राजदूतों और प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृति दिया जाना अत्यन्त जरूरी है। हमने इन प्रस्तावों पर विचार-विमर्श भी किया है।

पहला – विस्तार। कल लूला ने यही बात कही थी, सुरक्षा परिषद् के स्थाई और साथ ही अस्थाई पदों को भी विकसित, अविकसित और तीसरी दुनिया के देशों के बीच से नये सदस्यों के लिए खुला रखना जरूरी है। यह पहली प्राथमिकता है।

दूसरा –दुनिया के टकरावों का सामना करने और उन्हें हल करने के लिए प्रभावी तौर-तरीके अपनाना। वाद-विवाद और निर्णय लेने के पारदर्शी तौर-तरीके।

तीसरा – वीटो की गैरजनवादी प्रणाली तत्काल समाप्त करना। सुरक्षा परिषद् के निर्णयों के ऊपर वीटो के अधिकार का प्रयोग हमारे खयाल से एक बुनियादी सवाल है और हम सब इसे हटाने की माँग करते हैं। इसका ताजा उदाहरण है अमरीकी सरकार द्वारा अनैतिक वीटो जिसने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के एक प्रस्ताव को बाधित करके इजरायली सेना को लेबनान की तबाही की खुली छूट दे दी और हम विवश देखते रह गये।

चौथा – जैसा कि हम हमेशा कहते रहे हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव की भूमिका और उसके अधिकारों को मजबूत बनाना जरूरी है। कल हमने महासचिव का भाषण सुना जिनका कार्यकाल जल्दी ही खत्म होने जा रहा है। उन्होंने याद दिलाया कि पिछले दस वर्षों के दौरान दुनिया पहले से कहीं ज्यादा जटिल हो गयी है तथा भूख, गरीबी, हिंसा और मानवाधिकारों के हनन जैसी दुनिया की गम्भीर समस्याएँ लगातार विकट होती गयी हैं। यह संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के पतन और अमरीकी साम्राज्यवाद के मंसूबों का भयावह परिणाम है।

अध्यक्ष महोदया, इसके सदस्य के रूप में अपनी-अपनी हैसियत को समझते हुए कई साल पहले वेनेजुएला ने फैसला किया था कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर अपनी आवाज, अपने विनम्र विचारों के जरिये हम यह लड़ाई लड़ेंगे। हम एक स्वतन्त्र आवाज हैं, स्वाभिमान के प्रतिनिधि हैं, शान्ति की तलाश में हैं और एक ऐसी अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के निरूपण की माँग करते हैं जो दुनियाभर की जनता के उत्पीड़न और वर्चस्ववादी आक्रमणों की भर्त्सना करे। इसी को ध्यान में रखते हुए वेनेजुएला ने अपना नाम प्रस्तुत किया है। बोलिवर की धरती ने सुरक्षा परिषद् के अस्थायी पद के उम्मीदवार के रूप में अपना नाम प्रस्तुत किया है। निश्चय ही आप सब जानते हैं अमरीकी सरकार ने एक खुला आक्रमण छेड़ दिया है ताकि वह सुरक्षा परिषद् के खुले पद को स्वतन्त्र चुनाव के जरिये हासिल करने में वेनेजुएला की राह में बाधा खड़ी करे। वे सच्चाई से डरते हैं। साम्राज्यवादी सच्चाई और स्वतन्त्र आवाज से भयभीत हैं। वे हम पर उग्रवादी होने की तोहमत लगाते हैं।

उग्रवादी तो वे खुद हैं।

मैं उन सभी देशों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने वेनेजुएला को समर्थन देने की घोषणा की है, बावजूद इसके कि मतदान गुप्त है और किसी के लिए अपना मत जाहिर करना जरूरी नहीं। लेकिन मैं सोचता हूँ कि अमरीका

के खुले आक्रमण ने कई देशों को समर्थन के लिए बाध्य कर दिया ताकि वेनेजुएला को, हमारी जनता और हमारी सरकार को नैतिक रूप से बल प्रदान करें।

मरकोसुर के हमारे भाइयों एवं बहनों ने, मिसाल के लिए एक समूह के तौर पर वेनेजुएला को अपना समर्थन देने की घोषणा की है। अब हम ब्राजील, अर्जेण्टीना, उरुग्वे, परागुए के साथ मरकोसुर (लातिन अमरीकी साझा बाजार) के स्थायी सदस्य हैं। बोलीविया जैसे कई दूसरे लातिन अमरीकी देशों और सभी कैरीकॉम (कैरीबियाई साझा बाजार) के देशों ने भी वेनेजुएला को अपना समर्थन देने का वचन दिया है। सम्पूर्ण अरब लीग ने वेनेजुएला को समर्थन देने की घोषणा की है। मैं अरब दुनिया को, अरब दुनिया के अपने भाइयों को धन्यवाद देता हूँ। अफ्रीकी संघ के लगभग सभी देशों ने तथा रूस, चीन और दुनियाभर के अन्य कई देशों ने भी वेनेजुएला को अपना समर्थन देने का वचन दिया है। मैं वेनेजुएला की ओर से, अपने देश की जनता की ओर से और सच्चाई के नाम पर आप सबको तहे दिल से धन्यवाद देता हूँ क्योंकि सुरक्षा परिषद् में स्थान पाकर हम न केवल वेनेजुएला की आवाज, बल्कि तीसरी दुनिया की आवाज, पूरे पृथ्वी ग्रह की आवाज को सामने लायेंगे। वहाँ हम सम्मान और सच्चाई की हिफाजत करेंगे। अध्यक्ष महोदया, सबकुछ के बावजूद मैं सोचता हूँ कि आशावादी होने के आधार हैं।

जैसा कवि लोग कहते हैं, विकट आशावादी, क्योंकि बमों, युद्ध, हमलों निरोधक युद्धों और पूरी जनता की तबाही के खतरे के बावजूद कोई भी यह देख सकता है कि एक नये युग का उदय हो रहा है। जैसा कि सिल्वो रोड्रिग्ज गाता है – ''जमाना एक नये जीवट को जन्म दे रहा है।'' वैकल्पिक प्रवृत्तियाँ, वैकल्पिक विचार और स्पष्ट विचारों वाले नौजवान उभर कर सामने आ रहे हैं। बमुश्किल एक दशक बीता और यह बात साफ तौर पर साबित हो गयी कि 'इतिहास के अन्त' का सिद्धान्त पूरी तरह फर्जी है। अमरीकी साम्राज्य और अमरीकी शान्ति की स्थापना, पूँजीवादी नवउदारवादी मॉडल की स्थापना, जो दु:ख-दैन्य और गरीबी को जन्म देते हैं – पूरी तरह फर्जी है। यह विचार पूरी तरह बकवास है और इसे कूड़े पर फेंक दिया गया है। अब दुनिया के भविष्य को परिभाषित करना ही होगा। पूरी पृथ्वी पर एक नया सवेरा हो रहा है जिसे हर जगह देखा जा सकता है– लातिन अमरीका में, एशिया, अफ्रीका, यूरोप और ओसीनिया में। इस आशावादी नजरिये पर मैं अच्छी तरह रोशनी डाल रहा हूँ ताकि हम अपनी अन्तरात्मा और दुनिया की हिफाजत करने का, एक बेहतर दुनिया, एक नयी दुनिया के निर्माण के लिए लड़ने का, अपना इरादा पक्का कर लें।

वेनेजुएला इस संघर्ष में शामिल हो गया है और इसीलिए हमें धमकियाँ दी जा रही हैं। अमरीका ने पहले ही एक तख्तापलट की योजना बनायी, उसके लिए पैसे दिये और उसे अंजाम दिया। अमरीका आज भी वेनेजुएला में तख्तापलट की साजिश रचने वालों की मदद कर रहा है और वे लगातार वेनेजुएला के खिलाफ आतंकवादियों की मदद कर रहे हैं।

राष्ट्रपति मिशेल बैचलेट ने कुछ दिनों पहले, माफ करें, कुछ ही मिनटों पहले यहाँ बताया कि चिली के विदेश मन्त्री ओरलान्दो लेतेलियर की कितनी भयावह तरीके से हत्या की गयी। मैं इसमें इतना और जोड़ दूँ कि अपराधी दल पूरी तरह आजाद हैं। उस कुकृत्य के लिए, जिसमें एक अमरीकी नागरिक भी मारा गया था, जो लोग जिम्मेदार हैं वे सी.आई.ए. के उत्तरी अमरीकी लोग हैं, सी.आई.ए. के आतंकवादी हैं।

इसके साथ मैं इस सभागार में यह भी याद दिला देना जरूरी समझता हूँ कि आज से 30 साल पहले एक हृदयविदारक आतंकवादी हमले में क्यूबाना दे एविएसियोन के एक हवाई जहाज को बीच आकाश में उड़ा दिया गया था और 73 निर्दोष नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इस महाद्वीप का वह सबसे घिनौना आतंकवादी कहाँ है जिसने स्वीकार किया था कि उस क्यूबाई हवाई जहाज को उड़ाने के षड्यन्त्र का दिमागी खाका उसी ने तैयार किया था? वह कुछ सालों तक वेनेजुएला की जेल में था, लेकिन सी.आई.ए. के अधिकारियों और वेनेजुएला की तत्कालीन सरकार की मदद से वह फरार हो गया। आजकल वह अमरीका में रह रहा है, और वहाँ की सरकार उसका बचाव कर रही है, इसके बावजूद कि उसने जुर्म का इकबाल किया था और उसे सजा हुई थी। अमरीका दोगली नीति अपनाता है और आतंकवादियों का बचाव करता है।

इन बातों के जरिये मैं यह बताना चाहता हूँ कि वेनेजुएला आतंकवाद के खिलाफ, हिंसा के खिलाफ संघर्ष के लिए वचनबद्ध है और उन सभी लोगों के साथ मिलकर काम करने को तैयार है जो शान्ति के लिए और एक न्यायपूर्ण दुनिया के लिए संघर्षरत हैं।

मैने क्यूबाई हवाई जहाज की बात की। लुइस पोसादा कैरिलेस नाम है उस आतंकवादी का। अमरीका में उसकी ठीक उसी तरह हिफाजत की जाती है जैसे वेनेजुएला के भ्रष्ट भगोड़ों की, आतंकवादियों के एक गिरोह की जिसने कई देशों के दूतावासों में बम लगाया था, तख्तापलट के दौरान निर्दोष लोगों की हत्या की थी और इस विनम्र सेवक (शावेज) का अपहरण किया था। वे मेरी हत्या करने ही वाले थे कि खुदा की मेहरबानी, अच्छे सैनिकों का एक समूह सामने आया और जिन्होंने जनता को सड़कों पर उतार दिया। यह चमत्कार ही समझिये कि मैं यहाँ मौजूद हूँ। उस तख्तापलट और आतंकवादी कारनामे के नेता यहीं हैं, अमरीकी सरकार की सुरक्षा में (अभी हाल ही में खबर आयी कि अमरीका ने इस आतंकवादी कैरिलेस को रिहा कर दिया है – अनुवादक) मैं अमरीकी सरकार पर आतंकवाद की हिफाजत करने और एक पूर्णत: मानवद्रोही भाषण देने का अभियोग लगाता हूँ।

जहाँ तक क्यूबा की बात है, हम लोग खुशी-खुशी हवाना गये। कई दिनों तक हम लोग वहाँ रहे। जी-15 और गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन के दौरान पारित एक ऐतिहासिक प्रस्ताव और दस्तावेज में नये युग के उदय का स्पष्ट प्रमाण मौजूद था। परेशान न हों। मैं यहाँ उन सबको पढ़ने नहीं जा रहा हूँ। लेकिन पूरी पारदर्शिता के साथ खुले विचार-विमर्श के बाद लिए गये प्रस्तावों का एक संग्रह यहाँ उपलब्ध है। पचास देशों के राज्याध्यक्षों की उपस्थिति में एक हफ्ते तक हवाना दक्षिण की राजधानी बना हुआ था। हमने गुट निरपेक्ष आन्दोलन को दुबारा शुरू किया। और आपसे हमारी यही गुजारिश है कि मेरे भाइयों और बहनों, मेहरबानी करके आप लोग गुट निरपेक्ष आन्दोलन को मजबूत बनाने के लिए अपना पूरा सहयोग दें, क्योंकि यह नये युग के उदय तथा आधिपत्य और साम्राज्यवाद पर लगाम लगाने के लिए बहुत ही जरूरी है। साथ ही आप सब जानते हैं कि हमने फिदेल कास्त्रो को अगले तीन वर्षों के लिए गुट निरपेक्ष आन्दोलन का अध्यक्ष बनाया है और हमें पक्का यकीन है कि साथी अध्यक्ष फिदेल कास्त्रो पूरी दक्षता के साथ अपना पद सम्भालेंगे। जो लोग फिदेल की मौत चाहते थे, उन्हें निराशा ही हाथ लगी क्योंकि फिदेल अपनी जैतूनी हरे रंग की वर्दी में वापस आ गये हैं और वे अब न केवल क्यूबा के राज्याध्यक्ष हैं बल्कि गुट निरपेक्ष आन्दोलन के भी अध्यक्ष हैं।

अध्यक्ष महोदया, मेरे प्यारे दोस्तों राज्याध्यक्षों, हवाना में दक्षिण का एक बहुत ही मजबूत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। हम दक्षिण के औरत और मर्द हैं। हम इन दस्तावेजों, इन धारणाओं और विचारों के वाहक हैं। जिन परचों और पुस्तको को मैं वहाँ से अपने साथ लाया हूँ – वे आपके लिए रखवा दिये गये हैं। इन्हें भूलिएगा मत। मैं वास्तव में आपसे इन्हें पढ़ने की सिफारिश कर रहा हूँ। पूरी विनम्रता के साथ हम लोग इस ग्रह को बचाने, साम्राज्यवाद के खतरे से इसकी हिफाजत करने की दिशा में वैचारिक योगदान करने का प्रयास कर रहे हैं और भगवान ने चाहा तो जल्दी ही यह काम हो जायेगा। इस सदी की शुरुआत में ही यदि खुदा ने चाहा हम लोग खुद भी और अपने बच्चों, अपने पोते-पोतियों के साथ एक शान्तिपूर्ण दुनिया का मजा ले सकेंगे, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के नवीन और पुनर्निर्धारित बुनियादी सिद्धान्तों के अनुरूप होगी। मेरा विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र संघ किसी अन्य देश में स्थापित होगा, दक्षिण के किसी शहर में। हमने इसके लिए वेनेजुएला की ओर से प्रस्ताव दिया है। आप सबको पता है कि हमारे चिकित्सकों को हवाई जहाज में बन्द करके रोक दिया गया है। हमारे सुरक्षा प्रमुख को हवाई जहाज में बन्द कर दिया गया। वे उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं आने देंगे। एक और दुर्व्यवहार, एक और अत्याचार।

अध्यक्ष महोदया, मेरा आग्रह है कि इसके लिए व्यक्तिगत तौर पर उसी सल्फ्यूरिक शैतान को जिम्मेदार माना जाये।

गर्मजोशी भरा आलिंगन। खुदा हम सब की खैर करे।

शुभ दिवस।

वेनेजुएला: बोलीवेरियाई विकल्प की ओर बढ़ते कदम

■ रूपेश

वेनेजुएला के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के नायक सीमोन बोलीवार मृत्युपर्यन्त साम्राज्यवाद का मुकाबला करने वाले लातिन अमरीकी महानायकों में से एक थे। उनका मानना था कि साम्राज्यवाद को शिकस्त देना किसी एक देश के लिए सम्भव नहीं है। इसके लिए लातिन अमरीका के सभी देशों की जनता को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। उनके इसी विचार को लातिन अमरीकी जनता ने आज साम्राज्यवाद विरोधी रणनीति के रूप में पुनर्जीवित किया है और इसे बोलीवेरियाई विकल्प का नाम दिया है।

लातिन अमरीका के कई देशों की जनता और उसके नेता आज इसी बोलीवेरियाई विकल्प के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ये देश आपसी सहयोग और सहकार के आधार पर अमरीकी साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त होने के लिए प्रयासरत हैं। अपने संसाधनों पर नियन्त्रण कायम करने के लिए जनता द्वारा चलाये जा रहे इन संघर्षों में वेनेजुएला की जनता के संघर्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस साल जनवरी में वेनेजुएला में राष्ट्रीयकरण की मुहिम को तेज करते हुए राष्ट्रपति ह्यूगो शावेज को जनता ने शासनादेशों के जरिये 18 महीने तक शासन करने का जनादेश दिया।

सबसे पहले निशाना अमरीकी तेल कम्पनियों को बनाया गया। परियोजनाओं में हिस्सेदारी का बड़ा हिस्सा उनसे छीनकर उसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। 1 मई को राष्ट्रपति शावेज ने ओरीनीको तेल परियोजना को भी अपने नियन्त्रण में लेकर इस अभियान को अन्तिम मुकाम तक पहुँचा दिया। सेना की मदद से अधिकारियों ने परियोजनाओं का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया।

वेनेजुएला में चल रही 30 अरब डालर की चार तेल परियोजनाएँ प्रतिदिन 6 लाख बैरल तेल का उत्पादन करती हैं। अमरीकी कम्पनी कोनोको फिलिप्स को छोड़कर अन्य कम्पनियाँ शेवरान, एक्सन मोबिल (अमरीका), बी.पी. (ब्रिटेन), स्टेटऑयल (नार्वे), टोटल (फ्रांस) बिना किसी प्रतिरोध के शासनादेश का पालन करते हुए अपना नियन्त्रण छोड़ने के लिए तैयार हो गयीं। जनता को सम्बोधित करते हुए शावेज ने ऐलान किया कि ''बेलगाम निवेश के दिन अब लद चुके हैं।'' आज ''हम इस युग को ओरीनोको तेल क्षेत्र की तलहटी में दफन कर रहे हैं।''

जन स्वास्थ्य को प्राथमिकता

अप्रैल में सरकार ने लुटेरे निजी अस्पतालों के खिलाफ अभियान तेज करते हुए उन्हें धमकी दी कि अगर वे इलाज को इसी तरह महँगा करते रहे तो बाध्य होकर सरकार उनका राष्ट्रीयकरण कर देगी। महँगे इलाज को एक ''पूँजीवादी बुराई'' बताते हुए शावेज ने कहा कि ''हम स्वास्थ्य जैसी महत्वपूर्ण सेवाओं में इस कदर बेहयाई से लूट की इजाजत नहीं दे सकते।'' सत्ता में चुने जाने के बाद से शावेज ने वेनेजुएला में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया है, नये क्लीनिक खोले हैं, पुराने अस्पतालों का नवीनीकरण करवाया है तथा वेनेजुएला और क्यूबा में प्रशिक्षित हजारों डॉक्टर गरीब बस्तियों में मुफ्त इलाज के लिए भेजे गये हैं।

निजी बैंक और स्टील कम्पनियों पर लगाम

मई के पहले सप्ताह में शावेज ने निजी बैंकों और स्टील कम्पनी तेरनियम-सिडर पर अनैतिक आचरण का आरोप लगाते हुए उन्हें चेतावनी दी कि वे अपने तौर-तरीकों को ''राष्ट्रीय हितों'' के अनुरूप ढालें अन्यथा उनका

राष्ट्रीयकरण कर दिया जायेगा। सरकार चाहती है कि निजी बैंक घरेलू क्षेत्र को ऋण उपलब्ध करवाने को प्राथमिकता दें। स्टील कम्पनी सिडर भी अपने उत्पादों को विदेशों को निर्यात करना बन्द करके प्राथमिकता में सस्ते दामों पर घरेलू आपूर्ति की ओर ध्यान दे।

स्टील कम्पनी सिडर तेल उद्योग के लिए सालाना 60 हजार टन ट्यूब का उत्पादन करती है। शावेज के मुताबिक ''अन्य कम्पनियों के साथ मिलकर इसने ट्यूब उत्पादन पर एकाधिकार कायम कर लिया है और हमें चीन से ट्यूब आयात करनी पड़ रही है। यह हमें स्वीकार्य नहीं है। यदि कम्पनी तत्काल अपने तौर-तरीके नहीं बदलती तो उसका उसी तरह राष्ट्रीयकरण किया जायेगा जैसे दूरसंचार कम्पनी केन टीवी का किया गया था।''

''निजी बैंकों को वेनेजुएला के औद्योगिक क्षेत्र को सस्ती दरों पर वित्त उपलब्ध करवाना होगा। यदि वे इससे सहमत नहीं होते तो बेहतर हो कि वे बैंक को हमारे हवाले करें और अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर यहाँ से रुखसत हों ताकि हम इन बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर सकें।''

बोलीवेरियाई विकल्प (एल्बा)

अमरीकी साम्राज्यवाद द्वारा प्रस्तावित मुक्त व्यापार क्षेत्र के बरक्स बनाये गये अमरीकी देशों के लिए बोलीवेरियाई विकल्प (ए.एल.बी.ए.) की एक बैठक में शावेज ने समाज कल्याण कार्यक्रमों के लिए धन जुटाने के लिए एल्बा की ओर से बाण्ड जारी करने का प्रस्ताव रखा। इसके सदस्य देश हैं – वेनेजुएला, क्यूबा, बोलीविया और निकारागुआ। शावेज ने बताया कि हमने वेनेजुएला और अर्जेण्टीना में इस तरह से 1 अरब डालर जुटाये हैं। इस बैठक में वेनेजुएला ने अन्य देशों के साथ एक अनुबन्ध पर हस्ताक्षर किये। इस करार के तहत वेनेजुएला इन सभी देशों को तरजीही शर्तों पर तेल देगा और एल्बा के सदस्य देशों और हैती की 100 फीसदी ऊर्जा आवश्यकताओं की आपूर्ति करेगा। शावेज ने कहा कि वेनेजुएला, निकारागुआ, हैती, इक्वाडोर, बोलीविया और डोमिनिका में तेल शोधक कारखानों का एक नेटवर्क कायम करना चाहता है और क्यूबा के शेनफ्यूगो तेलशोधक कारखाने का जीर्णोद्धार करना चाहता है ताकि लातिन अमरीका के देशों में तेल की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके। वह चाहता है कि धीरे-धीरे वह अपने अमरीकी तेल शोधक कारखानों को बेच दे। इस बिक्री से प्राप्त धनराशि और एल्बा के बाण्ड जारी करके मिलने वाली धनराशि इस अनुबन्ध को अमली जामा पहनाने में मददगार होगी।

चीन से सहकार

अमरीका पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए वेनेजुएला ने चीन के साथ तेल समझौता किया है, जिसके

cksyhfo;k Hkh osustq,yk dh jkg ij

22 tuojh 2006% fjdkMZ cgqijrls thr djbdksekspkyslus jk"Vªifr inch 'kiFkyh vkSj cksyhfo;k ds ewy fudkfl;ksa vkSj xjhc vkdkmh ds l'kDrhdj.k dk dkmk fd;kA

ekpZ 2006% n'kdksa ls cksyhfo;k ijFkkssistkjs 'kks'k.k dk jhdk;Z ksa dk vUr djrs gq, ljdkjus 7kks"k.k ch fdlogvkbZ-,e-,Q- ds lkFk rhu lkyk djkj lekIr gks tkus ds dkmmldk uchuhdj.k ugha djdk;sxhA

1 ebZ 2006% bdksekspkyslds vkns'k ij lsukus rsy] xSl {ks=ksa vkSj rsy 'kks/kdk dj [kkuksa ij dCtk djfy;kA 10 fons'kh dEifu;k¡ ljdkj }kjk c<+k;k x;k VSDl vnk djus ds krS;kj gks x;haA bl ls ljdkj ds lkyk uk 75 djksM+ MkWyj dk ykHk gksxkA

twu 2006% czkthy vkSjvsZVhk lu;s lekSrksa ds rgr czkthy ds fyfc;k ds izkÏfrd xSl ds fy, 10 Qhlrh vf/kdr ke nsxkA

vizSy 2007% u;s 'kklukns'k us bdks ekspkyslds bl dkr dh lrdZrk rns rh fdmuh ljdkj nwjlapkj cEiuh b.Vsyesa nks fons'kh isa 'ku Q.MdEifu;ksa ds 47 Qhlrh 'ks; jksa ij fu;U=.k dk;e dj ysA

1 ebZ 2007% cksyhfo;k dh ljdkj us bVyh ch dEiuh Vsyh dkWe bVkfy;k ds b.Vsyls vius fu;U=.k dk ys 'ks; jljdkj ds gdks ys djus ds fy, dj k gSA ;g dEiuh b.Vsyds yxHkx 50 Qhlrh 'ks; jksa ch ekfydgSA cksyhfo;k ch ljdkj us bldsfy, le; lhek r; djrh gSA bVyh us ;wjksih; la?k ls vkxzg fd;k gS fd og bVyh ch lclsdMh nwjlapkj dEiuh ds fgrksa ch fo|qrr djus ds fy, bl lekeys esa gLr{ksi djsA

तहत 2009 तक चीन को होने वाला मौजूदा 1 लाख 60 हजार बैरल प्रतिदिन तेल निर्यात तीन गुना कर दिया जायेगा और 2012 तक वेनेजुएला चीन को 10 लाख बैरल प्रति दिन आपूर्ति करने लगेगा। चीन के राष्ट्रीय पेट्रोल निगम को ओरेनिको क्षेत्र में तेल शोधन परियोजनाओं में 40 फीसदी हिस्सेदारी दी जायेगी और चीन में तीन तेल शोधक कारखानों का निर्माण किया जायेगा।

विश्व बैंक-मुद्राकोष का विकल्प दक्षिण का बैंक

विश्व बैंक और मुद्राकोष पर छोटे देशों के शोषण का आरोप लगाते हुए वेनेजुएला ने उनसे अपनी सदस्यता वापस लेने का फैसला किया है। शावेज ने यह घोषणा करते हुए इन संस्थाओं को ''अमरीकी साम्राज्यवाद का उपकरण'' बताया और कहा कि ''इसके पहले कि वे आकर हमें लूटने लगें, हम खुद ही अपनी सदस्यता वापस ले रहे हैं।'' पिछले साल आई. एम.एफ. अपना वेनेजुएला का दफ्तर बन्द कर चुका है।

शावेज ने ''दक्षिण का बैंक'' कायम करने का प्रस्ताव रखा है, जो लातिन अमरीकी देशों का बैंक होगा और उन्होंने वेनेजुएला के तेल की आय से उसकी मदद करने का वादा किया है। यह बैंक विश्वबैंक और मुद्राकोष की लूट से इन देशों को बचायेगा।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक सहकार

ईरान में ईंधन की कमी की समस्या को दूर करने तथा अमरीका के खिलाफ वेनेजुएला और ईरान के संयुक्त मोर्चे को मजबूत करने के लिए वेनेजुएला ने ईरान को पेट्रोल की आपूर्ति करने का निर्णय किया है।

राष्ट्रपति ह्यगो शावेज ने अपनी तेहरान यात्रा के दौरान राष्ट्रपति अहमदीनेजाद के साथ मिलकर 'एकता की धुरी' कायम करने की प्रतिज्ञा की और उसे तेल और गैस की आपूर्ति का वचन दिया।

शाावेज ने यह घोषणा उस समय की है, जब ईरान में हफ्ता भर पहले ही तेल की राशनिंग के सरकार के प्रयासों को भारी विरोध का सामना करना पड़ा था। ईरान एक बड़ा तेल उत्पादक देश है, लेकिन तेल शोधक कारखानों (रिफाइनरी) की कमी के चलते उसे अपनी जरूरत का आधे से ज्यादा तेल विदेशों से आयात करना पड़ता है। घरेलू उपभोग को घटाने और पेट्रोल की कीमतें कम करने के लिए दी जाने वाली सरकारी सब्सिडी को घटाने की गरज से सरकार ने कुछ ही दिनों पहले ईरान में गैस की राशनिंग की घोषणा की थी लेकिन इससे कई शहरों में दंगे भड़क उठे थे।

अमरीका के खिलाफ संश्रय को मजबूत करने के लिए वेनेजुएला अपने तेल भण्डार का कितना बेहतर इस्तेमाल कर रहा है, यह इसका एक उदाहरण है। शावेज ने कहा, ''दोनों देश एकजुट होंगे और उत्तरी अमरीकी साम्राज्यवाद को हरा देंगे।'' उन्होंने कहा कि मेरे ईरान आने से अमरीका चिन्तित हो जाता है।

दोनों देशों के राष्ट्रपतियों ने और भी बहुत से आर्थिक समझौतों पर हस्ताक्षर किये जिनमें वेनेजुएला में एक डेरी फैक्ट्री की स्थापना करना, ईरान में मेथेनॉल का कारखाना लगाना तथा लातिन अमरीका और भारतीय उपमहाद्वीप में एक-दूसरे के निर्यातों को बढ़ाने में मदद करना शामिल है। इन समझौतों से जहाँ ईरान का अन्तरराष्ट्रीय अलगाव कम होगा वहीं वेनेजुएला का अन्तरराष्ट्रीय महत्व बढ़ेगा। ▣

जल्लाद फाँसी पर
चढ़ा रहे थे,
और नकाब पहने थे,
सद्दाम ने नकाब पहनना
स्वीकार नहीं किया,
फाँसी पर चढ़ते वक्त।
नकाब न पहनने के कारण
फाँसी का फन्दा पड़ा चेहरा
देखा लोगों ने।
वे याद रखेंगे –
जल्लादों को,
नकाबों को
और फाँसी का फन्दा पड़े
सद्दाम के चेहरे को।

-विश्वनाथ त्रिपाठी

रतन टाटा का डोव केमिकल्स से याराना

मुनाफे के लिए शैतान से गठजोड़

■ पंकज

12 अगस्त '07 को भोपाल गैस पीड़ितों ने रतन टाटा, अहलूवालिया, मुकेश अम्बानी, कमल नाथ, पी. चिदम्बरम, अभिषेक मनु सिंघवी आदि को मीरजाफर एवार्ड दिया।

3-4 दिसम्बर 1984 की खौफनाक रात! भोपाल वासियों के मन-मस्तिष्क में उस रात की छाया आज भी किसी भयावह दुस्वप्न की तरह पीछा करती है, जब अमरीकी कम्पनी यूनियन कार्बाइड के कीटनाशक कारखाने से 27 टन जहरीली, दमघोंटू 'मिथाइल आइसो साइनायड' गैस का रिसाव हुआ। 48 घण्टों के भीतर आसपास लगभग 10,000 लोग इस जहरीली गैस के कारण दम घुटने से मारे गये। लाखों लोग लँगड़े-लूले या अन्धे हो गये। उनमें से बहुतेरे लोग फिर कभी ठीक नहीं हो सके। भारतीय चिकित्सा शोध परिषद् के मुताबिक गैस के घातक प्रभाव से अभी तक 20,000 से ज्यादा जानें जा चुकी हैं और 2.5 लाख से ज्यादा लोग स्थायी विकलांगता या असाध्य रोगों के शिकार हो चुके हैं।

दुनियाभर में अपनी मानव-विरोधी गतिविधियों के लिए कुख्यात एक दूसरी कम्पनी डोव केमिकल ने उस हत्यारी यूनियन कार्बाइड को खरीद लिया है जिसकी वजह से आज न केवल भोपाल के हवा पानी में जहर घुल चुका है बल्कि माँ का दूध भी जहरीला हो गया है। डोव कैमिकल्स ने भी दुनिया भर के देशों में इतिहास के सबसे जघन्यतम अपराधों को अंजाम दिया है। (बॉक्स देखें) यही कारण है कि खुद अपने देश अमरीका से ही इसे बाहर निकाल दिया गया। डोव केमिकल्स ने मानव जाति को ऐसे गहरे जख्म दिये हैं जिन्हें भरने में शायद सैकड़ों वर्ष लग जाएँ। लेकिन हमारे देश के शासकों ने इस कम्पनी को सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया है।

भोपाल गैस काण्ड के बाद उसके परित्यक्त गोदामों में भरे पड़े हजारों टन विषैले कीटनाशकों और रासायनिक कचरे को ठिकाने लगाने की कोई व्यवस्था न होने के कारण यह खुला जहर बरसाती पानी के साथ घुलकर जमीन के पानी को प्रदूषित कर चुका है। कम से कम 20,000 लोग इसके सीधे शिकार हैं। यूनियन कार्बाइड का नया मालिक डोव केमिकल्स इसकी जवाबदेही से साफ-साफ इनकार कर रहा है।

जिस डोव केमिकल्स का दुनियाभर में इतना खराब रिकार्ड रहा है, जिसे कई देशों ने अपने यहाँ से खदेड़ दिया है, और जिसके खुद अपने ही देश अमरीका में व्यवसाय करने पर रोक लग चुकी है उसी कम्पनी की हिमायत करने के लिए भारत के शीर्षस्थ पूँजीपति रतन टाटा निर्लज्जतापूर्वक मैदान में उतर गये। क्यों टाटा ग्रुप आज डोव केमिकल्स पर लगाये गये भोपाल गैस काण्ड के हर्जाने की राशि माफ करने की बात कर रहा है। ऐसा क्यों है कि रतन टाटा डोव केमिकल्स के नृशंस कार्यों को जानकर भी अनदेखा कर रहे हैं और सरकार द्वारा तय किए गये 100 करोड़ हर्जाने की रकम को चन्दा करके खुद जमा करने की बात कर रहे हैं।

बात बिल्कुल साफ है। इन नये जमाने के मीरजाफरों को अपने सिक्कों की खनखनाहट के आगे पीड़ितों की चीख-पुकार नहीं सुनाई देती है। यह आज के दौर की सच्चाई है कि पूँजीपति अपने मुनाफे के लिए शैतान से भी गठजोड़ करने से पीछे नहीं हटेंगे।

अभी हाल ही में डोव केमिकल्स के भ्रष्टाचार का मामला सामने आया है, जो यह बताता है कि ये विदेशी सरमायादार भारत में अपनी लूट कायम करने के लिए कैसे-कैसे घिनौने हथकण्डे अपनाते हैं। अमरीका की वित्तीय संस्था सिक्योरिटी एक्सचेंज कमीशन के सामने इस कम्पनी ने कबूल किया है कि उसने 1996 से 2001 के बीच अपने कीटनाशकों का जल्दी से जल्दी रजिस्ट्रेशन कराने और उनकी बिक्री की अनुमति लेने के लिए राज्य और केन्द्र

स्तर के अधिकारियों और केन्द्रीय कीटनाशक बोर्ड की रजिस्ट्रेशन कमेटी के एक प्रभावशाली सदस्य को कुल मिलाकर 87,400 डालर (38 लाख रुपये) रिश्वत दी है। इसके कुकृत्य के लिए अमरीका में डोव केमिकल्स पर 3.25 डालर (1043 करोड़ रुपया) का जुर्माना लगाया गया है।

इस डोव केमिकल्स ने केन्द्रीय कीटनाशक बोर्ड के सदस्य को 20,000 डॉलर की घूस देकर श्रेणी I के केमिकल्स मानोक्रोटोफोस की भारत में बिक्री की अनुमति प्राप्त की, जिसे दुनिया के कई विकासशील देशों ने कई साल पहले प्रतिबन्धित कर दिया था। एक अन्य जहरीली दवा, जिसे कम्पनी के अपने देश अमरीका में प्रतिबन्धित किया गया है, उसे बेचने की अनुमति भी कम्पनी ने इसी दौरान प्राप्त की। जब मामला सामने आया तो भारत सरकार ने सी.बी.आई. से इस घटना की जाँच कराने का फैसला करके फिलहाल डोव केमिकल्स को जमानत दे दी। जिस अपराध को खुद कम्पनी ने कबूल किया और जिसके लिए अमरीका में उस पर जुर्माना लगाया गया हो, उसकी जाँच कराने का क्या मतलब है, यह कोई भी समझ सकता है।

डोव केमिकल्स ने किसे कितनी घूस दी

कीटनाशक की रजिस्ट्री	15,88,000रु.
विभिन्न राज्यों के कृषि निरीक्षक	34,96,000 रु.
सरकारी अधिकारीगण	7,60,000 रु.
बिक्री कर अधिकारीगण	4,72,000 रु.
एक्साइज और कस्टम	2,88,000 रु.
उपहार, मनोरंजन इत्यादि	14,80,000 रु

डोव केमिकल की बदमिजाजी का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उसने कभी भी हर्जाने की शर्तों को पूर्ण रूप से लागू नहीं किया।

यूनियन कार्बाइड भोपाल हादसे के समय संयन्त्र की मालिक थी। उसकी लापरवाही की चलते दुनिया का भीषणतम् हादसा हुआ जिसके लिए कम्पनी आज भी आपराधिक रूप से जिम्मेदार है, दुर्घटना स्थल से मलबे की सफाई करने और मर्करी, लैड व दूसरे कैंसर फैलाने वाले रसायनों को हटाने की जवाबदेही भी उसी कम्पनी की है। लेकिन डोव केमिकल्स द्वारा उस कम्पनी को खरीद लिये जाने के बाद अब यह सारा उत्तरदायित्व डोव केमिकल्स पर आ गया है। इस काम के लिए रसायन और उर्वरक विभाग ने डोव केमिकल्स पर 100 करोड़ रुपये का दावा किया है जिसे अदा करने से यह कम्पनी मना कर रही है।

कम्पनी को बचाने के लिए रतन टाटा के रूप में एक दयालु और सदाशयी सहयोगी कम्पनी को मिल गया है। रतन टाटा ये चाहते हैं कि डोव केमिकल्स से उसके द्वारा खरीदी गयी कम्पनी की प्राणघातक कारगुजारियों के बदले में जो हर्जाना माँगा गया है, उसे सरकार और उद्योग जगत के अन्य लोगों के सहयोग से एक कोष बनाकर खुद ही चुका दिया जाय ताकि डोव केमिकल्स भारत में पूँजी निवेश कर सके।

डोव कम्पनी शुरू से ही यह प्रयास कर रही है कि औद्योगिक दुर्घटना को लेकर चल रहे कानूनी विवादों से उसे मुक्ति दिलाने के लिए बीच का रास्ता निकाला जाये। अमरीकी दूतावास ने भारत सरकार से कहा था कि वो डोव केमिकल्स पर लगाया गया हर्जाना वापस ले ले। मन्त्रालय का मानना है कि डोव केमिकल्स को कारपोरेट और कानूनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जा सकता। अगर सरकार ऐसा करती है तो इससे एक गलत परम्परा स्थापित होगी और भविष्य में किसी दुर्घटना की स्थिति में सम्बन्धित कम्पनी के खिलाफ कार्रवाई करने का कोई आधार नहीं रह जायेगा।

इसमें कुछ भी गलत या अनुचित नहीं कि उर्वरक मन्त्रालय डोव केमिकल्स को इस कानूनी जवाबदेही से मुक्त किये जाने की हर कोशिश का विरोध कर रहा है। फिर रतन टाटा निवेश आयोग के अध्यक्ष के नाते डोव केमिकल्स के नाम पर उद्योग जगत से 100 करोड़ रुपये का चन्दा जुटाने की अपील क्यों कर रहे हैं? दरअसल, यह कम्पनी काफी लम्बे समय से भारत के फलते-फूलते बाजार पर नजरें गड़ाये बैठी है।

अपना पैर जमाने के लिए उसने बार-बार इण्डियन ऑयल और सार्वजनिक क्षेत्र की अन्य कम्पनियों के साथ तकनीकी समझौते का प्रयास किया। लेकिन भारी विरोध को देखते हुए पेट्रोलियम मन्त्रालय ने इसके प्रयासों को रोक रखा है। अब यह कम्पनी रिलायंस इण्डस्ट्रीज के सहयोग से पश्चिम बंगाल में और उस मध्य प्रदेश में भी संयन्त्र लगाने की योजना बना रही है, जहाँ इसकी पूर्ववर्ती कम्पनी ने कहर ढाया था।

भारत और अमरीका के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों के मंच के उपसभापति के तौर पर टाटा का डोव के प्रति झुकाव सहज ही समझ में आने वाला है क्योंकि डोव केमिकल्स का अध्यक्ष लिवेरिन्स भी उसी मंच का सम्मानित सदस्य है। एण्ड्रयू लिवेरिन्स रतन टाटा के सौजन्य से प्रधानमन्त्री

मनमोहन सिंह के साथ दो बार मुलाकात कर चुका है। भारत और अमरीका के राजनीतिज्ञों, पूँजीपतियों और ऊँची पहुँच वालों के साथ डोव केमिकल्स के गहरे रिश्ते हैं। काँग्रेस के प्रवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी डोव केमिकल्स के वकील हैं। भोपाल दुर्घटना स्थल को साफ करने के लिए भारत और अमरीका की कम्पनियों के सहयोग से पैसा जुटाने के प्रस्ताव को स्वीकृति देने के लिए सत्तारूढ़ संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन के प्रभावशाली नेता पैरवी करने में जुटे हुए हैं। डोव केमिकल्स टाटा ग्रुप, भूतपूर्व अमरीकी अधिकारियों, यहाँ के बड़े अधिवक्ताओं और राजनेताओं के मध्य एक गठजोड़ बना हुआ है। यूनियन कार्बाइड के एक जमाने में अध्यक्ष और भोपाल गैस काण्ड के मुजरिम केशुभाई महिन्द्रा ने टाटा की कई कम्पनियों में निदेशक का कार्य किया है। अमरीकी सरकार का एक भूतपूर्व अधिकारी डेविड गुड्स जिसने यूनियन कार्बाइड के अध्यक्ष एण्डरसन को भारत सरकार के हवाले किये जाने का विरोध करके उसे बचाया था, वही आज टाटा के अमरीका स्थित निगम कार्यालय का संचालन करता है।

रतन टाटा की इस नयी भूमिका ने भारतीय उद्योग जगत के संगठनों की बदलती नीयत पर कई सवाल उठाये हैं। वर्तमान साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय उद्योगपतियों की मंशा दिनोंदिन निकृष्ट और विकृत रूप धारण करती जा रही है। डोव को उसकी जवाबदेही से मुक्ति देना पहले से ही अन्याय की मार झेल रहे भोपाल गैस पीड़ितों के जख्मों पर नमक रगड़ने के समान है। लेकिन इस सबके बावजूद डोव केमिकल्स इस बात पर जोर डालती है कि कार्बाइड का उत्तराधिकारी होने के बावजूद वह कानूनी रूप से उत्तरदायी नहीं है, यानि वह हर्जाने का एक पैसा भी नहीं भरेगी। यह दावा इस सिद्धान्त की कि ''जो प्रदूषण करेगा वही उसकी भरपाई करेगा'' खिल्ली उड़ाता है। यह सिद्धान्त अमरीका सहित पूरी दुनिया में मान्य है। डोव केमिकल्स बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की निरंकुश, नृंशस और लुटेरे चरित्र की जीती जागती मिसाल है। इन मामलों में भारतीय सरमायादार भी उनसे पीछे नहीं हैं। ▣

डोव केमिकल्स के जानलेवा कारनामे

डोव केमिकल्स के दुनियाभर में किये जाने वाले कारनामों की एक लम्बी फेहरिस्त है। यह कम्पनी ऐजेण्ट ओरेन्ज, एसबेस्टस, डायोक्सिन, डर्सबैन, डी.डी.टी., नामगॉन और नापाम जैसे घातक रसायन बनाती है जो पेड़-पौधों, पशु-पक्षी, हवा-पानी मनुष्य और पर्यावरण के लिए विनाशकारी हैं।

1. डोव द्वारा निर्मित ऐजेण्ट ओरेन्ज रसायन का प्रयोग अमरीकी सेना ने वियतनाम युद्ध के दौरान वहाँ की खड़ी फसलों और जंगलों को बर्बाद करने के लिए किया था। जहरीले रसायन ऐजेण्ट ओरेन्ज के साथ-साथ उसमें चोरी-छिपे एक और जहरीला रसायन डायोक्सिन भी मिलाया गया था। आज वियतनाम की जनता युद्ध में हताहत लोगों से कहीं अधिक भयावह त्रासदी झेल रही है। वातावरण में घुल रहा जहर पीढ़ी दर पीढ़ी उनके खून में घुल रहा है जिसके चलते वहाँ गॉल ब्लाडर, किडनी, पेंक्रियास, हृदय और अन्य अंगों में कैंसर जैसी बीमारियाँ होना, बच्चों में विकलांगता पैदा होना आम बात है।

2. खुद अपने ही देश अमरीका के मिण्डलैण्ड शहर के आसपास जहाँ डोव केमिकल्स का मुख्यालय है, इसने चारों ओर जहर फैला दिया है जिसका असर डोव की फैक्ट्री के आसपास 32 किलोमीटर दूर तक है। कम्पनी को प्रदूषण रोकने के लिए कम से कम 30 करोड़ डालर खर्च करना जरूरी है जबकि उसने इस मद में सिर्फ 5.4 करोड़ डालर खर्च करने का फैसला किया है।

3. गरीब देशों में बिक्री करते हुए कम्पनी ने उस रसायन के सम्भावित खतरों और इस्तेमाल में सावधानी बरतने के बारे में कोई लेबुल नहीं लगाया था। नतीजा यह कि निकारागुआ में 22,000 केला बागान मजदूर गर्भपात, लीवर की खराबी, कैंसर और घातक रोगों से पीड़ित हुए। कोस्टारिका के 25% मजदूर नपुंसकता का शिकार हुए।

4. कोस्टारिका, पनामा, इक्वाडोर, ग्वाटेमाला, फिलीपीन्स और होण्डुरास के जहर प्रभावित लोगों ने कम्पनी पर मुकदमे किये हैं। कम्पनी इन मुकदमों से बचने के लिए बुश प्रशासन से मिलकर साजिश कर रही है कि वह लातिन अमरीकी देशों के शासकों पर दबाव बनाये और उन देशों के कानून में फेर-बदल करके ऐसे किसी हर्जाने की व्यवस्था ही समाप्त कर दे।

5. अमरीकियों ने वियतनाम में जिस त्रासद नापाम का इस्तेमाल वहाँ की जनता को जिन्दा जलाने के लिए किया था, उसकी खोज डोव कैमिकल्स ने ही की थी।

6. डोव केमिकल्स के अपने दस्तावेज बताते हैं कि इसने विनाइल क्लोराइड नामक जहरीले रसायन के बारे में 1960 में षड्यन्त्र किया। विभिन्न जानवरों पर किये गये प्रयोगों के घातक परिणाम सामने आये। इसके मजदूरों की दो पीढ़ियाँ लीवर, मस्तिष्क, फेफड़ों और खून के कैंसर का शिकार हुईं। अपने ही कर्मचारियों और सरकार से इसने छल-कपट किया। डोव कम्पनी का नारा है। ''भेद को खुलने ना दो और जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ लो।''

राजनीति में पूँजीपतियों का सीधा दखल

■ प्रवीण

चोटी के पूँजीपतियों का संसद की तरफ बढ़ता झुकाव उस समय काफी वाद-विवाद का विषय बन गया था, जब साल भर पहले (अगस्त 2006) दिल्ली की सीमा से लगे गाजियाबाद के बझेड़ा खुर्द गाँव (दादरी के निकट)में पूर्व प्रधानमन्त्री वी.पी. सिंह और मुलायम सिंह यादव की सरकार के बीच शक्ति परीक्षण का नाटक हुआ था। इसका अन्त, चप्पे-चप्पे पर बिछी पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों के जाल और प्रशासन की चौकसी को चकमा देते हुए वी.पी. सिंह के बझेड़ा खुर्द पहुँचने और वहाँ जमीन पर हल चलाने के साथ हुआ।

नाटक ही सही, लेकिन इस घटना ने इस बात को तो चर्चा के केन्द्र में ला ही दिया कि किस तरह पूँजीपति और राजनेता आपस में साँठ-गाँठ करके अपने स्वार्थों की पूर्ति कर रहे हैं।

अनिल अम्बानी की रिलायंस ऐनर्जी जेनरेशन लिमिटेड द्वारा दादरी के निकट बिजली परियोजना को जब सरकार ने मंजूरी दी थी, उस समय अनिल अम्बानी राज्य सभा के सदस्य थे और उन्हें वहाँ पहुँचाया था मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी ने। अम्बानी ग्रुप के लिए जिस ढंग से जमीन छीनी गयी और दमन-उत्पीड़न का जो नंगा नाच किया गया, वह मुलायम सरकार और उस बड़े औद्योगिक समूह के बीच के अपवित्र गठबन्धन की जीती-जागती मिसाल है। एक तरफ जहाँ जमीन छीनी गयी, वहीं दूसरी ओर सरकार ने जमीन की कीमत की 60 फीसदी रकम सरकारी खजाने से चुकायी।

यह सही है कि दादरी की घटना ने वर्तमान राजनीति पर उद्योगपतियों के प्रभाव की ओर लोगों का ध्यान खींचा है। लेकिन इससे पहले भी बड़े सरमायादारों के अन्दर संसद में प्रवेश करने की तीव्र लालसा मौजूद थी। ऐसे कई मौके सामने आये जब इन दिग्गजों ने अपनी राजनीतिक हैसियत को अपने निजी हितों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया। संसद में पैठ बनाने वालों में से राहुल बजाज को राज्यसभा में दो परस्पर विरोधी राजनीतिक पार्टियों – शिव सेना और राष्ट्रीय काँग्रेस पार्टी ने एक साथ मिलकर भेजा है। बी.पी.एल. समूह के राजीव चन्द्रशेखर को कर्नाटक में सत्तारूढ़ जनता दल (एस) और भारतीय जनता पार्टी के गठजोड़ ने राज्यसभा में पहुँचाया है। अन्य बड़े नामों में किंगफिशर एयरलाइन्स के मालिक और शराब व्यापारी विजय माल्या हैं, जो कर्नाटक से राज्यसभा के लिए चुने गये और अब वे सुब्रहमण्यम स्वामी के नेतृत्व वाली जनता पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष बन गये हैं। उद्योगपति राजकुमार गोयनका और राजकुमार धूत (शिवसेना), होटल मालिक ललित सूरी और मीडिया के महंथ विजय दरदा के नाम भी इसी श्रृंखला में आते हैं। सांसद नवीन जिन्दल काँग्रेस के टिकट पर लोकसभा चुनाव जीत कर संसद में पहुँचे हैं। ये तो कुछ बड़े नाम हैं छुटभैये सरमायादारों की फेहरिस्त लम्बी है।

एक सांसद के तौर पर ये सभी बड़े दिग्गज संसद की महत्वपूर्ण समितियों के सदस्य हैं। इन सांसदों के ऐसी समितियों में काम करने से पैदा होने वाले निजी और सार्वजनिक हितों के टकराव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। विजय माल्या उद्योग के लिए स्थायी समिति के आमन्त्रित सदस्य हैं। विजय दारदा संचार, सूचना प्रौद्योगिकी और सूचना और प्रसारण मन्त्रालय की स्थायी समिति के सदस्य हैं, जबकि राजकुमार धूत वित्त मन्त्रालय की सलाहकार समिति के सदस्य होने के साथ-साथ पेट्रोलियम और गैस मन्त्रालय की समिति के सदस्य हैं।

राजनीति में सरमायादारों की सीधी हिस्सेदारी कोई नयी बात नहीं है। आजादी के संघर्ष के समय से ही सरमायादारों का राजनीति से गहरा सम्बन्ध रहा है। जमनालाल

बजाज लगभग डेढ़ दशक तक (1942 में अपनी मृत्यु तक) इण्डियन नेशनल काँग्रेस के कोषाध्यक्ष रहे। जी.डी. बिड़ला और के.के. बिड़ला की दोनों पीढ़ियों का काँग्रेस से सम्बन्ध सर्वज्ञात है।

पहले भी राजनीति के जरिए ये अपना हित साधते थे। लेकिन उस दौर की विशेष स्थिति में उन्हें खुलकर खेलने की उतनी इजाजत नहीं थी जितनी आज है। आज के सरमायादार चाहे संसद में रहें या बाहर, उन्हें अपने संकीर्ण स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं सूझता। बिड़ला-अम्बानी कमेटी ने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी जो रिपोर्ट दी थी, वह इसी बात का प्रमाण है। इस रिपोर्ट में बेहयाई के साथ शिक्षा को मुनाफे का जरिया बनाने की वकालत की गयी थी और फीसों में बेतहाशा वृद्धि करके गरीबों को शिक्षा से वंचित करने का रास्ता साफ कर दिया गया था। ताज्जुब की बात यह है कि पूँजीपतियों का राजनीति में दखल लोगों को स्वीकार होता जा रहा है। क्यों? आपसी कलह और सिर-फुटौवल के चलते नेताओं का भ्रष्टाचार और उनकी गन्दी छवि एक-एक कर सामने आ रही है। इसके बरक्स मीडिया पूँजीपतियों के कुकर्मों पर पर्दा डालता है, उनके बारे में जनता में भ्रम बनाये रखता है और उनकी शरीफ तस्वीर पेश करता है। निस्संदेह नेताओं का भ्रष्टाचार में लिप्त रहना बुरी चीज है। लेकिन पूँजीपतियों का तो अस्तित्व ही भ्रष्टाचार पर टिका होता है। मुनाफा और लूट को कायम रखने के लिए आपराधिक कारगुजारियाँ कहाँ का शिष्टाचार हैं? लेकिन भ्रष्टाचार का नंगा और घिनौना रूप मीडिया के जरिये सबको दिखायी देता है जबकि वही मीडिया मुनाफाखोरी की नृशंसता पर पर्दा डालता है, उस पर जुबान नहीं खोलता। यही कारण है कि ढेर सारे भोले-भाले लोग भ्रष्ट नेताओं की जगह पूँजीपतियों की राजनीति में सीधी भागीदारी को बेहतर ही मानते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों उनका खुला खेल सामने आता जा रहा है, लोग अब अपने अनुभव से उनके चरित्र को समझने लगे हैं।

आम जनता अनुमान लगा सकती है कि आज नग्न पूँजीवाद और बेलगाम मुनाफाखोरी के दौर में, जब नैतिकता और आदर्श राजनीतिक पटल से एक-एक करके विलुप्त हो रहे हैं, तो ऐसे में राजनीति पर पूँजीपतियों के बढ़ते प्रभाव से कैसी व्यवस्था का निर्माण होगा? जाहिर है कि जब ये उद्योगपति खुद इन नीतियों का निर्माण करेंगे तो इनके स्वार्थों की बलिवेदी पर जनता को ही कुर्बान किया जायेगा। इसके उदाहरण आये दिन देखने को मिल रहे हैं। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र को लूट और मुनाफे का जरिया बनाने की पूँजीपतियों की सिफारिशें – चाहे शिक्षा, चिकित्सा हो या पीने के पानी की व्यवस्था, लोगों का जीना दूभर कर रही हैं। खुदरा व्यापार और खेती जैसी जीविका पर भी इनकी गिद्ध दृष्टि लगी हुई है।

यह भी सही है कि पूँजीवादी सरकारें पूँजीपतियों की प्रबन्धकारी समिति होती हैं, लेकिन साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ बेलगाम और बेतहाशा मुनाफा कमाना ही समाज की एक मात्र चालक शक्ति है, वे पूँजीपतियों का सीधे राजनीति में प्रवेश करने और खलेआम उसे अपने अनुकूल ढालने के लिए प्रेरित भी करतीं है। यह उनके घनीभूत संकट और उससे पैदा होने वाली बदहवासी की अभिव्यक्ति है। अमरीका से लेकर भारत तक यही देखने को मिल रहा है। अमरीका में बुश के इर्द-गिर्द जमा हुए तेल कम्पनियों से जुड़े लोगों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए इराक में जो कहर बरपा किया और ईरान को झुकाने के लिए जैसी पैंतरेबाजी कर रहे हैं, वह शासक वर्ग के राजनीतिक नुमाइन्दों और खुद शासक वर्ग के शीर्षस्थ लोगों के बीच की दूरी मिटने का ही परिणाम है। यह सर्वविदित है कि कोई भी वर्ग अपने तात्कालिक और संकीर्ण हितों को देखता है। वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधि उसके तात्कालिक और दूरगामी हितों के बीच तालमेल बिठा कर चलता है और उस वर्ग को दीर्घजीवी बनाने का प्रयास करता है। प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने पिछले दिनों पूँजीपतियों को जो धर्मोपदेश दिये थे और जिसपर उनमें काफी खलबली मची थी, उस घटना के जरिये भी इस सम्बन्ध को समझा जा सकता है। प्रधानमन्त्री का मकसद उन्हें यह बताना था कि अगर इसी तरह बेहिसाब मुनाफाखोरी करोगे तो जल्दी ही नाश की घड़ी आ जायेगी।

प्रधानमन्त्री की नीयत चाहे जो रही हो, लेकिन उनकी बात में सच्चाई का अंश था। इस लिहाज से देखें तो राजनीति में पूँजीपतियों की बढ़ती घुसपैठ और उसपर नियन्त्रण जमाने का प्रयास खुद उनके लिए ही घातक साबित होगा क्योंकि उनकी हर कार्रवाई उन्हें बेपर्दा करेगी और उनके विनाश का रास्ता तैयार करेगी। ▣

जान को माल बनाने पर आमादा क्लीनिकल परीक्षण

■ नवनीत

बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने अपनी नयी-नयी दवाओं के क्लीनिकल परीक्षण के लिए पूरे भारत में जो रेल-पेल मचायी है, उसे भारत के आर्थिक विकास के लिए शुभ संकेत बताया जा रहा है। क्लीनिकल परीक्षण की इस सच्चाई का परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

पश्चिमी देशों की परिस्थितियाँ

अमरीका व यूरोपीय संघ के देशों में क्लीनिकल परीक्षण के नियम व शर्तें बहुत कठोर हैं और जनता की जागरूकता के चलते उन्हें कड़ाई से लागू किया जाता है। उदाहरण के लिए, दिसम्बर 2006 में दुनिया की सबसे बड़ी दवा कम्पनी फाइजर को खून में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम करने वाली 'टारसीटैपिब' नामक दवा का परीक्षण बन्द करना पड़ा, जबकि उस कम्पनी ने परीक्षण में करोड़ों डालर खर्च कर दिये थे। परीक्षण बन्द करने की मुख्य वजह दवाओं के प्रभाव से मरीजों में मृत्यु दर का बढ़ना था।

इसी तरह ब्रिस्टॉल-मेयर्स कम्पनी को डायबिटीज की दवा का, एस्ट्राजैनिका नामक कम्पनी को पक्षाघात की दवा का तथा ग्लैक्सो स्मिथक्लीन को भी उदासीरोधी दवा 'सिरोक्सेट' के परीक्षण को बन्द करना पड़ा।

क्लीनिकल परीक्षण के चलते मरीजों की मृत्यु दर का बढ़ना, हाथों पैरों की हड्डी का फ्रैक्चर तथा दिल का दौरा पड़ने के अन्य मामले भी प्रकाश में आये। इन दुष्परिणामों के मद्देनजर अमरीका में नयी दवा के परीक्षण की अनुमति देने वाली संस्था – 'फूड एण्ड ड्रग ऐजेन्सी' ने 2005 में कुल 20 परीक्षणों की ही अनुमति दी, जबकि 2004 में उसने 36 परीक्षणों को अनुमति दी थी।

पश्चिमी देशों में जागरूकता के चलते लोग क्लीनिकल परीक्षण में बहुत कम हिस्सेदारी करते हैं, या जान जोखिम में डालने के बदले हर्जाने में ज्यादा पैसों की माँग करते हैं। इन सभी कारणों के चलते पश्चिमी देशों में क्लीनिकल परीक्षण की दुकानें बन्द होने लगी हैं।

भारतीय परिस्थितियाँ

दुनिया में सबसे ज्यादा बीमार लोग भारत में मौजूद हैं, जो अशिक्षित हैं, अभावग्रस्त हैं और अपने अधिकारों के प्रति बहुत सचेत नहीं हैं। साथ ही यहाँ जनता के पैसों से स्थापित मेडिकल कालेजों और रिसर्च सेण्टरों से डॉक्टर वैज्ञानिक और विभिन्न प्रकार के कामों के लिए प्रशिक्षित लोग तैयार हुए हैं। सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की दुर्दशा और सरकार की उपेक्षा के चलते बड़ी संख्या में ऐसे लोग बेरोजगार हैं। इसलिए पश्चिमी देशों की तुलना में कम कीमत देकर इनका ज्यादा इस्तेमाल किया जा सकता है। ये सभी कारण मुनाफाखोर दवा कम्पनियों को खूब आकर्षित करते हैं।

लगाम कसने की आधी-अधूरी कोशिशें

हाल ही में सरकार ने क्लीनिकल परीक्षण के ऑन-लाइन (इण्टरनेट पर) पंजीकरण की व्यवस्था की है। इससे यह तो पता चल जायेगा कि कहाँ, किस दवा का परीक्षण चल रहा है, लेकिन उसके नतीजों की विश्वसनीयता फिर भी संदिग्ध रहेगी। 'द ब्रिटिश मेडिकल जर्नल' ने खुलासा किया कि क्लीनिकल परीक्षण के मामलों में सबसे बुरी बात यह है कि नकारात्मक नतीजों को दबाकर और सकारात्मक नतीजों को काफी बढ़ा-चढ़ा कर, नुकसानों को छुपा कर और फायदों की चर्चा करके, आधे-अधूरे तथ्यों और आँकड़ों के आधार पर फैसले लिये जाते हैं जो अन्ततः मरीजों के लिए हानिकारक साबित होते हैं।'' पंजीकरण इस बीमारी का इलाज नहीं है।

अभी दो वर्ष पहले ही मेडिकल जर्नल के सम्पादकों की अन्तरराष्ट्रीय कमेटी ने क्लीनिकल परीक्षण के पंजीकरण को अनिवार्य बनाया। चूँकि इन जर्नलों में नयी दवाओं का

विवरण छपवाना किसी भी दवा कम्पनी के लिए काफी लाभदायक होता है, क्योंकि इसी के जरिये उनकी खबर पूरी दुनिया में फैलती है। इसलिए दवा कम्पनियों ने क्लीनिकल परीक्षण का पंजीकरण तो करवाना शुरू कर दिया, लेकिन अभी भी इस बात की भरपूर गुंजाइश है कि वे अपनी नयी दवाओं का पूरी तरह गुण-दोष विवेचन किये बिना ही उन्हें बाजार में उतार दें। क्लीनिकल परीक्षण के दौरान वे नैतिकता और नियम-कानून का पालन करते हैं या नहीं, इसके लिए कोई प्रभावशाली और सशक्त संस्था नहीं है। ये बात और है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए कोई कानून नहीं जिसे वे रौंद न सकें, कोई संस्था नहीं जिसे अपनी जेब में लेकर न घूम सकें। क्लीनिकल परीक्षण नृशंस और हृदयहीन पूँजीवादी सभ्यता का ही एक जीवन्त उदाहरण है, जहाँ मुनाफे की हवस में लाखों लोगों की जान ले लेना कोई बड़ी बात नहीं।

भारत में नीति, नियम और नैतिकता की घोर अवहेलना

हैदराबाद में शान्या बायोटेक ने मरीजों से बिना पूर्व अनुमति लिये ही उनपर दवा का परीक्षण किया तथा बंगलौर की बायोकॉन ने बिना सरकारी अनुमति लिये ही दवा का परीक्षण शुरू कर दिया जिसके परिणामस्वरूप आठ मरीजों की मौत हो गई। इसी प्रकार केरल, बंगाल व अन्य राज्यों में भी बिना सरकारी अनुमति के परीक्षण किये जाते रहे हैं। ये सभी परीक्षण अनैतिक होने के साथ-साथ गैरकानूनी भी हैं।

हमारे देश की सरकार हमारी जान विदेशियों को बेच रही है, वह भी कौड़ियों के मोल, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मरीजों की बीमारी बढ़ने पर, अपाहिज होने पर या मृत्यु होने पर कोई मुआवजा भारत में नहीं देतीं, जबकि पश्चिमी देशों में देतीं हैं। इसके उलट ये कम्पनियाँ भारत सरकार से पहले ही अपनी सुरक्षा और अपने मुनाफे की गारण्टी जरूर ले ले रही हैं। विदेशी पूँजी निवेश के लोभ में सरकार खुशी-खुशी यह काम कर रही है।

अब भारत में प्रथम चरण के क्लीनिकल परीक्षण की भी अनुमति दी जा रही है। प्रथम चरण के परीक्षण में दवा को लैब से निकालने के बाद सीधे मरीजों पर इस्तेमाल किया जाता है। जिसमें जान का खतरा सबसे ज्यादा है। पहले इसकी अनुमति भारत में नहीं थी। जानवरों पर परीक्षण के विरोध में धरती -आसमान एक करने वाले मानव परीक्षण पर खामोश क्यों हैं? क्या भारत की जनता की जान 'गिनी पिग' से भी सस्ती है? कहा जा रहा है कि आज भारत में क्लीनिकल परीक्षण का बाजार 7 करोड़ डालर का है, जो 2010 में बढ़कर 200 करोड़ डालर का हो जायेगा। बाजार का यह विस्तार कितने लोगों की जान लेगा इसकी परवाह किसी को भी नहीं है।

इस मुनाफे को देखकर हमारे शासक क्यों खुश हो रहे हैं? हमारे नौकरशाह इस खूनी कारोबार को तेजी से आगे बढ़ाने में इतनी तत्परता क्यों दिखा रहे हैं? इससे किस-किस की खुशहाली बढ़ेगी यह तो पता नहीं पर इतना तो तय ही है कि नयी तकनीक के लिए गरीब और लाचार आम जनता को ही बलि का बकरा बनाया जायेगा। उन्हें असाध्य बीमारी का शिकार बना कर, अपाहिज बनाकर और मौत के मुँह में धकेल कर ही यदि देश की विकासदर ऊँची उठानी है तो विकास के इस खूनी खेल को खत्म करने के बारे में सोचना ही पड़ेगा। ▣

जिसे नींद नहीं आती
वह लड़ाई के मैदान में
बचा हुआ आखिरी सिपाही है

* * *

एक जगा हुआ परेशान आदमी
गिड़गिड़ाता है
वह रहमत के फरिश्तों से
थोड़ी सी मोहलत माँगता है
कोई नहीं आता
किसके हवाले करे वह
इस मनहूस दुनिया के
ताले-चाबी?

-विजय कुमार,
'अनिद्रा' से

''मुझे देश की आजादी और भाषा की आजादी में से किसी एक को चुनना पड़े, तो मैं निःसंकोच भाषा की आजादी को पहले चुनूँगा, क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है, लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता।''

-गणेश शंकर विद्यार्थी

11वीं पंचवर्षीय योजना का मसौदा दस्तावेज

स्कूली शिक्षा मुनाफाखोरों के हवाले

■ जितेन्द्र

योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना का मसौदा दस्तावेज विचार-विमर्श के लिए पेश किया है। यह दस्तावेज भाजपा गठबन्धन के शासन काल में शुरू की गयी 10वीं पंचवर्षीय योजना से ही मिलता-जुलता है। इसमें कुछ भी 'प्रगतिशील' या नया नहीं है फिर भी इस सरकार के जनविरोधी चरित्र को समझने के लिए इसपर एक सरसरी निगाह डालना जरूरी है।

इस मसौदा दस्तावेज में गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले लोगों की संख्या को कम करके दिखाने के लिए काफी जोड़-तोड़ किया गया है। सच पूछें तो भारत में गरीबी रेखा का जो पैमाना है, वह संयोगवश जिन्दा बच गये या मर नहीं पाये लोगों की रेखा है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जो न्यूनतम आमदनी सरकार ने तय की है (425 रुपये), उतने में आदमी बस किसी तरह जिन्दा रह सकता है। यदि गरीबी रेखा की गणना सरकार द्वारा स्वीकृत पोषण के पैमाने (न्यूनतम 2400 कैलोरी) के आधार पर की जाये तो भारत के 70 फीसदी लोग गरीबी रेखा से नीचे आयेंगे। लेकिन 'समावेशी विकास' की लफ्फाजी के सिवा इस दस्तावेज में इस भयावह गरीबी से जनता को बाहर निकालने का कोई ठोस उपाय नहीं है।

इस मसौदे में शिक्षा को एक उपकरण के रूप में देखा गया है। इस देश के योजनाकारों के अनुसार शिक्षा और स्वास्थ्य पर सरकार इसलिए पैसा खर्च करने को इच्छुक है क्योंकि लोग स्वस्थ और पढ़े-लिखे होंगे तो दूरगामी तौर पर इससे अर्थव्यवस्था में ऊँची विकास दर सुनिश्चित होगी। योजना आयोग की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि ज्ञान आधारित उद्योगों की जरूरत के लायक उच्च कौशल वाले लोगों की देश में कमी आ रही है। जाहिर है कि सरकार की नजर में शिक्षा लोगों का मौलिक अधिकार नहीं है, उनका सर्वांगीण विकास इसका उद्देश्य नहीं है और न ही यह सरकार का दायित्व है कि सबके लिए शिक्षा मुहैया करे। शिक्षा अब मुनाफा बढ़ाने वाले कुशल कारीगर तैयार करने के एक उपकरण के रूप में संकुचित कर दी गयी है।

यह मसौदा दस्तावेज शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान दुर्दशा और सरकार की लापरवाही की आधी-अधूरी तस्वीर पेश करता है। सरकार द्वारा लोगों की शिक्षा का बन्दोबस्त किये जाने को एक तरह से नकारते हुए इस दस्तावेज में शिक्षा के लिए सार्वजनिक वित्त पोषण की बात नहीं कही गयी है। मुख्य जोर शिक्षा क्षेत्र में सेवा प्रदान करने वाली संस्थाओं (निजी स्कूलों) को नियन्त्रित करने और उनको उत्तरदायी बनाने पर है। सरकार के अपने दायित्व की बात को नजरन्दाज कर दिया गया है।

दस्तावेज में कहा गया है कि दसवीं पंचवर्षीय योजना में 6 से 14 वर्ष के बच्चों का नामांकन शत-प्रतिशत हो जायेगा। लेकिन जमीनी सच्चाई कुछ और ही है। 2001 की जनगणना के अनुसार 17 प्रमुख राज्यों में से 11 राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता 52 फीसदी से कम है। इसमें केवल बीमारू राज्य (बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान) ही नहीं, बल्कि गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश जैसे तथाकथित विकसित राज्य भी शामिल हैं। देश के 170 से भी अधिक जिलों में ग्रामीण साक्षरता 40 फीसदी से कम है। केवल 16 जिले (केरल के 14 तथा तमिलनाडु और मिजोरम के एक-एक जिले) ही ऐसे हैं जहाँ साक्षरता दर 80 फीसदी से ज्यादा है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के मुताबिक 1999-2000 में 6 से 11 वर्ष की उम्र के 78 फीसदी बच्चे ही स्कूल जा रहे थे। आगे यह भी कहा गया है कि प्राथमिक स्तर पर केवल 52.2 फीसदी बच्चों का ही नामांकन हुआ जो काफी

कम है। योजना आयोग का मसौदा दस्तावेज खुद स्वीकार करता है कि देश भर में स्कूल छोड़ने की दर 31 फीसदी है। प्राथमिक विद्यालय में नामांकित बच्चों में से 10 फीसदी बच्चे ही 12वीं पास कर पाते हैं। अनुसूचित जाति की 80 फीसदी और अनुसूचित जनजाति की 90 फीसदी लड़कियाँ 10वीं तक भी नहीं पढ़ पाती हैं। इन तथ्यों की रोशनी में भला कौन इस बात पर यकीन करेगा कि शत-प्रतिशत बच्चे स्कूल जाने लगे हैं।

योजना आयोग के इस दस्तावेज में शिक्षा की इस शर्मनाक स्थिति के प्रति एक सन्तुष्टि का भाव तो है ही, इस बीमारी के कारण और समाधान की बात करते हुए दस्तावेज में केवल शिक्षकों की गुणवत्ता में कमी, उनकी लापरवाही और उनमें प्रेरणा की कमी को चिह्नित किया गया है। इसके लिए पंचायतों और स्थानीय निकायों की भूमिका बढ़ाने की औपचारिक चर्चा के बाद दस्तावेज में जो समाधान पेश किया गया है वह पूरी तरह बकवास है। समाधान यह है कि अभिभावक अपने बच्चों के लिए निजी या सरकारी स्कूलों में से जो बेहतर हो उसे चुनने के लिए आजाद हैं। इससे दोनों तरह के स्कूलों में आपसी प्रतियोगिता बढ़ेगी और स्कूलों का स्तर सुधर जायेगा। इस तरह दस्तावेज में दोहरी शिक्षा और शिक्षा के निजीकरण की बेहयाई के साथ वकालत की गयी है। कोठारी आयोग ने सबके लिए एक समान स्कूली शिक्षा और निकटतम दूरी पर स्कूल की व्यवस्था की सिफारिश की थी। पहले यहाँ के शासक कम से कम उसे सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार करते थे और इसे पूरा न करने के लिए बहानेबाजी किया करते थे। लेकिन आज अमीरों की खुलेआम हिमायत करने वाले शासकों ने उस सिफारिश को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया।

सरकार द्वारा पूरे देश में माध्यमिक शिक्षा की घोर उपेक्षा और निजी स्कूलों के फैलते कारोबार को यह दस्तावेज स्वीकृति प्रदान करता है। एक तरफ जहाँ गरीबों के बच्चे शिक्षा के निजीकरण के चलते स्कूलों से बाहर खदेड़ दिये गये हैं, वहीं इन निजी स्कूलों पर सरकार का कोई नियन्त्रण न होने के चलते वहाँ कुव्यवस्था और कुशिक्षा का राज कायम हो गया है। जिन मानदण्डों पर पहले स्कूलों को सरकारी मान्यता और सहायता दी जाती थी उन्हें लागू किया जायेगा, तो अधिकांश निजी शिक्षा की दुकानें बन्द हो जायेंगी। जाहिर है कि इस सरकारी उपेक्षा के चलते माध्यमिक शिक्षा का कोई स्तर नहीं रह गया है। लेकिन हमारे योजनाकारों को इससे कोई लेना-देना नहीं है। इस सम्बन्ध में सुनिश्चित नीति या ठोस योजना तैयार करने के बजाय दस्तावेज में निजी और सरकारी स्कूलों के बीच प्रतियोगिता बढ़ाने की लफ्फाजी की गयी है।

दस्तावेज में एक तरफ जहाँ 11वीं पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा को केन्द्रीय महत्व देने जैसी बकवास है, वहीं यह घोषणा भी की गयी है कि प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा का क्षेत्र निजी व्यवसाय और मुनाफे के लिए पूरी तरह खुला है। कुल मिलाकर यह दस्तावेज सरकार की उद्धतता का नमूना है, जो शिक्षा को गरीबों से छीन लेने, किसी तरह फीस चुकाकर निजी स्कूलों तक पहुँचने वाले छात्रों को घटिया शिक्षा लेने पर मजबूर करने और शिक्षा को मुनाफाखोरों के हवाले करने पर उतारू है। अब तो उसे किसी की आलोचना या विरोध की भी परवाह नहीं रह गयी है।

नई शिक्षा नीति 1986 से लेकर आज तक शिक्षा से सम्बन्धित जो भी नीतिगत फैसले सरकार ने किये हैं, उन सबका मकसद इस देश की बहुसंख्यक मेहनतकश जनता की सन्तानों को अशिक्षित या कुशिक्षित बनाना रहा है, जो इस सरकार की पक्षधरता को पूरी तरह साफ कर देता है। ''अमीरों के लिए, अमीरों के द्वारा, अमीरों की'' इस सरकार को 90 करोड़ मेहनतकश जनता की कोई परवाह नहीं है और फिलहाल उनसे सरकार को कोई चुनौती भी नहीं मिल रही है। तभी तो वह एक के बाद एक मनमाने कदम उठाती जा रही है।

स्वार्थ समान रूप से
टकराता है
तो हर युग में
एकलव्य से और कुछ नहीं
सिर्फ अंगूठा माँगा जाता है।

-देवेन्द्र कुमार

आर्थिक हत्यारे

■ विक्रम

अमरीकी शासक अपनी साम्राज्यवादी लूट को निर्बाध रूप से जारी रखने के लिए पूरी दुनिया पर अधिकार कर लेना चाहते हैं। इसी मंसूबे को पूरा करने के लिए अमरीका ने कई देशों के खिलाफ युद्ध छेड़ने का जघन्य अपराध किया और लाखों की संख्या में लोगों का कत्लेआम किया। इन खुले कुकृत्यों के अलावा अमरीका ने पर्दे के पीछे भी कूटनीतिक चालों, राजनीतिक षड्यन्त्रों और अन्य कई तरह के घृणित अपराधों को अंजाम दिया जिनके बारे में लोग अभी भी अनजान हैं। ऐसे अपराधों का खुलासा एक भूतपूर्व आर्थिक हत्यारे (इकोनौमिक हिटमैन) जॉन परकिन्स ने अपनी पुस्तक ''एक आर्थिक हत्यारे की स्वीकारोक्ति'' में किया है। इसे अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा ऐजेन्सी ने 1968 में भर्ती किया था, जब वह स्कूल ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन (बोस्टन विश्वविद्यालय) में अन्तिम वर्ष का छात्र था। तीन साल तक वह दक्षिण अमरीकी शान्ति दल में तैनात रहा। वहाँ से उसे एक अन्तरराष्ट्रीय परामर्शदाता कम्पनी में निदेशक के पद पर लगा दिया गया, जहाँ उसका काम गरीब देशों को विश्व बैंक मुद्राकोष से कर्ज लेने और उस पैसे से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को निर्माण कार्यों का ठेका देने के लिए छल-बल से तैयार करना था। 1981 में उसने आर्थिक हत्यारे के पेशे से इस्तीफा दे दिया था।

कौन हैं ये आर्थिक हत्यारे?

अपने घृणित मंसूबों को पूरा करने के लिए अमरीकी साम्राज्यवादी कुछ व्यक्तियों को बहुत ही गुप्त मिशन के लिए नियुक्त करते हैं। ऐसे लोग आर्थिक तौर से पिछड़े देशों, खास कर लातिन अमरीकी देशों में जाकर वहाँ के नेतृत्व से मिलते हैं, और उन्हें आर्थिक प्रलोभन देकर अपने देश में अमरीकी साम्राज्यवादी नीति लागू करवाते हैं, ताकि वे उस गरीब देश की जनता को लूट सकें। इसके लिए वे साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति अपनाते हैं। जो राजनेता आर्थिक प्रलोभनों के आगे नहीं झुकते, उन्हें मौत की धमकी दी जाती है और जरूरत पड़ने पर सी.आई.ए. द्वारा हत्या भी करवा दी जाती है।

पिछले 30-40 सालों के दौरान अमरीका को दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश बनाने में इन आर्थिक हत्यारों की बड़ी भूमिका रही है। शुरू में ये अपना काम शान्तिपूर्ण तरीके से, जैसे पिछड़े देश के योजनाकार, राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री आदि को प्रलोभन देकर करते हैं। अन्तिम रूप में, कभी-कभी वे सेना के शीर्ष अधिकारियों का प्रयोग भी करते हैं। इसलिए ऐसे काम बेहद गोपनीय तरीके से करवाये जाते हैं। पुराने उपनिवेशवादी काल में अपनी लूट कायम रखने के लिए साम्राज्यवादियों द्वारा इससे भिन्न तरीके अपनाये जाते थे। तब सैनिक हमले और प्रत्यक्ष युद्ध के जरिये किसी देश पर कब्जा करके उस पर प्रत्यक्षत: गुलामी थोपी जाती थी। बाद में यह रास्ता बहुत कारगर नहीं रह गया। इसके अलावा अमरीका खुद ही ब्रिटेन का उपनिवेश रह चुका था, इसलिए किसी देश को उपनिवेश बनाना खुद अमरीकी जनता को भी स्वीकार्य नहीं होता जिसने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। इसलिए अमरीका ने नवौपनिवेशिक नीति के तहत साम्राज्यवादी लूट-खसोट के अप्रत्यक्ष तरीके आजमाये। लेकिन आज जनता की बढ़ती चेतना के साथ यह तरीका भी कारगर नहीं रहा। जनता अब समझने लगी है कि साम्राज्यवाद को चलाने वाले दैत्याकार निगमों (बड़ी कम्पनियों) ने दुनिया की मेहनतकश जनता को बहुत ही निर्ममता से लूटा है। जनता में अमरीकी साम्राज्यवाद के प्रति भारी आक्रोश है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अपने-अपने देशों में भारी बहुमत से लातिन अमरीकी जनता ने अमरीका विरोधी राष्ट्रपति चुने हैं। विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ.) का विश्वव्यापी विरोध, पानी, बिजली, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय निगमों को बेचे जाने के खिलाफ जुझारू आन्दोलन, और दुनिया के कोने-कोने में उठ रहे साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष भी जनता की बढ़ती चेतना को दिखाते हैं।

आर्थिक हत्यारे क्या करते हैं?

विश्व जनगण की इस बढ़ती साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को देखते हुए साम्राज्यवाद सीधे किसी देश को गुलाम बनाने की जगह अब ज्यादा शातिराना तरीके ईजाद करने लगा है। आर्थिक हत्यारे कई तरह के तौर-तरीके अपनाते हैं। इनमें सबसे सरल तरीका है, बड़े निगमों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों जैसे तेल, प्राकृतिक गैस आदि पर कब्जा करना। इसके लिए आर्थिक हत्यारे प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों वाले देशों को विकास के नाम पर विश्व बैंक या दूसरी साम्राज्यवादी संस्थाओं से ऋण उपलब्ध कराने के लिए साजिश रचते हैं। उपलब्ध कराये गये ऋण का बड़ा हिस्सा वापस अमरीकी निगमों की तिजोरी में चला जाता है क्योंकि इसी धन से बड़े निगमों, जैसे- बेकटेल, हैलीबर्टन, जनरल मोटर्स और जनरल इलेक्ट्रिक, ऋण लेने वाले देश में ढाँचागत उद्योग खड़ा करते हैं। इन उद्योगों में ऊर्जा संयन्त्र, बड़ी सड़कें, बन्दरगाह, औद्योगिक पार्क आदि शामिल हैं, जो केवल धनी व्यक्तियों की ही पहुँच में रहते हैं। गरीबों का उनसे कोई वास्ता नहीं होता। विकास के नाम पर आज हमारे भी देश में यही कुछ हो रहा है। नतीजा यह होता है कि गरीबों को हमेशा परेशानी झेलनी पड़ती है। स्थिति तब और भी भयावह होती है जब इन ऋणों को चुकाना पड़ता है। इसके लिए सरकार निजीकरण के नाम पर देश की सम्पत्ति विदेशी कम्पनियों को बेचना शुरू करती है। शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरे सामाजिक कार्यों में खर्च होने वाले धन में कटौती करके ब्याज चुकाये जाते हैं। इससे गरीबों के बीमार बच्चों का इलाज नहीं हो पाता, उनके बच्चे पढ़ाई से भी वंचित हो जाते हैं। इस तरह देश को एक अन्यायपूर्ण अन्धकार में छोड़ दिया जाता है। तब एक बार फिर ये आर्थिक हत्यारे उन देशों में जाते हैं और कहते हैं –''देखो तुम हमारे बड़े कर्जदार हो। तुम ये कर्ज अदा नहीं कर पाओगे इसलिए तुम्हें हमारी शर्तें माननी पड़ेंगी। अपने तेल और खनिज भण्डारों को सस्ते दामों में हमारी कम्पनियों को बेच दो। संयुक्त राष्ट्र संघ के चुनाव में अमरीका का समर्थन करो। इराक और अफगानिस्तान में हमारी सहायता के लिए अपनी सेना भेज दो।'' इसी तरीके से ये दुनिया की मेहनतकश जनता के दुश्मन – साम्राज्यवाद का विस्तार और सुदृढ़ीकरण करते हैं।

इनकी भर्ती कैसे और कौन करता है?

आर्थिक हत्यारों की भर्ती अमरीकी संस्था राष्ट्रीय सुरक्षा ऐजेन्सी (एन.एस.ए.) करती है। यह उच्च शिक्षित और बड़े निगमों में बड़ी नौकरी करने वालों को बड़े ही गोपनीय तरीके से चुनती है। व्यक्तित्व परीक्षण, झूठ परीक्षण आदि अनेक परीक्षाओं से गुजारकर पता लगाया जाता है कि वह व्यक्ति आर्थिक हत्यारा बनने के योग्य है या नहीं। यह संस्था उनकी कमजोरियों को भी नोट करती है ताकि समय पड़ने पर इन आर्थिक हत्यारों को अपने शिकंजे में रखा जा सके और गद्दारी करने पर उन्हें ब्लैकमेल किया जा सके।

सी.आई.ए. की तरह भाड़े के हत्यारों, सफेदपोश अपराधियों और 007 टाइप जासूसों की भर्ती करने के बजाय एन.एस.ए. इन आर्थिक हत्यारों की भर्ती करती है। इसके बाद उन्हें किसी निजी कम्पनी में नौकरी करने के लिए भेज दिया जाता है। ऐसे में यदि वे पकड़े भी जाते हैं तो इसका इल्जाम अमरीकी सरकार पर नहीं बल्कि उस कम्पनी पर आता है जहाँ वे काम करते हैं। इस तरह कोई इस बात का पता नहीं लगा पाता कि उनके तार कहाँ से जुड़े हैं।

इन हत्यारों के अधीन कई दर्जन कर्मचारी काम करते हैं। ये गरीब देशों में जाकर ऋण स्वीकृत करते हैं और वहाँ की आर्थिक नीतियों में साम्राज्यवादी फेरबदल करवाते हैं। इसके अलावा जैसा आजकल लातिन अमरीका में हो रहा है वैसे काम भी करते हैं। मतलब यह कि जब किसी देश में अमरीका विरोधी राष्ट्रपति चुना जाता है तो वे वहाँ जाकर कहते हैं – '' बधाई हो श्रीमान् राष्ट्रपति! अब आप राष्ट्रपति हैं और मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि अब लक्ष्मी आप पर मेहरबान होने वाली हैं। आपके परिवार वाले भी मालामाल हो सकते हैं। यदि आप अपने देश में हमारी नीतियों को लागू करें, हमारी कम्पनियों को आने का मौका दें तो आपके लिए हमारी इस जेब में लाखों-करोड़ों डालर हैं। हमारी बात न मानने पर हमारी दूसरी जेब में आपके लिए पिस्तौल भी है। मर्जी है आपकी, जो चुन लीजिए।''

जेबों में डालर और पिस्तौल

इसका मतलब है विभिन्न ठेकों के माध्यम से, छल-बल के तरीकों से, ये राष्ट्रपति की जेबें गर्म करते हैं। यदि नहीं मानें तो उनका भी वही हाल होगा जो इक्वाडोर के जैमे रोल्डोस का, पनामा के ओमार टोरीजोज का और चिली के अलेन्दे का हुआ। आज वेनेजुएला के ह्यूगो शावेज के साथ भी ऐसा ही करने की कोशिश चल रही है। अमरीका लोगों को उकसाकर, उन्हें भड़काकर शावेज को सत्ता से उखाड़ फेंकना चाहता है। जिसे वे सत्ता से हटा नहीं पाते, उसकी हत्या करवा देते हैं

जैसा कि कुछ साल पहले इक्वाडोर के राष्ट्रपति के साथ हुआ।

टोरिजोज के साथ क्या हुआ?

सातवें दशक में टोरिजोज का नाम दुनिया के समाचारों की सुर्खियों में था। उसकी माँग थी कि पनामा नहर वापस पनामा के लोगों को दे दी जाये। एक आर्थिक हत्यारा उन्हें राजी करने के लिए पनामा भेजा जाता है ताकि वह अमरीकी साम्राज्यवाद के पक्ष में आ जायें और पनामा नहर के राष्ट्रीयकरण की बात भूल जायें। लेकिन उन्होंने उस आर्थिक हत्यारे से कहा – '' देखो, तुम जानते हो और मैं भी जानता हूँ मुझे क्या करना है। मैं जानता हूँ कि यदि तुम्हारी नीतियाँ मैं मान लूँ तो मैं बहुत धनी बन जाऊँगा। मेरे लिए और मेरे देशवासियों के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है। जो महत्वपूर्ण है वह यह कि मैं अपने गरीब देशवासियों की सहायता करना चाहता हूँ।'' टोरिजोज कोई देवता नहीं थे। वे अपनी गरीब जनता के प्रति समर्पित व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने आर्थिक हत्यारे से कहा ''या तो तुम मेरी बात मान लो या इस देश से निकल जाओ।'' एन.एस.ए. के अधिकारियों ने उस हत्यारे को वहाँ रुकने के लिए कहा। दुनिया की निगाह टोरिजोज पर लगी हुई थी। टोरिजोज वास्तव में अमरीका के चंगुल से पनामा नहर को ही नहीं आजाद करा रहे थे बल्कि दुनिया के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे, जिसका अनुसरण और लोग भी करते।

उनके अपने ही सुरक्षा बलों ने टोरिजोज के वायुयान में जाते समय बम से भरा टेप रिकार्डर पकड़ा दिया और वायुयान में बीच हवा में विस्फोट हो गया। इस तरह उनकी हत्या कर दी गयी। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय खबरों में आया कि उनका वायुयान उड़ा और पहाड़ से टकरा गया, जबकि बाद में एन.एस.ए. के एक अधिकारी ने ही यह स्वीकार किया था कि उनकी हत्या करायी गयी थी।

इस घटना से तीन महीने पहले इक्वाडोर के राष्ट्रपति जैमे रोल्डोस ने अमरीकी तेल कम्पनी का तीखा विरोध करते हुए कहा – '' इक्वाडोर का तेल इक्वाडोर की जनता का है। यहाँ अमरीकी तेल कम्पनियों को लूट-खसोट नहीं करने दी जायेगी। अब या तो ये तेल कम्पनियाँ इक्वाडोर की जनता के लिए ज्यादा धन दें वरना हम उनका राष्ट्रीयकरण कर देंगे।'' इस तरह रोल्डोस ने बहुत ही तीखा अमरीका विरोधी अभियान चलाया। आर्थिक हत्यारों ने उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन दिये, डराया-धमकाया, लेकिन रोल्डोस अपनी जगह अडिग रहे। टोरिजोज की हत्या के तीन महीने पहले ही उनके वायुयान में भी विस्फोट करा दिया गया था।

अच्छी तरह हथियारबन्द सुरक्षाबलों से हमेशा घिरे रहने वाले रोल्डोस और टोरिजोज जैसे राष्ट्रपतियों की हत्या भला इतनी आसानी से कैसे हो सकती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके सुरक्षाबलों की ट्रेनिंग अमरीका में हुई थी। इस तरह के सुरक्षाबल अपने प्रशिक्षक के प्रति बहुत वफादार होते हैं। इन्हीं प्रशिक्षकों में से किसी ने रोल्डोस के वायुयान में उन्हीं के सुरक्षाबलों के हाथों बम रखवाया था। ये सुरक्षाबल बिक जाते हैं क्योंकि इन सुरक्षाबलों की आमदनी बहुत कम होती है और उन्हें बरगलाना आसान है। यदि यह उपाय कारगर नहीं हुआ तब दूसरे उपाय आजमाये जाते हैं।

यह आसान तरीका है और यही तरीका सद्दाम हुसैन के ऊपर भी आजमाया गया था। जब उन्होंने पूरी तरह अमरीका का साथ नहीं दिया तो आर्थिक हत्यारों ने उन्हें रास्ते पर लाने की कोशिश की। हत्या के असफल प्रयास भी हुए। सद्दाम हुसैन के मामले में आर्थिक हत्यारे बिल्कुल बेकार साबित हुए और अन्त में हारकर अमरीका ने इराक में सैनिक हस्तक्षेप किया।

सद्दाम हुसैन तो अमरीका के वफादार थे फिर उनके साथ ऐसा क्यों किया गया?

वे वफादार थे, लेकिन अमरीका चाहता था कि वे पूरी तरह अमरीकी शर्तों को मान लें और सऊदी अरब की तरह वे भी अमरीकी विश्व व्यवस्था में फिट हो जायें। लेकिन सद्दाम ने ऐसा करने से साफ मना कर दिया। इराक ने अमरीका से फाइटर जेट वायुयान और टैंक खरीद लिये। अमरीका ने इराक पर यह आरोप भी लगाया कि वह अपने रासायनिक संयन्त्रों से रासायनिक हथियार बना रहा है, जो बाद में सफेद झूठ साबित हुआ। असली कारण था कि वे इराक से अमरीका को बेरोकटोक तेल नहीं ले जाने देना चाहते थे। सद्दाम का मानना था कि अमरीकी तेल कम्पनियाँ कुवैत में कुएँ खोदकर वहाँ से इराक का तेल चुराया करती हैं। इन्हीं कारणों से वे अमरीका से खफा थे अमरीका की कोशिश थी कि वे यूरो के बजाय अमरीकी डालर में व्यापार करें और अमरीका द्वारा स्वीकृत मूल्य पर ही अपना तेल बेचें। सद्दाम ने ऐसा करने से इनकार कर दिया।

सातवें दशक में ओपेक ने अमरीकी तेल कम्पनियों के ऊपर शिकंजा कसना शुरू किया और तेल की सप्लाई बन्द कर दी। ओपेक इजराइल के प्रति अमरीकी नीति का विरोधी था। तेल

सप्लाई बन्द करते ही अमरीका में पेट्रोल पम्पों पर कारों की लम्बी लाइन लग गयी। अमरीकी सरकार डर गयी कि कहीं 1929 जैसी महामन्दी फिर न शुरू हो जाये। तब आर्थिक हत्यारों को सक्रिय करते हुए ट्रेजरी विभाग ने कहा ''देखो, ओपेक की यह नीति अमरीकी साम्राज्यवादी हितों के खिलाफ है। यह सुनिश्चित करो कि ओपेक टूट जाये और स्थिति फिर सुधर जाये।'' आर्थिक हत्यारों को पता था कि इसे रोकने का एकमात्र साधन सऊदी अरब है क्योंकि उसके पास किसी भी अन्य देश से ज्यादा तेल है और सऊदी अरब का शाही घराना पतित और भ्रष्ट है।

आर्थिक हत्यारों ने सऊदी अरब के शाही घराने को राजी कर लिया। यह तय किया गया कि शाही घराना दुनिया भर में बेचे गये तेल से होने वाली अपनी आमदनी अमरीका की सरकारी सिक्योरिटी में निवेश करेगा। इसके ब्याज से ही अमरीकी कम्पनी सऊदी अरब में निर्माण कार्य करेंगी। वहाँ ऊर्जा संयन्त्र, नमक-पानी अलग करने का संयन्त्र लगाया जायेगा। साथ ही सऊदी अरब के रेगिस्तान में आधुनिक शहर बसाया जायेगा, जिसमें शाही परिवार के लिए ऐयाशी के सभी साधन होंगे। व्यापार का दूसरा पहलू यह होगा कि अमरीका द्वारा तय दाम पर ही शाही घराना तेल बेचेगा। अमरीका शाही घराने की सत्ता बनाये रखेगा। यह समझौता आज तक जारी है। कई उतार-चढ़ाव आने के बावजूद भी आर्थिक हत्यारों की दृष्टि से यह समझौता अत्यन्त सफल रहा और इराक में सद्दाम हुसैन के साथ भी वे अपनी इसी चाल को दुहराना चाहते थे जो हो नहीं पाया।

एक अन्य घटना। कुछ सालों पहले इक्वाडोर में एक प्रबल अमरीका विरोधी राष्ट्रपति गुटीरेज चुना गया। गुटीरेज ने इक्वाडोर के तेल पर अमरीकी कम्पनियों के कब्जे का तीव्र विरोध किया। आर्थिक हत्यारों ने उससे कहा ''मेरे पास तुम्हारे लिए धन है अथवा पिस्तौल की गोली।'' एक महीने के अन्दर गुटीरेज वाशिंगटन गया। वहाँ बुश के साथ हाथ मिलाते हुए, उसके साथ बैठे हुए उसकी तस्वीर ली गयी जिसे पूरे इक्वाडोर में दिखाया गया। कुछ समय बाद वह अपने चुनावी वादों से मुकर गया। उसने तेल कम्पनियों के पुराने करार समाप्त कर दिये। वह वापस अपने देशवासियों के पास गया, जिनकी अमेजन क्षेत्र की जमीन को संरक्षित करने का उसने वादा किया था। इक्वाडोर की जनता क्रोधोन्मत्त हो गयी और सड़कों पर उतर आयी। उन्होंने विरोध और प्रदर्शन किये और अन्ततः उसे सत्ता से बाहर फेंक दिया। इक्वाडोर की जनता ने दिखा दिया कि वह वादा खिलाफी करने पर अपने चुने हुए नेता को उठाकर सत्ता से बाहर फेंक सकती है।

बोलीविया की पिछली सरकार भी अपनी ही जनता के खिलाफ सालों से आई.एम.एफ. की नीतियाँ लागू करती चली आ रही थी। वहाँ के कच्चे मालों को लगभग मुफ्त में लूटकर वहाँ की जनता को भूखों मारा जा रहा था। इसके विरोध में चुनाव लड़कर इवो मोरालेस सत्ता में आ गये। अमरीकी सरकार ने उन्हें बदनाम करना शुरू कर दिया। उनको कोकीन उत्पादक किसान, फिदेल कास्त्रो का पक्षधर, समाजवादी और साम्यवादी बताकर बदनाम करने का प्रयास किया गया। यह सही है कि बोलीविया में कोका उगाया जाता है, जो वहाँ वैधानिक फसल है और कई तरह की दवाइयाँ बनाने में इसका प्रयोग होता है। लेकिन इवो मोरालेस के चुने जाने के पीछे असली कारण वह नहीं था जिसका अमरीकियों ने प्रचार किया। असली कारण कुछ और था। पहले आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के जरिये विदेशी निगमों को बोलिविया के संसाधनों को लूटने की खुली छूट थी, जिसके कारण वहाँ की जनता अत्यधिक पीड़ित थी। नतीजा यह कि केवल बोलीविया में ही नहीं बल्कि लातिन अमरीका के कई देशों में 36 करोड़ दक्षिण अमरीकियों में से 30 करोड़ (लगभग 80 फीसदी जनता) ने चुनाव में अमरीका विरोधी राष्ट्रपति चुना।

अमरीका अपने साम्राज्यवादी मंसूबे लातिन अमरीका में स्थापित करने में क्यों असफल हो रहा है?

जार्ज बुश का कहना है कि अफगानिस्तान और इराक में बुरी तरह फँसे होने के कारण अमरीका अपनी पूरी ताकत के साथ लातिन अमरीकी देशों में अपनी साम्राज्यवादी नीतियों को थोपने में असफल रहा है। हो सकता है कि यह कुछ हद तक सही हो लेकिन असली कारण लातिन अमरीकी जनता और दुनिया की जनता का जनान्दोलन और जनसमर्थन है। कुछ साल पहले आर्थिक हत्यारों ने शावेज को सत्ता से उखाड़ फेंकने की कोशिश की और 48 घण्टे के लिए वे इसमें सफल भी रहे। लेकिन वहाँ की जनता के भारी दबाव ने और शावेज के वफादार सुरक्षा बलों ने पुनः शावेज की सत्ता बहाल कर दी। शावेज ने तेल कम्पनियों के बेहिसाब मुनाफे पर लगाम कसकर उसकी आय को जनता की सुविधाओं शिक्षा, स्वास्थ्य, सस्ता अनाज और आवास के विकास में लगाया। इसीलिए उन्हें जनता का प्रबल समर्थन मिला है। शावेज की जनता की

हिमायती सरकार ने लातिन अमरीका के दूसरे देशों के आन्दोलनों को भी बहुत सहारा दिया। इवो मोरालेस जैसे नेता भी ह्यूगो शावेज को उदाहरण के रूप में देखने लगे।

इवो मोरालेस के साथ क्या हुआ?

जब इवो मोरालेस राष्ट्रपति बने तो बोलीविया में आर्थिक हत्यारों के कई दौरे हुए। अनेक तौर-तरीके आजमाने के बावजूद मोरालेस ने दृढ़ता से कहा – ''मेरे लोगों ने मुझे किसी मकसद से चुना है, और मैं उसका सम्मान करता हूँ।'' यह उनकी शुरुआती प्रतिक्रिया थी। मोरालेस के समान व्यक्तियों पर कितना दबाव होता है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे जानते हैं कि उनसे पहले के राष्ट्रपति का क्या हुआ था। उनके ऊपर साम्राज्यवादी दबाव कसता चला जाता है। सर्वाधिक 54 फीसदी मत प्राप्त करके मोरालेस सत्ता में आये। चुनाव में वे अपने कई विरोधियों से बहुत ऊपर थे। वे अपनी नीति लागू करना चाहते थे कि फिर कुछ आर्थिक हत्यारे उनके ऑफिस में गये और चेतावनी दी कि सोचो, तुमसे पहले वाले राष्ट्रपतियों का क्या हुआ था, लेकिन फिर भी वे डटे रहे।

ब्राजील दुनिया की एक शक्ति है। यह अत्याधिक संख्या में सैनिक हथियारों का उत्पादन करता है, जिसका प्रयोग दुनियाभर में होता है। वहाँ कुछ सालों पहले अमरीका विरोधी राष्ट्रपति लूला चुने गये। आर्थिक हत्यारों के प्रयास से उन्होंने अमरीकी नीतियों को लागू करना शुरू कर दिया। मगर कुछ समय से लग रहा है कि लूला फिर रास्ते पर आ रहे हैं। लूला ने शावेज, अर्जेण्टीना के किर्चनेर और बोलीविया के मोरालेस के साथ सन्धि की है। उनमें सहमति है कि यदि अमरीका उनके विरुद्ध कोई उग्र कार्रवाई करता है तो वे साथ रहकर उसका विरोध करेंगे। कमजोर होने के बावजूद यह सन्धि काफी कारगर है।

लूला के एक प्रमुख परामर्शदाता ने अपनी आपबीती सुनायी ''अभी तक आप लोगों ने जिन आर्थिक हत्यारों के बारे में सुना है वे तो कुछ भी नहीं हैं। मैं जब नवयुवक था, बहुत ही प्रगतिशील और तार्किक था। विश्वविद्यालय की पार्टियों में खूब मौजमस्ती और शराब उपलब्ध थी। मैं भी आमन्त्रित रहता था। अब मैं सत्ता में इस जगह पर हूँ। मुझे पता चला है कि किसी ने उन पुराने दिनों की तस्वीर ले रखी है।'' उसने आगे कहा ''आप विश्वास नहीं करेंगे, अमरीका की यह गोपनीय सेवा कितनी दूर-दूर तक फैली है। वह अपने तरीके से इन सेवाओं के लिए युवकों की भरती करता है। चाहे वे समाजवादी या साम्यवादी विचारों वाले ही क्यों न हों। इसके लोग हमारे दोस्तों से मिले होंगे और अधिक से अधिक जानकारियाँ हासिल कर ली होंगी। जब सरकार में हम उच्च पदों पर होंगे तो ये हमें ब्लैकमेल करेंगे। मैं समझता हूँ इसे ब्लैकमेल करना नहीं बल्कि अमरीका की वर्तमान कूटनीति कहना चाहिए।'' लूला के बारे में पूछे जाने पर संकोच के साथ उसने कूटनीतिक जवाब दिया ''इन अमरीकी निगमों से समझौते के बिना कोई भी ब्राजील में सत्तासीन नहीं हो सकता।''

इक्वाडोर के गुटीरेज के खिलाफ काम करने वाले आर्थिक हत्यारे से मिली जानकारी के अनुसार अमरीका के जॉन केनेडी, राबर्ट केनेडी, मार्टिन लूथर किंग और जॉन लेनन की हत्याओं के पीछे भी इन्हीं आर्थिक हत्यारों का हाथ रहा है। ये केवल दूसरे देशों में ही नहीं बल्कि अपनी ही जन्मभूमि अमरीका में भी सक्रिय हैं।

सबसे त्रासद घटना जनरल नोरिएगा के साथ हुई जो पहले पूरी तरह अमरीका परस्त था। उसकी हत्या नहीं की गयी। उसके निर्दोष पनामावासियों पर बम गिराये गये, हजारों लोगों का कत्लेआम किया गया, जिन्दा जलाया गया। इसके बाद उसे अमरीका की जेल में ले जाकर कैद कर दिया गया।

आज दुनिया में लोगों के नजरिये में जबरदस्त बदलाव हो रहा है। पुरानी बेड़ियों के खिलाफ लोग विद्रोह करने लगे हैं। वे समझ रहे हैं कि अमरीका क्या चाहता है? आर्थिक हत्यारों की असलियत, अमरीका के साम्राज्यवादी मंसूबों और अपने ही देश के नेताओं के धोखेबाजी भरे कारनामों को लोग ज्यादा से ज्यादा जानने लगे हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण के लुभावने नारे के पीछे की सच्चाई – गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी के साथ-साथ गरीब जनता के प्रति धोखे-फरेब और लूट की सच्चाई, अधिकाधिक लोगों के सामने आने लगी है। लोग अधिकाधिक इन अन्यायों के खिलाफ विद्रोह करने लगे हैं। इसलिए वे अब आर्थिक हत्यारों की चाल भी नहीं चलने दे रहे हैं। साम्राज्यवादी हमलों से अपनी हिफाजत के लिए लोग अब जनान्दोलन का रास्ता अपना रहे हैं। दुनिया हमेशा साम्राज्यवादियों की मनमर्जी से नहीं चलती रहेगी। इतिहास जहाँ है वहाँ से आगे जायेगा। ▣

सैन्य मामलों में एक प्रतिक्रान्ति

(अमरीकी उच्च तकनीक युद्ध के बारे में टिप्पणियाँ)

■ जैकब लेविच

*1975 esa vejhch dUnzyg Sjh lelZ ust cvius led[k mUkjfo;ukeh lSU; vf/kdkjh ls dgk] ^^vki tkurs gSa fd vkiyksksa ausgesa jkHkwfeesa ugha gkjk gSA** rks mldk tokc Fkk] ^^,slk gks ldrk gS ysfdu vcl dkrd ok ksbZ ery c ugha gksxk**A*

अफगानिस्तान और इराक पर अमरीकी हमले के बारे में समाचार जगत में भरी कहानियों में घोषणा की गयी कि यह बहुप्रतीक्षित ''सैन्य मामलों में क्रान्ति (आर.एम.ए.)'' है, कि यह युद्ध की एक नयी प्रणाली है जिसके बारे में कहा गया कि इसमें युद्ध के नवीनतम रणकौशलों का संयोजन उच्च तकनीक वाले आयुधों, संचार नेटवर्कों और परिष्कृत निगरानी तकनीक के साथ किया गया है। अमरीकी सेना ने अपने नये खिलौनों को ''बल वर्धकों'' के रूप में, यानि ऐसे कारकों के रूप में प्रोत्साहन दिया जो कि अतिरिक्त सैन्य दलों के बिना ही अमरीकी आक्रमण की प्रभावकारिता में नाटकीय बढ़ोत्तरी सुनिश्चित करते हों। अमरीकी प्रतिरक्षा विभाग द्वारा सार्वजनिक तौर पर स्वीकृत उन्नत आयुध प्रणाली में पायलट रहित टोही विमान, शक्तिशाली ''बंकर ध्वंसक'' विस्फोटक और पूर्णत: नियन्त्रित युद्ध सामग्री शामिल है। इसके अलावा ऐसी अफवाहें फैलायी गयीं कि अमरीकी शस्त्रागार में विज्ञानकथाओं की दुनिया की मानिन्द कुछ भयावह नये हथियार भी शामिल थे, जैसे – युद्ध क्षेत्र में इस्तेमाल की जाने वाली प्राणघातक किरणें, ई-बम और यहाँ तक कि ऐसे उपकरण जिनसे अमरीकी पैदल सैनिक दीवारों के आरपार देख सकते हैं।

यह जोरशोर से घोषित किया गया था कि ''गुप्त सूचनाओं पर आधारित'' या ''उत्तर-आधुनिक'' युद्ध 21वीं सदी के युद्धक्षेत्र का स्वरूप बदल देगा और आने वाली कई पीढ़ियों तक अमरीकी प्रभुत्व को सुनिश्चित कर देगा। जैसा कि एक टेलीविजन कमेण्ट्रेटर के भावावेग में फूट पड़ा, ''अन्तरराष्ट्रीय मामलों पर इस स्तर तक प्रभाव डालने वाले किसी अन्य तकनीकी बदलाव की कल्पना करना कठिन है। टैंक का विकास? युद्धक विमान की पहली उड़ान? बारूद का अविष्कार? ये लगभग उन्हीं के स्तर को छूने वाला है।''

''सैन्य मामलों में क्रान्ति'' के पक्ष में यह पुरजोर उल्लास विजय के पहले झोंके का मुँह भी नहीं देख सका। मध्यपूर्व में कई दशकों से जारी, थकाकर चूर कर देने वाले छापामार युद्ध के बाद अमरीकी रणनीतिकार अब दुबारा वियतनाम के बुनियादी पाठ पढ़ रहे हैं कि छापामार युद्ध केवल सैनिक संघर्ष नहीं, बल्कि एक राजनीतिक संघर्ष है; कि तकनीक चाहे कितनी ही परिष्कृत और प्राणघातक क्यों न हो, कृतसंकल्प जनप्रतिरोध को पराजित नहीं कर सकती; कि प्रतिरोध योद्धाओं की शक्ति का स्रोत उनके प्रति जनता की सहानुभूति और सहयोग में निहित है। (इराक में अमरीकी पराजय के बाद से अमरीका में फैशनेबुल सैन्य चिन्तक अब राजनीतिक अभियानों, गुप्त सूचनाओं और स्थानीय (देशी) फौजों के साथ संयुक्त अभियानों पर जोर देने लगे हैं – ये सारत: 1960 के दशक के विद्रोह-दमन सिद्धान्त से पीछे हटना है। विडम्बना तो यह है कि आज माओ का लेख ''छापामार युद्ध के बारे में '' पढ़ना अमरीकी सैन्य विश्लेषकों के लिए जरूरी हो गया है।'') ''सैन्य मामलों में क्रान्ति'' के हथियारों के बारे में काफी बढ़चढ़कर किये गये विज्ञापनों का इस संघर्ष की हकीकतों की रोशनी में यहाँ जो पुनर्मूल्यांकन किया गया है, वह इस बात की पुष्टि करता है कि जनता ही निर्णायक शक्ति होती है, हथियार नहीं।

पूर्णत: नियन्त्रित हथियार

''न्यूयार्क टाइम्स'' ने अपने पहले पन्ने पर छपे एक लेख में ''एक नये किस्म की अमरीकी हवाई शक्ति के...

फुर्तीलेपन और सधे निशाने'' का ढोल पीटते हुए भविष्यवाणी की कि ''अफगानिस्तान को स्मार्टबम युद्ध के रूप में याद किया जायेगा।'' सच्चाई यह है कि अमरीकी ''स्मार्टबमों का इस्तेमाल 1991 के खाड़ी युद्ध और 1999 में यूगोस्लाविया पर हमले में भी किया गया था और उनका प्रदर्शन कई मामलों में असन्तोषजनक था। लेजर-नियन्त्रित हथियार न केवल मौजूदा प्रोपेगण्डा की तुलना में कम सधे हुए थे बल्कि खराब मौसम में वे बिल्कुल बेकार हो गये। (बादल या रेतीली आँधी लेजर नियन्त्रित प्रणाली के निशाना साधने में बाधक है।)

नयी संयुक्त सीधा आक्रमण सामग्री (जे.डी.ए.एम) यानि उपग्रह के जरिये वायुयान को नियन्त्रित करने की एक सुसंहत प्रणाली जो मुक्त रूप से गिर रहे 2000 पौण्ड के बम को एक नियन्त्रित स्मार्ट हथियार में तब्दील कर देती है, मौसम की समस्या को हल करने के लिए डिजाइन की गयी थी। इराक और अफगानिस्तान की रिपोर्टें बताती हैं कि इस जे.डी.ए.एम. तकनीक ने रेतीली आँधी और बादल घिरे होने के समय भी ठीक से काम किया, सिग्नल जाम करने की प्रणाली को नाकाम किया और यह आमतौर पर ''असाधारण रूप से अच्छी और सुसंगत'' थी, हालाँकि इसका सधा निशाना अमूमन प्रतिरक्षा विभाग के दावों से बदतरीन था।

अमरीका अपने बमों की सटीकता को सम्भावी वृत्तीय त्रुटि (सी.ई.पी.) नामक एक भ्रामक सूत्र से मापता है। सी.ई.पी. उस वृत्त की त्रिज्या है जिसके भीतर दागे गये कुल आयुधों में से 50% के टकराने की उम्मीद की जाती है। इसलिए जे.डी.ए.एम. के बारे में व्यापक रूप से बतायी गयी 13 मीटर सी.ई.पी. का मतलब है कि 13 मीटर की त्रिज्या वाले वृत्त में केवल आधे आयुध ही टकराते हैं। यानि 1000 में से 500 बम उस लक्ष्य से दूर किसी स्कूल या अस्पताल या घर पर गिर जायें तब भी उस आयुध के निशाने को सधा हुआ ही माना जायेगा। यही कारण है कि सूक्ष्म-निर्देशित हवाई हमलों में रोज भारी संख्या में नागरिक मारे जाते हैं। फिर भी सम्भव है कि अपेक्षतया काफी सस्ती, महज 20,000 डालर प्रति बम की लागत वाली यह नयी तकनीक जे. डी.ए.एम. आने वाले वर्षों में स्थिर और दिखायी देने वाले लक्ष्यों के लिए घातक खतरा बनी रहे।

अमरीकी नौसेना की इससे कहीं ज्यादा महँगी, प्रति मिसाइल पाँच लाख डालर वाली टामहॉक क्रूज मिसाइल जलपोत पर से छोड़ी जाती है और रडार निर्देशित उड़न बम है, 1991 के खाड़ी युद्ध में इसे पहले पहल इस्तेमाल किया गया तथा इराक और अफगान युद्ध में भी इसका इस्तेमाल किया। जे.डी.ए.एम. की तुलना में अपनी ऊँची कीमत तथा सधे निशाने के अभाव के कारण लड़ाई के परम्परागत हथियार के रूप में यह लगभग प्रचलन से बाहर हो चुकी है, हालाँकि नाभिकीय क्रूज मिसाइलें अभी भी अमरीकी शस्त्रागार का महत्वपूर्ण हिस्सा बनी हुई हैं। टामहॉक 1970 के दशक के अन्त में पहली बार इस्तेमाल किये जाने के बाद से ही मूलत: अपरिवर्तित रही हैं, लेकिन इसकी एक नयी उच्च तकनीक वाली ''निपुण टामहॉक'' को विकसित किया जा रहा है। इसमें जिन सुधारों का वादा किया गया है उनमें युद्धपोत पर लगे हुए ऐसे कम्प्यूटरों का नेटवर्क, जो विभिन्न स्रोतों से प्राप्त लक्ष्य सम्बन्धी विविध प्रकार के आँकड़ों का विश्लेषण करने में समर्थ हो और इसके साथ ही युद्ध क्षेत्र के अवलोकन के लिए टीवी कैमरे की व्यवस्था शामिल है। शुरुआती योजना के हिसाब से इस ''निपुण टामहॉक'' की आपूर्ति 2004 में हो जानी थी, मगर इसमें बार-बार विलम्ब होता रहा और निकट भविष्य के संघर्षों में इसके इस्तेमाल की सम्भावना नहीं है।

पेण्टागन के ''जासूसी पायलट रहित विमानों'' में से कम से कम एक का तो सधे निशाने वाले बम गिराने में आजकल बढ़े पैमाने पर इस्तेमाल हो रहा है और इसलिए यहाँ उसकी चर्चा की जा सकती है। द प्रिडेटर (हिंसक) नामक मानवरहित वायुयान (यू.ए.वी.) जिसे निगरानी और टोह के लिए डिजाइन किया गया था, उसने अफगानिस्तान पर अमरीकी हमले के दौरान लेजर नियन्त्रित हेलफायर मिसाइलों को ढोने के साथ अपना काम शुरू किया और अब भी इराक और एशिया में और कहीं भी युद्ध अभियानों के सिलसिले में उड़ानें भरता रहता है। पश्चिमी पत्रकारों की अविराम प्रशंसा का सबब बना यह प्रिडेटर हकीकत में धीमा है, इसका निशाना अपेक्षतया कम सधा हुआ है और अमूमन यह बरसात के मौसम में इस्तेमाल करने लायक नहीं है। 2001 के आखिरी महीनों से शुरू किये गये एक अध्ययन में प्रतिरक्षा विभाग ने ''विश्वसनीयता, रख-रखाव और मानवीय कारकों के लिहाज से इसकी बनावट में गम्भीर कमियाँ'' पायीं और बताया कि अमरीकी वायुसेना के लिए 250 लाख डालर प्रति विमान की लागत पर बने 50 में से 22 प्रिडेटर विमान 2001 के अन्त से अब तक या तो मार गिराये गये या

दुर्घटनाग्रस्त हो गये। फिर भी दुश्मन के मोर्टारों की टोह लेने तथा घात लगाकर किये जाने वाले हमलों के प्रति आगाह करने के लिए प्रिडेटर की साख अभी बनी हुई है। (सी.आई.ए. प्रिडेटर का इस्तेमाल हत्या करने वाले हथियार के रूप में करती है; इस काम में अक्सर उसका निशाना चूकता रहा है और कभी-कभी विनाशकारी साबित हुआ है। वर्तमान युद्धों के दौरान नागरिकों की हत्याओं के कई बहुचर्चित मामलों के लिए यह जिम्मेदार है। अक्तूबर 2006 में पाकिस्तान के एक मदरसे पर सी. आई.ए. द्वारा हमला करके किया गया कम से कम 80 छात्रों का नरसंहार भी इनमें शामिल है। यह सम्भवत: अलकायदा के उपप्रमुख आयमन अल-जवाहिरी की हत्या का असफल प्रयास था) अफगानिस्तान और इराक में इस्तेमाल किये इन अचूक शस्त्रास्त्रों की निशानेबाजी को अमरीका 90% सटीक आँकता है। (प्रचार के उद्देश्य से बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया 90% का यह सम्भावित आँकड़ा उन बमों का प्रतिशत है जो लक्ष्य पर गिरते हैं। गलत खुफिया सूचनाओं के आधार पर गलत लक्ष्यों की ओर दागे गये बमों के बारे में इससे कुछ पता नहीं चलता।) बहरहाल 2006 में 'लेन्सेट' पत्रिका द्वारा इराक में नागरिकों की मौतों के बारे में किया गया एक अध्ययन 13% नागरिक मौतों के लिए इन हवाई हमलों को ही जिम्मेदार ठहराता है। अर्थात जून 2006 तक हिंसक कारणों से हुई अनुमानत: 6 लाख 1 हजार 27 मौंतों में से लगभग 80 हजार इराकी नागरिक अमरीकी बमों से मारे गये हैं। (इराक और अफगानिस्तान में भारी संख्या में नागरिकों की मौतें अमरीकियों द्वारा अक्सर जनबूझकर सघन आबादी वाले क्षेत्रों पर गोला दागने का नतीजा हैं। शहरी इलाके में स्थित विमानभेदी तोप की ओर चाहे कितनी भी सूक्ष्मता से निशाना साधने वाला उच्च तकनीक आयुध क्यों न हो, उसके विस्तृत मारक क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों का मरना निश्चित है। इसके अलावा गलत खुफिया सूचनाएँ भी बड़ी संख्या में नागरिकों की मौतों का कारण बनी हुई हैं, जैसा कि जुलाई 2002 में अफगानिस्तान में एक शादी की पार्टी पर हमले के कारण हुआ जिसमें सारे बाराती मारे गये।) नागरिक मौतें कम करने में उच्च तकनीक वाले इन बमों और मिसाइलों की असफलता प्रमाणित हो जाने के बावजूद सेना विश्लेषक अब भी इनके प्रदर्शन से सन्तुष्ट दिखते हैं। इसकी वजह यह है कि अमरीकी प्रचारक चाहे जो भी दावा करें, इन सूक्ष्म निर्देशित आयुधों का उद्देश्य ''आनुषंगिक क्षतियों'' को रोकना कत्तई नहीं है। इन आयुधों का वास्तविक उद्देश्य विमानों और पायलटों को विमान भेदी गोलन्दाजी से बचाना है। लम्बी दूरी से निशाना साधकर हमला करने का मतलब है कम उड़ानें और दुश्मन की बन्दूकों का निशाना बनने का कम खतरा। यदि प्रति उड़ान नष्ट हुए विमानों की दृष्टि से देखा जाये तो इसका प्रदर्शन शानदार दिखता है। उदाहरण के तौर पर 2001-02 के अफगानिस्तान हमले के दौरान अमरीकी वायुसेना का एक भी विमान नष्ट नहीं हुआ। अचूक आयुधों ने अगर कुछ बढ़ाया है तो वह है आम नागरिकों की मौतों की संख्या। लेकिन यह तथ्य सैन्य योजनाकारों के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय नहीं है, सिवाय इस बात के कि अखबारों में ''गैरजरूरी'' हत्याओं की रिपोर्ट छपने के कारण कभी-कभी अमरीका को शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है।

साम्राज्यवादी देशों के लिए ज्यादा बड़ी चिन्ता का विषय दृढ़ निश्चयी गुरिल्ला प्रतिरोध के सामने इन अचूक आयुधों की बेबसी का इजहार है। लेबनान पर हमले के दौरान हिज्बुल्ला लड़ाके मौका देखते ही आबादी के बीच चले जाते या उनके बीच घुलमिल जाने के पारम्परिक छापामार रणकौशलों का इस्तेमाल करके अमरीका द्वारा भेजे गये इजरायली स्मार्टबमों का प्रतिरोध करते रहे। उनके मजबूत भूमिगत बंकरों के नेटवर्क ने अमरीकी सूक्ष्म निर्देशित आयुधों को दृढ़ता के साथ विफल किया। इजरायल की उच्च तकनीक वाली लक्ष्य भेदन प्रणाली हिज्बुल्ला के छोटे और आसानी से ढोये जा सकने वाले कात्यूशा राकेटों को खोज पाने में नाकामयाब रही। इसका उन्हें अच्छी तरह अहसास हो गया है केवल हमले की आशंका के आधार पर अपनी ओर से पहले ही गोलाबारी करने और पूरे पैमाने के आक्रमणों के मामले में तो अमरीका और उसके सहयोगियों को भारी सफलता मिली। लेकिन जहाँ तक उन ''छायाभासी समूहों – 'प्रेतों' और 'बैतालों' ... की बात है, जो देश की सीमाओं की परवाह नहीं करते और समाज में आसानी से घुलमिल जाते हैं, उनके खिलाफ हमलावर विमानों से सूक्ष्म निर्देशित आयुध दागने'' की निरर्थकता का उन्हें अच्छी तरह अहसास हो गया है।

नतीजतन इराक में जारी हवाई युद्ध के तेवर में समय के साथ बदलाव आया और पहले वाली सूक्ष्म निर्देशित रणकौशलयुक्त बमबारी की जगह अब प्रतिरोध युद्ध को समर्थन देने वाली जनता को दण्डित करने के लिए रणनीतिक तौर पर की जाने वाली बमबारी

ने ले ली है। ऐसा ही बदलाव इससे भी कहीं ज्यादा तेजी से लेबनान में अपनाया गया था, जहाँ इजरायली वायुसेना ने हिज्बुल्ला के खिलाफ अपने शुरुआती सूक्ष्म निर्देशित हमलों की विफलता को देखते हुए हवाई युद्ध का रुख नागरिक ठिकानों की ओर मोड़ दिया जिनमें रिहायशी इमारतें, हवाई अड्डे, पुल, राजमार्ग और इनसान शामिल थे। दोनों ही मामलों में हमलावरों द्वारा जनता के साहस को कम करके आँकना उनके लिए विनाशकारी साबित हुआ। प्रतिरोध युद्ध को जनता का समर्थन और बलिदान होने की उनकी आकांक्षा पहले से भी ज्यादा मजबूत होती गयी। जुलाई 2006 में बेरुत की एक माँ ने एक अमरीकी संवाददाता को बताया:

> अगर इजरायल और अमरीका हमारे साथ ऐसा ही सुलूक करना चाहते हैं तो हम यही कर सकते हैं कि इन हालात को बर्दाश्त करें। इस लिए अगर हमें भूमिगत रहना पड़ा तो हम रहेंगे। जब तक हमारे लड़ाके यानि हिज्बुल्ला छापामार सही-सलामत हैं और जब तक शेख नसरुल्ला ठीक हैं तब तक हमें यहाँ रहने में कोई भी एतराज नहीं। हम कुछ भी बर्दाश्त कर सकते हैं।

लेबनानी जनता ने जितनी मजबूती से और जितने बड़े पैमाने पर हिज्बुल्ला को समर्थन दिया, वह आज भी अमरीका और इजरायली प्रचारकों के लिए शर्मिन्दगी और झुँझलाहट का कारण बना हुआ है, जो इस पार्टी और इसकी जनसेना की छवि लेबनानी मामलों में सीरियाई दखलन्दाजी के मोहरे के रूप में पेश करते थे। इजरायली हमले के बाद करवाये गये जनमत संग्रह में 87% लोगों द्वारा प्रतिरोध युद्ध के समर्थन को पश्चिमी मीडिया ने भले ही खारिज किया या उसकी अनदेखी की, मगर हिज्बुल्ला की विस्मयकारी जीत अपने आप में व्यापक जनसमर्थन का भरपूर प्रमाण है। इजरायल के उच्च तकनीक आयुधों को पराजित कर देने वाले रणकौशलों – देश भर में बड़े पैमाने पर भूमिगत नियन्त्रण केन्द्रों और शक्तिशाली मिसाइल स्थलों का निर्माण, इजरायली बमबारी की हालत में हथियारों और लड़ाकों का तीव्र गति से स्थानान्तरण और लड़ाकों की जब चाहे नागरिक आबादी में घुल-मिल जाने की योग्यता – इनकी तैयारी के अनेक श्रमसाध्य वर्षों के दौरान जनता की सहानुभूति और समन्वित सहयोग की आवश्यकता थी।

बंकर ध्वंसक

बंकर ध्वंसकों, यानि कठोर भूमिगत नियन्त्रण केन्द्रों को भेद सकने तथा नष्ट कर सकने के लिए तैयार किये गये बमों के बारे में सरकारी स्रोत मिश्रित प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे हैं। यद्यपि सैन्य प्रवक्ता समकालीन युद्धों में बंकर ध्वंसकों के प्रदर्शन की एक सुर से प्रशंसा करते रहे हैं, मगर प्रतिरक्षा विभाग ने इस हथियार के बड़े तथा ज्यादा ताकतवर रूपों की माँग करना कभी बन्द नहीं किया, जिससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि अपने मौजूदा रूप में ये उतने प्रभावी नहीं हैं जितना कि दावा किया जाता है।

पारम्परिक बंकर ध्वंसकों की नवीनतम पीढ़ी ताप-रासायनिक (बेरियम युक्त) आयुध का इस्तेमाल इराक और अफगानिस्तान दोनों जगह भारी पैमाने पर किया गया। इनके बारे में दावा किया जाता है कि वे सुदृढ़ कंक्रीट को 3.4 मीटर की गहराई तक भेदने की क्षमता रखते हैं। (ताप रासायनिक बम जिन्हें ईंधन-वायु विस्फोटकों के रूप में भी जाना जाता है, एल्युमिनियम जैसे धात्विक ईंधन को प्रज्वलित करने के लिए वायुमण्डलीय ऑक्सीजन का इस्तेमाल करते हैं, जिससे ज्यादा ताकतवर और देर तक टिकने वाला आघात पैदा होता है। भारी संख्या में नागरिकों को हताहत करने वाले ये हथियार दशकों से अमरीका और पूर्व सोवियत संघ द्वारा इस्तेमाल किये जाते रहे हैं। पहले खाड़ी युद्ध के दौरान अमरीका ने ताप-रासायनिक बमों को मुख्यत: मानव संहारक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया था। ... आतंकवाद विरोधी विश्लेषकों को भय है कि अन्तत: ये हथियार प्रतिरोध योद्धाओं द्वारा अमरीका के खिलाफ भी इस्तेमाल किये जायेंगे।) अभी यह स्पष्ट नहीं है कि ये आयुध कितने प्रभावी थे क्योंकि इससे सम्बन्धित तथ्यों को गुप्त रखा गया है। बहरहाल ''जबरदस्त नाभिकीय भू-भेदक'' के त्वरित विकास की अमरीकी योजना पर 2005 में उठे विवाद के सिलसिले में अधिकारियों को यह स्वीकारने की जरूरत पड़ी कि ''ताकतवर शत्रु लगातार जमीन के भीतर गहराई में मजबूत आश्रयों का निर्माण कर रहे हैं, जिनपर परम्परागत हथियारों का कोई असर नहीं होता। (आधिकारिक तौर पर अमरीका की मंशा अब नाभिकीय बंकर ध्वंसक बनाने की नहीं है, किन्तु खोजी पत्रकार सेमूर हर्ष को विश्वास है कि ऐसे हथियार मौजूद हैं और उनका इस्तेमाल ईरान के खिलाफ किया जा सकता है।) अभी हाल ही में 2006 में लेबनान पर इजरायली सेनाओं द्वारा किये गये हमलों के दौरान बंकर ध्वंसकों के प्रदर्शनों का मोटे तौर पर मूल्यांकन किया जा सकता है। हसन नसरुल्ला तथा अन्य हिज्बुल्ला नेताओं की हत्या के लिए जुलाई में अमरीका ने

100 बंकर ध्वंसक इजरायल में भेजे। 40 मीटर गहरे कठोर बंकरों के एक संजाल में छिपे छापामारों को निशाना बनाया गया लेकिन उन्हें खरोंच तक नहीं आयी। (इटली की एक न्यूज एजेंसी ने रिपोर्ट की कि इजरायल ने लेबनानी गाँव खियाम के ऊपर रेडियोधर्मी बंकर ध्वंसकों का इस्तेमाल किया। यह कोई नाभिकीय विखण्डन वाला आयुध तो नहीं था, लेकिन इस्तेमाल किये हुए यूरेनियम की नोक वाले बदनाम अमरीकी टैंक भेदी प्रक्षेपास्त्रों की तरह ही इसकी भेदन क्षमता को बढ़ाने के लिए इसमें भी संवर्धित यूरेनियम का जरूर इस्तेमाल हुआ होगा।

जासूसी और टोह

परम्परागत युद्धमोर्चों पर अमरीकी प्रभुत्व का ज्यादातर श्रेय उसकी इलेक्ट्रॉनिक युद्ध की परिष्कृत प्रणाली को जाता है, खास तौर पर इलेक्ट्रॉनिक खुफिया सूचनाओं के तत्काल संग्रह और समन्वय की उसकी वास्तविक क्षमता को। सिद्धान्त में अमरीकी चार सी और एक आई (कमान,कण्ट्रोल, कम्यूनीकेशन, कम्प्यूटर और इण्टेलीजेंस) ऊपर से नीचे तक पूर्णत: समेकित है। अर्थात अमरीका पहले ही ''नेटवर्क केन्द्रित'' युद्ध में रत है। (''नेटवर्क केन्द्रित युद्ध को इस रूप में परिभाषित किया जाता है: ''सैन्य कार्रवाइयों का ऐसा विचार जो युद्ध परिवेश से जुड़ी जानकारी देने वाली सभी चीजों के प्रभावी संयोजन द्वारा सूचना श्रेष्ठता को युद्ध शक्ति में तब्दील कर देता है।'' बिल्कुल ताजा सैन्य सिद्धान्त की तरह इसे कारपोरेट क्षेत्र में भी नयी खोज का नमूना माना जाता है और कम श्रमशक्ति से अधिकाधिक अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने के लिए नेटवर्किंग तकनीकों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जाता है।) अन्तरिक्ष में जी.पी.एस. उपग्रह लक्ष्यों की स्थिति, चाल तथा दिशा का पता लगाते हैं और इन सूचनाओं को क्रूज मिसाइलों तथा अन्य सूक्ष्म निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों के पास भेज देते हैं। परिवर्तित बोइंग-707 (जे.एस.टी.ए. आर.एस.) ऊँचे आकाश में रडार, इन्फ्रारेड और वीडियो सूचनाओं को इकट्ठा करके संयोजित करते हैं और युद्ध क्षेत्र के कमाण्डरों के इस्तेमाल के लिए वास्तविक समय का इलेक्ट्रॉनिक नक्शा तैयार करते हैं। धरती के निकट दर्जन भर किस्मों के पायलट रहित टोही विमान – एयर लाइन आकार के ग्लोबल हॉक से लेकर हाथ से छोड़े जाने वाले छोटे से रावेन तक, अपने लक्ष्यों को पहचानने और उनका पीछा करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रतिबिम्ब का इस्तेमाल करते हैं। इलेक्ट्रॉनिक सूचना तत्काल नियन्त्रण चौकियों, लैपटापों और स्ट्राइकरों (50 बोर की भारी मशीनगनें लगी हुई और नवीनतम युद्ध तकनीक पर आधारित तीव्र चाल वाली बख्तरबन्द गाड़ियों) को वितरित कर दी जाती है और जल्दी ही ''भू-योद्धा'' योजना के द्वारा, जिसकी आगे चर्चा की गयी है, हरेक सैनिक को उपलब्ध करा दी जाती है।

व्यवहार में, नेटवर्क केन्द्रित युद्ध भी बेदाग नहीं है। अफगानिस्तान और इराक पर हमलों के दौरान सैन्य हित की महत्वपूर्ण वस्तुओं का पता लगाने में इलेक्ट्रॉनिक निगरानी प्रणाली सफल रही किन्तु शत्रुओं, मित्रों और नागरिकों में यह आम तौर पर भेद नहीं कर सकी। इसका परिणाम भारी ''आनुषंगिक क्षतियों'' और ढेरों बहुप्रचारित दोस्ताना गोलीबारी की घटनाओं के रूप में आया जिनमें अमरीकी फुटबाल स्टार पैट टिलमैन की मौत वाली घटना भी शामिल है। (जिस प्लाटून ने टिलमैन की हत्या की, वह एक दूरस्थ उच्च तकनीक वाले ऐसे अग्रवर्ती सैन्य संचालन अड्डे से निर्देशित हो रहा था, जो वास्तविक-काल उपग्रह आँकड़ों का इस्तेमाल कर रहा था।) उच्च तकनीक वाला यह उपकरण नाजुक होने के कारण आसानी से टूटने वाला था और सेना की आपूर्ति शृंखला पर काफी निर्भर था। युद्ध क्षेत्र में इसे कहीं कम तो कहीं ज्यादा वितरित किया गया। (नौसेना के एक लेफ्टीनेण्ट ने युद्ध क्षेत्र में तकनीक की सीमाओं को बड़े सजीव तरीके से रखा है: ''अगर आप कागज के किसी नक्शे में एक छेद कर दें तो आप के पास एक छेदयुक्त नक्शा तो बचा रहेगा। लेकिन अगर आप कम्प्यूटर स्क्रीन पर गोली चलाकर एक छेद कर दें तो आप के पास क्या रहेगा? बस कबाड़।)''

जबकि युद्ध क्षेत्र में कमाण्डर प्राय: उपलब्ध सूचनाओं के बोझ से लद जाते थे, जनरलों को पता चला कि शत्रु की स्थिति के बारे में विस्तृत जानकारी मिल जाने से ही रणनीति और रणकौशल के बारे में सही निर्णयों की गारण्टी नहीं हो जाती। फिर भी अपनी कमियों के बावजूद उच्च तकनीक वाली सी 4 आई मोटर युक्त सैन्य संचालन, भारी पैमाने के हवाई हमलों और सुनियोजित ढर्रे वाले युद्धों के मामले में काफी सहायक रही, जिनमें अमरीकी सेना ने अपनी उत्कृष्टता को बनाये रखा है।

फिर भी छापामार युद्ध की स्थिति में इन नवीनतम् निगरानी उपकरणों ने अमरीकी सेनाओं को बहुत कम फायदा पहुँचाया है। इराकी प्रतिरोध योद्धाओं ने छोटे, हल्के हथियारों से लैस ऐसे समूहों में हमला करना सीख लिया है, जिन्हें पायलट रहित अमरीकी विमानों द्वारा पहचान पाना या नागरिकों की आवाजाही और उनके बीच भेद कर पाना वस्तुत: असम्भव है। छोटे पैमाने के बेहद दक्ष ''मारो और भागो'' रणनीति वाले हमले (उदाहरणार्थ आई ई डी और छिपकर

किये गये फायर) अमरीकी पायलट रहित विमानों को विफल करने के लिए ही अपनाए गए हैं। छोटी-छोटी टोलियों का आपस में जुड़ा हुआ सांगठनिक ढाँचा और लोगों के साथ आमने-सामने का संवाद अमरीकी सिग्नल जासूसी को बेकार कर देता है। (अमरीकी गुप्तचर विभाग रेडियो प्रसारण, ई-मेल तथा अपने कब्जे वाले देश तथा सहयोगी देशों में लैण्डलाइन टेलीफोन पर होने वाली बातचीत को बाधित कर सकते हैं। मोबाइल फोन पर होने वाली बातचीत को दूर से ही सुन लेने की इसकी क्षमता को तो सभी जानते हैं, लेकिन इस तथ्य को कम ही लोग जानते हैं कि अमरीका प्राय: किसी मोबाइल फोन की ठीक-ठीक स्थिति को, यहाँ तक कि उसके बन्द होने की स्थिति को भी जान सकता है और इस तरह इसका इस्तेमाल करने वाले पर नजर रख सकता है। कोलम्बियाई मादक द्रव्यों का कथित तस्कर पाब्लो एसकोबार और अलकायदा का तथाकथित अगुआ अबू मुसाब अल-जरकावी, दोनों की हत्या इसी तरीके से की गयी।... इसके विपरीत अमरीकी "HUMINI" (मानव जासूसी विभाग) मध्यपूर्व में अपनी अयोग्यता के लिए कुख्यात है। इराक युद्ध के लगभग चार वर्षों के दौरान विश्वसनीय मुखबिरों की तो बात ही क्या, अमरीका अपनी जरूरत भर अरबी बोलने वालों की भी भर्ती नहीं कर पाया है और डबल ऐजेण्टों (दोनों ओर की मुखबिरी करने वालों) का शिकार होता रहता है।)

सिग्नल गुप्तचरी विभाग के ऊँचाई पर उड़ने वाले उच्च तकनीक उपकरणों को उच्च स्तरीय, केन्द्रीकृत सैनिक ढाँचे पर नजर रखने और नष्ट करने के लिए ही लगाया जाता है। (अमरीकी प्रतिरक्षा विभाग की जनसमुदाय को लेकर बदहवासी और उन्हें तबाह करने वाले हमलों का कारण यही है), इसलिए ये उपकरण छोटे-छोटे अनुशासित छापामार दस्तों को भेद पाने में खास तौर पर नाकाफी हैं (अमरीकी कांग्रेस सदस्या जेन हर्मन ने विदेश-सम्बन्ध परिषद् द्वारा आयोजित मार्च 2004 के पैनल में इस समस्या को चिह्नित किया था-''इन टोलियों को भेदना हमारे लिए महत्वपूर्ण है। इन लोगों की योजनाओं और मंशा को जानने का एक ही तरीका है कि हमारा कोई आदमी उनके भीतर हो या कम से उनके बहुत करीब हो। चारों ओर उड़ान भर रही बेहद प्रभवशाली हवाई और उपग्रह शक्ति द्वारा की जा रही सिग्नल जासूसी इसके लिए पर्याप्त नहीं है।'') परिणामत: अमरीका को अभी भी इराकी प्रतिरोध की कोई कारगर खुफिया तस्वीर नहीं मिल पायी है और अफगानिस्तान में भी स्थिति कोई खास बेहतर नहीं है। (इराक के टोलीबद्ध प्रतिरोध समूहों के बारे में कारगर खुफिया सूचनाओं को इकट्ठा करने में अमरीका की इस नाकामी को ही वहाँ बड़े पैमाने पर नजरबन्दी और यातना का सहारा लेने के पीछे एक बड़ा कारण माना जा रहा है ... यातना के प्रतिरोध के लिए भी वहाँ टोलीबद्ध ढाँचा तैयार किया गया है जैसा कि एक इराकी प्रतिरोध योद्धा ने एक अमरीकी रिपोर्टर को बताया था कि, ''मेरे ख्याल से मेरे संगठन में 2500 लोग हैं... लेकिन मैं उन में से अपनी टोली के लोगों के अलावा केवल 2 अन्य लोगों का नाम जानता हूँ; एक मेरे ऊपर का और मेरे करीब के एक अन्य कमाण्डर का। अगर वे मुझे यातना भी दें तो मैं केवल दो कमाण्डरों का नाम बता सकता हूँ। वे दोनों कमाण्डर भी केवल कुछ नाम जानते हैं और न तो उन्हें मेरे आदमियों का और न ही दूसरी टोलियों के अन्य आदमियों का नाम मालूम है।'')

इस तरह सैन्य विश्लेषक ऐन्थनी कोर्ड्समैन इराक में अमरीका द्वारा विद्रोह दमन के प्रयासों का एक ठण्डा और समग्र मूल्यांकन करते हुए इस नतीजे तक पहुँचते हैं कि ''नेटवर्क केन्द्रित युद्ध'' का ''मानव-केन्द्रित युद्ध ने पत्ता साफ कर दिया है''। (हो सकता है कि संवेदक यू.ए.वी. तथा आई.एम. एण्ड आर. (सूचनाओं की खोज और पुनर्प्राप्ति) इराक में भी वियतनाम और दक्षिणी लेबनान की तरह काफी महत्व रखते हों मगर ये सब कोई ''जादुई गोलियाँ'' नहीं हैं। वियतनाम में उपेक्षित पड़े भू-संवेदक कार्यक्रम का एक समय इसी तरह ''जादुई गोली'' के रूप में डंका पीटा जा रहा था, लेकिन वहाँ हारने में अमरीका को एक साल से भी कम समय लगा।) अमरीकी सिद्धान्तकारों के लिए और अधिक विचलित करने वाली बात है 2006 में हिज्बुल्ला द्वारा दक्षिणी लेबनान की सफलतापूर्वक हिफाजत, जिसने यह प्रमाणित कर दिया कि सुसंगठित छापामार सेना उच्च तकनीक वाले पश्चिम को उनके ही खेल में पराजित कर सकती है। हिज्बुल्ला ने इजरायल के उपग्रहों और उड़ान भर कर जासूसी करने वाले उपकरणों को अपने गुमराह करने वाले प्रलोभनों के जरिये भौंचक्का कर दिया, सिग्नल तकनीक की काट विकसित करके गुप्त कोड वाले रेडियो संचार में सेंध लगा ली और केवल इजरायली सैनिकों द्वारा अपने मोबाइल फोन पर अपने परिवारों से की जा रही बातचीत को सुनकर ही महत्वपूर्ण सामरिक सूचनाएँ प्राप्त कर

लीं। सम्भवत: ईरान द्वारा उपलब्ध करायी गयी सिग्नल जाम करने वाली तकनीक से इन्होंने इजरायली जलपोतों पर लगायी गयी मिसाइल भेदी मिसाइलों को बेकार कर दिया जिसका परिणाम था कि हिज्बुल्ला ने कम से कम एक इजरायली युद्धपोत को बेकार कर दिया। हालाँकि इजरायली इलेक्ट्रॉनिक जासूसी अमरीकी सेनाओं के लगभग बराबर या उनसे भी श्रेष्ठ है, फिर भी कोर्ड्समैन पाते हैं कि, ''आधुनिक तकनीक इस तरह के संवेदक, सुरक्षाकवच और हथियार नहीं उपलब्ध कराती जिनके दम पर कोई कुशल शहरी सैन्यबल (छापामार) यदि इजरायल या अमरीका को अपनी शर्तों पर लड़ाई लड़ने को मजबूर करें तो उनसे निपटा जा सके।

थल सेना के उपकरण

सैद्धान्तिक ''भू-योद्धा'' – एक ऐसा थल सैनिक जो मिनी कम्प्यूटर GPS रिसीवर, यानि युद्धस्थल के हाई-फाई और वीडियो मॉनीटर से युक्त एक 17 पौण्ड वजन वाले उच्च उपकरण से लैस हो। इसे अभी रणक्षेत्र में उतारा नहीं गया, फिर भी इराक में मई 2006 तक इन पहनने योग्य उपकरणों में से कुछ वस्तुत: सीमित पैमाने पर ही सही, आखिरकार रणक्षेत्र में प्रकट हो गये थे। इस अपरीक्षित प्रणाली के अलावा, इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि तकनीक अमरीकी अग्रिम पंक्ति के सैनिक के लिए कोई खास बदलाव नहीं लायी है।

वियतनाम युद्ध को 30 साल हो गये लेकिन अमरीकी थल सैनिक आज भी M-16 स्वचालित राइफलों पर निर्भर है, जिसे वे आज भी छापामारों द्वारा आमतौर पर इस्तेमाल की जा रही AK-47 से खराब मानते हैं। (इराक में सैनिक बताते हैं कि M-16 की जाम हो जाने की कुख्यात समस्या रेत में और बढ़ जाती है।) अमरीकी सैनिक द्वितीय विश्व युद्ध से ही मध्यम मार वाली M240 मशीनगनों को ज्यादा पसन्द करते हैं जोकि हरफनमौला और बेहद गतिशील हथियार हैं जिसने वियतनाम युद्ध के दौरान प्रचलित M60 का स्थान काफी हद तक ले किया है। साथ ही वे उसी जमाने से भरोसेमन्द M2.50 बोर भारी मशीनगनों के भी कायल हैं और जिसका वर्णन करते हुए एक नौसैनिक ने ''युद्ध का अन्त कर देने वाला अन्तिम हथियार'' तथा ''उपलब्ध सभी हथियारों में सबसे ज्यादा ललचाने वाला'' बताया। SMAW (कन्धे पर से छोड़ा जाने वाला बहुउद्देशीय प्रक्षेपास्त्र) जैसे राकेट लांचरों में ऐसी तकनीक इस्तेमाल होती है जो दशकों पुरानी है और प्रतिरोध योद्धाओं द्वारा इस्तेमाल तकनीक से बेहतर नहीं है। (कन्धे पर रखा जाने वाला एक ताप रासायनिक प्रक्षेपास्त्र SMAW-NE, जिसका वैसे आज-कल युद्ध क्षेत्र में ज्यादा इस्तेमाल नहीं हो रहा है, एक रिपोर्ट के अनुसार 2004 में फालूजा पर कब्जे के दौरान पूरी की पूरी इमारतों को गिराने और उनके भीतर रह रहे लड़ाकों या नागरिकों को दबा कर मार देने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। फिर भी ''उसकी कम भेदन क्षमता के कारण हमलावरों को इमारत की दीवार में छेद बनाने के लिए एक द्विउद्देशीय राकेट दागना पड़ता था।''

थल सैनिकों के उपकरणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नयी खोज कोई हथियार नहीं है। रात में देखने और इन्फ्रारेड संवेदन के क्षेत्र में हालिया प्रगति से अमरीकी सेनाओं को अँधेरा होने के बाद भी एक खास तरह का फायदा होता है। खास करके रात में पहने जाने वाले चश्मों में अब दृश्यता बढ़ाने वाली आने वाले समय की तकनीक लगायी जाती है, जो कि प्रकाश की बहुत थोड़ी मात्रा को भी बढ़ाकर किसी वस्तु को दृश्य सीमा में ला देती है। उसी नौसैनिक के शब्दों में; ''हमारे लोग अँधेरे में देखते हैं और रात के स्वामी होते हैं। शाम की प्रार्थना के बाद शत्रु का हमला बहुत कम होता है। ज्यादा से ज्यादा शत्रुओं को रात में शिकारी टोलियाँ अपनी गश्त के दौरान टपका देती हैं।'' वर्तमान में प्रतिरोध योद्धाओं के पास साहस और विवेक के अलावा इस रात्रि-दृष्टि की कोई काट नहीं है। इस उन्नत रात्रि-दृष्टि तकनीक के हथियारों के कालाबाजार में पहुँच जाने के बाद शायद यह अमरीकी श्रेष्ठता भी समय के साथ खत्म हो जायेगी।

अमरीकी सेनाओं द्वारा अधुनातन ''अवरोधक'' नाम के शरीर कवच को भी काफी सराहा जाता है। तुलनात्मक रूप से हल्का (हालाँकि ''नरक से भी गर्म'') 6 पौण्ड का चीनी मिट्टी की कलई किया हुआ यह उपकरण इसके निर्माताओं के दावों पर खरा उतरते हुए लगातार AK-47 की गोलियों और छर्रे वाले हल्के गोलों को रोकता रहता है। युद्ध क्षेत्र के लायक परिष्कृत दवाओं के साथ मिलकर निस्संदेह इस शरीर कवच ने अनेक अमरीकियों की जान बचायी है और इस तरह उनका मनोबल भी बढ़ाया है। फिर भी, चूँकि यह कवच केवल धड़ की सुरक्षा करता है इसलिए यह छिपकर चलायी गयी गोलियों और परिष्कृत विस्फोट युक्तियों के हमलों की विकलांगकारी चोटों की संख्या को बहुत कम नहीं कर पाया है। इसलिए यह मारो और भागो के परम्परागत छापामार रणकौशल के सामने कोई अजेय बाधा नहीं खड़ी कर पाया है। (इराक जाने वाली अमरीकी सेनाओं में घायलों और मृतकों का अनुपात 8:1 है; वियतनाम में यह 3:1 था। इराक में लगभग 3000

अमरीकी सैनिक मारे गये हैं जबकि 20,000 से ज्यादा घायल हुए हैं। इन घायलों में से आधे सैनिक ही वापस सेना में आये। सैन्य विश्लेषक स्वीकार करते हैं कि कार्रवाईयों की तीव्रता का ज्यादा बेहतर पैमाना घायलों की संख्या है ना कि मृतकों की संख्या। सैनिकों का मरने के बजाय घायल होना हालाँकि अपने देश की जनता के मनोबल को कम प्रभावित करता है, मगर शुद्ध सैनिक दृष्टिकोण से देखें तो इसमें कोई खास अन्तर नहीं है। प्रतिरोध योद्धा युद्ध में मृत सैनिकों की संख्या को लेकर अमरीकी चिन्ता को उसकी कमजोरी के रूप में देखते हैं। एक तरफ पश्चिमी सेनाओं को अपने टूटे हुए मनोबल के साथ आपने सैनिकों की जान बचाने के लिए असाधारण प्रयास करने होंगे तो दूसरी ओर छापामारों में अपने उद्देश्य के लिए बलिदान का जज्बा ज्यादा नुकसान होने के बावजूद उनके मनोबल को बनाये रखेगा।)

कपोल-कल्पित दैत्य

मध्यपूर्व में पाँच वर्षों से चल रहे युद्ध के बावजूद वे अनोखे नये हथियार जिनके अमरीकी शस्त्रागार में होने का दावा किया जाता था, युद्ध क्षेत्र में कहीं प्रकट नहीं हुए। इनमें से कुछ हथियार अभी भी विकसित किए जा रहे हैं; कुछ तैयार हो चुके हैं, पर राजनीतिक या रणकौशल सम्बन्धी कारणों से इस्तेमाल नहीं किये गये जबकि कुछ का तो पत्रकारों की कल्पनाओं या अन्धाधुन्ध प्रचारों से इतर कभी अस्तित्व ही नहीं रहा होगा। आम तौर पर कपोल-कल्पित इन हथियारों का सरसरी तौर पर पुनरावलोकन करना उपयोगी होगा।

युद्ध पूर्व की आशंकाओं के बावजूद अगर कुछ अत्यन्त सीमित मामलों को छोड़ दें, तो अभी भी अमरीकी ''दीवारों के आरपार'' देख पाने में अक्षम हैं। छिपे हुए मानव लक्ष्यों को ढूँढ पाने की अमरीकी सेना की अक्षमता का अप्रैल 2004 के फालूजा कब्जे के दौरान ही खुलासा हो गया था, जहाँ अमरीका ने एक-एक घर से लड़ाई लड़ने से परहेज किया और जिन इमारतों में प्रतिरोध योद्धाओं के छिपे होने की आशंका थी उनपर हवाई हमले करके या कन्धे से छोड़े जाने वाले राकेट दागकर उन इमारतों को मलबे में तब्दील कर दिया। रिपोर्ट है कि घरों की तलाशी के उद्देश्य से बनायी गयी हाथ में थामने वाली एक रडार प्रणाली अब जाकर इराक में इस्तेमाल के लिए तैयार हुई है। इससे अमरीकी सैनिक कंक्रीट की दीवार के पार छिपे मुनष्यों को खोज लेंगे, लेकिन इसकी क्षमता केवल 50 फीट है। इसके अलावा इस उपकरण को हाथ में थामे हुए उस दीवार से सटाना होगा जिसके आरपार देखना हो। मतलब यह कि पूर्ण सुरक्षित गुरिल्ला छापामार इलाकों में इसका इस्तेमाल आत्मघाती होगा।

ई-बम निस्संदेह वास्तविक है जो ऐसा विस्फोटक हथियार है जिसे तीव्र विद्युत चुम्बकीय तरंगें पैदा करके विद्युत परिपथों को नाकाम कर देने के लिए तैयार किया गया है। फिर भी अब तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि अमरीका ने युद्ध में ई-बमों का इस्तेमाल किया हो। (इराक पर 2003 के हमलों के दौरान इराकी संचार को नष्ट करने के लिए ई-बमों का नहीं बल्कि सूक्ष्म निर्देशित विस्फोटों का इस्तेमाल किया गया था) चूँकि ई-बमों के प्रभाव की सीमा विश्वसनीय तरीके से नियन्त्रित नहीं की जा सकती इसलिए आम जनता के खिलाफ रणनीतिक रूप में इस्तेमाल के अलावा कम तीव्रता वाले छापामार युद्ध में उपयोग के लिए यह सारत: बेकार है। (आज के हालत में इराक या अफगानिस्तान पर सामरिक ई-बमबारी का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि इन दोनों ही देशों में नष्ट किये जाने के लिए ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक ढाँचा बचा ही नहीं है।) ''असन्तुलित युद्ध – पश्चिमी महाशक्तियों तथा तीसरी दुनिया के देशों या वहाँ के अनियमित लड़ाकों के बीच होने वाले युद्ध को पूँजीवादी विचारकों द्वारा दिया गया नाम – की स्थिति में ई-बम के खुद पश्चिम के लिए ही खतरा होने की चर्चा होती रही है। ई-बम बनाने के लिए आवश्यक तकनीक इतनी आसान है कि आतंकवाद विरोधी अमरीकी विशेषज्ञों के कान खड़े हो गये हैं: ''विद्युत प्रणाली, कम्प्यूटरों और दूरसंचार पर हमला करोगे तो आधुनिक समाज की आधारशिला ही नष्ट हो जायेगी। तीसरी दुनिया द्वारा प्रायोजित आतंकवाद के युग में ई-बम एक महत्वपूर्ण समकारक है।''(भारत उन देशों में से एक है जिनके बारे में माना जाता है कि वे ई-बमों का परीक्षण कर चुके हैं।) इस दौरान छापामार दस्ते ई-बमों से अपनी हिफाजत कहीं ज्यादा आसानी से कर सकते हैं; सम्भावित लक्ष्यों को निम्न तकनीक वाली धातु की चादरों का खोल ओढ़ा कर मजबूत किया जा सकता है, जिन्हें फैराडे का पिंजरा कहते हैं। इस तरह ई-बम एक ऐसा उच्च तकनीकी आयुध है जो मजबूतों की तुलना में कमजोरों के लिए कहीं ज्यादा फायदेमन्द है।

इससे उलट, लेजर आयुधों पर केवल धनवान देश निवेश करने में समर्थ होंगे। (स्टार वार्स के नाम से प्रचलित सामरिक प्रतिरक्ष पहल के लेजर आधारित अवयवों की कुल लागत वर्ष 2015 तक करीब 194 अरब डालर

आँकी गयी।) मुख्यत: मिसाइल प्रतिरक्षा की दृष्टि से अमरीका अन्तरिक्ष आधारित उच्च ऊर्जा लेजर प्रणालियों की अनेक किस्मों पर सक्रियतापूर्वक शोध कर रहा है, किन्तु सच्चे अर्थो में अंतरिक्ष से धरती पर मार करने वाले लेजर गोलों के बनने में अभी कई दशकों की देर है। युद्ध क्षेत्र की लेजर बन्दूकों का विकास अमरीका सहित कई देशों ने किया है, जो शत्रु सैनिकों को अन्धा बना देती हैं। किन्तु अभी किसी भी देश ने उन्हें इस्तेमाल करने की हिम्मत नहीं की, सम्भवत: इसलिए कि अन्तरराष्ट्रीय कानून के तहत वे पूरी तरह प्रतिबन्धित हैं फिर भी ''निर्देशित ऊर्जा'' किरणों की एक नयी श्रेणी का जल्द ही इराक में इस्तेमाल किया जायेगा। दावे के मुताबिक यह मानवीय हथियार विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा का एक किरण पुंज फेंकता है, जो दूर से अपने मानव लक्ष्यों के मांस को गरम कर देता है और त्वचा के नीचे की आर्द्रता को तत्काल गरम कर उनमें असह्य ज्वलनशील दर्द की अनुभूति पैदा कर देता है। यह किरण पुंज अन्धा भी बना सकता है और अनुवांशिक खामियाँ भी पैदा कर सकता है। सैन्य ट्रकों पर लादने के लिए तैयार किये गये निर्देशित ऊर्जा हथियारों को सीधी लड़ाई में नहीं बल्कि भीड़ नियन्त्रित करने में इस्तेमाल किया जाता है – ''खास करके अमरीकी काले लोगों की क्रुद्ध भीड़ की परिस्थिति''– जिस दौरान अमरीकी सैनिकों को क्रुद्ध नागरिकों के विरुद्ध लड़ना पड़ता है। इस तरह के एक हथियार, रोथियांस एक्टिव डिनायल सिस्टम के बारे में सूचना है कि यह इराक में इस्तेमाल होने के लिए तैयार है, लेकिन प्रतिरक्षा विभाग के अधिकारी ''जनता की अनुभूति'' (जिसका असली अर्थ हैं इराकी बच्चों और गर्भवती महिलाओं को यातना से तड़प-तड़प कर चीत्कार करते हुए दिखाना) और ''कानूनी पहलू'' (जिसका असली अर्थ गैरकानूनी पहलू'' है) को लेकर चिन्तित हैं।

इस तरह की खबरें अब भी

जनरल, तुम्हारा टैंक बहुत ताकतवर है
यह जंगलों को रौंद सकता है
और सैकड़ों लोगों को
कुचल सकता है
लेकिन इसमें एक कमी है
इसे एक ड्राइवर चाहिए।
जनरल, तुम्हारा यह बमवर्षक
बहुत शक्तिशाली है
आँधी तुफान से भी तेज भागता है
और हाथी से भी ज्यादा वजन ढोता है
लेकिन इसमें एक कमी है
इसे एक मिस्त्री चाहिए।
जनरल आदमी भी बड़े काम की शै है
वह उड़ सकता है
और मार सकता है
लेकिन उसमें भी एक कमी है
वह सोच सकता है।

–बर्तोल्त ब्रेख्त

समय-समय पर उड़ती रहती हैं कि अमरीका ने अफगानिस्तान और इराक में नृशंसता ढाने के लिए भयावह गुप्त हथियारों का इस्तेमाल किया। उदाहरण के तौर पर फालूजा प्रकरण के बाद उसके प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि अमरीका ने वहाँ एक रहस्यमय जानलेवा हथियार का इस्तेमाल किया जिसने हमले के शिकार व्यक्ति के मांस को पिघला दिया, जबकि उसकी हड्डियाँ और कभी-कभी तो कपड़े भी जस के तस रह गये। रिपोर्ट सही थी, मगर यह हथियार न तो नया था और न ही गुप्त जैसा कि इटली के एक टेलीविजन वृत्तचित्र में रहस्योद्घाटन किया गया और इसी वजह से बाद में स्टेट डिपार्टमेण्ट के एक पदाधिकारी ने स्वीकार किया कि अमरीका ने जानबूझकर योद्धाओं और पकड़े गये नागरिकों को जिन्दा जलाने के लिए सफेद फास्फोरस का इस्तेमाल किया था, जो स्वत: ज्वलनशील रासायनिक पदार्थ होता है और जिसका प्रयोग युद्ध क्षेत्र को प्रकाशित करने के लिए किया जाता है। (मनुष्यों के विरुद्ध रासायनिक हथियार का इस्तेमाल एक युद्ध-अपराध है।) कुल मिलाकर किसी उच्च तकनीक वाले ''गुप्त हथियार'' का विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला है; बल्कि अभिलेख संकेत करते हैं कि अमरीका अब भी अपने परम्परागत हथियारों के विशाल व बहुप्रचारित जखीरे के ही बल पर नृशंसता ढाने में सक्षम बना हुआ है।

निष्कर्ष

मध्यपूर्व में वर्तमान अमरीकी दुविधा IED (परिष्कृत विस्फोटक उपकरणों) से बचने को लेकर है, जो अमरीकी आपूर्ति काफिले द्वारा इस्तेमाल की जा रही सड़कों के नीचे छिपाये गये घर में बनाए गए बम हैं। इराक में IED हमले जुलाई 2003 में शुरू हुए और उसके बाद से उनकी संख्या और घातकता बढ़ती गयी। 2005 में अलग-अलग 10,953 IED हमले दर्ज किये गये जिनसे 674 मौतें (युद्ध में हुई कुल मौतों की 61.6%) हुई हैं, और 4256 घायल (युद्ध में कुल घायलों का 71.6%) हुए हैं। एक छापामार हथियार के रूप में

IED कितने कारगर हैं इसे केवल हताहतों की संख्या से नहीं नापा जा सकता। ये सस्ते, आसानी से बनाये जाने वाले गुप्त विस्फोटक अन्य स्थानों से मिलने वाली सैन्य मदद को ध्वस्त कर देते हैं, सैनिकों के आवागमन को सीमित कर देते हैं और सैनिकों के मनोबल को तोड़ देते हैं। IED के गम्भीर खतरे को पहचानते हुए अमरीका ने उच्च तकनीक वाले प्रतिरोध उपायों की एक पूरी शृंखला तैयार की, लेकिन लगातार बढ़ रहे प्रतिरोध द्वारा ये एक-एक करके बेकार कर दिये गये। शुरुआती IED का विस्फोट तार और बैटरी के संयोजन द्वारा किया जाता था, विद्रोही सड़क के किनारे इन्तजार करते थे और जब अमरीकी वहाँ से गुजरते थे तो वे इन आदिम उपकरणों का विस्फोट कर देते थे। कुछ समय बाद, अमरीकी टुकड़ियाँ, धमाके के बाद विस्फोट करने वाले को खोजने और मार डालने में सफल होने लगीं। इस वजह से विद्रोहियों ने तारों की जगह रेडियो सिग्नल इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। पेण्टागन ने बदहवास होकर जल्दी ही काफी लागत से अपनी सेनाओं को सिग्नल जाम करने वाले यन्त्र से लैस किया जो कि बसन्त 2005 में पूरा हुआ। विद्रोही तेजी से अपने को नयी परिस्थिति में ढालते हुए IED को सतत रेडियो तरंगे भेजने लगे उनका सिग्नल रोका या जाम किया जाता तो IED में विस्फोट हो जाता। इसका हल? सिग्नल को खोजिए और यह सुनिश्चित कीजिए कि यह सतत् बना रहे। समस्या: सिग्नल गुप्त लिपि है अब अमरीकी उड़ान भरते हुए ऐसे सिग्नलों के रहस्य को जानने और उसी सिग्नल की नकल तैयार करने की समस्या से जूझ रहे हैं। मगर अब तक उन्हें कोई सफलता नहीं मिली है। यह कहानी प्रतिरोधक बलों की उस फुर्ती और लचीलेपन की जिन्दा मिसाल है, जिससे उन्होंने उच्च तकनीक युद्ध के अनुरूप अपने को ढाल लिया है। सस्ती और बड़े पैमाने पर उपलब्ध तकनीक के साथ मानव बुद्धि का इस्तेमाल करके प्रतिरोध योद्धाओं ने अमरीकी शस्त्रागार के कुछ सर्वाधिक परिष्कृत उपकरणों को परास्त करने का रास्ता निकाल लिया है। इस बीच अमरीकी विश्लेषक, जो परम्परागत रूप से तीसरी दुनिया के अपने शत्रुओं को कमतर आँकने की प्रवृत्ति के शिकार हैं, गुरिल्ला छापामारों की सीखने, संवाद कायम करने और अपने को ढालने की श्रेष्ठ योग्यता को स्वीकार करने को बाध्य हो गये हैं। सेना की नयी बगावत-विरोधी नियमावली सिखाती है कि ''एक कुशल बगावत विरोधी को अपने को ढालने में कम से कम उतना तेज होना चाहिए जितना कि उसका विरोधी।''

हालाँकि जिस मामले में एक उच्च तकनीक वाली सेना को गुरिल्ला छापामारों से बराबरी करने की उम्मीद नहीं, वह है उन छापामारों का सर्वाधिक ताकतवर स्रोत जनता का सहयोग और संरक्षण। वे रणकौशलात्मक पहलकदमियाँ जिन्होंने विश्व की सबसे ताकतवर सैन्य मशीन को अटका दिया है, हर मामले में लोकप्रिय जन समर्थन और जनसहयोग की बुनियाद पर टिकी है। कोई सुसंगत राजनीतिक कार्यक्रम न होने के बावजूद मध्य-पूर्व की जनता ने विदेशी कब्जे का प्रतिरोध करने की जरूरत के बारे में कोई सन्देह नहीं किया, और अमरीकी युद्धशैली द्वारा ढहायी गयी बेइन्तहा मानव बलियों के बावजूद अडिग रही। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने उच्च तकनीकी साजोसामान से या अमरीकी गोला बारूद की लगातार बढ़ रही मारक क्षमता से डरकर झुकने से इनकार कर दिया। उनके साहस और जिद ने सेवानिवृत्त मेजर जनरल राबर्ट स्केल्स जूनियर द्वारा दृढ़तापूर्वक कही गयी, इस सैन्य सच्चाई को सही साबित किया है: ''यदि आपका शत्रु आप को देख सकता है और आपको अपने हथियारों की जद में ले सकता है तो न तो उसे आपको खोजने के लिए UAV की जरूरत है, न ही उसे आप को मारने के लिए किसी सूक्ष्म निर्देशित आयुध की जरूरत है। उसे बस 13 सेण्ट कीमत वाली एक गोली की जरूरत है।'' ▣

अनुवादक:
शैलेष शरण शुक्ल

['रिसर्च यूनिट फॉर पॉलिटिकल इकोनॉमी' मुम्बई की पत्रिका 'आस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियाज इकोनॉमी' अंक 42 में प्रकाशित लेख का हिन्दी अनुवाद। पाठकों की सुविधा और लेख के प्रवाह को ध्यान में रखते हुए इसके फुटनोट्स यथास्थान कोष्ठक में दिये गये हैं और सन्दर्भों को हटा दिया गया है। हम उपरोक्त पत्रिका के प्रकाशक और सम्पादक के आभारी हैं।]

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

ýns"k&fons"k dsvad&1 dsckjesa gesa ikBdksa ds 86 vkSjvad&2 dsckjesa 14 i=feys gSaA

tks i=gesa feys gSa mudsF;ksa dk rk;jk cgqr O;kid gSA dbZ i=lUrqfyr gSa vkSjxq.k&rks"k foospu djrs gSa tcfd dbZ cgqr gh vlUrqfyr gSaA tSls] fdlh ikBdus ,d dfork fy[kh sthgS] dfork izfrf©kdsi{kdksFkksM+k&FkksM+k Nwh rks gS i jewyr% og dfo ch viuh ckr gSA fdlh us ,dyEck cDrO; ns fn;k gS tks O;oLFkk ds izfr rmlds vlUrks"k dks izdV djrk gS] ysfduns"k&fons"k dsys[kksa ;k fVi if.k;ksa ls lhèks dksbZ dkUrk ugha j[krk A fdlh us dsoy iz"kalk dh gS rks dbZ N, sls Hkh i=gSa ftuesa fuUrk gh fuUrk gSA ,d i=rks uh;ru fuUrk dk gh gSA dbZ ikBdksa us dbZ ldyiwVs gSa A cgqrksa us lqjko Hkst sgSA cgqr ls yksxksa us if=dk ds rdukdh i{k i jHkh viuh jk; j[kh gS vkSj lqjko fn;s gSa A dbZ ikBdksa us vkSjT;krk llexzh dh vis{kk dh gSA elyu] dbZ uhrh tk;s] iqLrdksa vkSjfQYeksa ds ch leh{kk rh tk;s] bR;kfnA ysfduc cgqla"k i=,sls gSa tks if=dk ds ys[kksa vkSjfVi if.k;ksa ds xq.kksa"kksa dk fo spu djrs gSaA

dbZ fey dj ges a ftUnxh Hkh i=feys gSa] cos ys[kksa vkSjlEikndksa fy, cgqr gh egRoiw.kZ gSaA ge us mls dkQh dbZ N lh[kk gSA ikBdksa us tks vkyk spuk, ¡Hkst h gSa] much lHkh vaNh vkSjlgh dkdksa ds ge us viuh {kerk Hkj ykxwdjus dk iz;kl fd;k gS vkSjvkxs Hkh djsaxsA

ysfduge kjh lhek, ¡ gSa vkSj;Fkkl EHko iz;kl ksa ds dkj.k ge ikBdksa ds ch lHkh vis{kk, ¡ iwjh ugha dj ldrsA

bl vad esa ge igys vad ij fey h izfrf©kdk vksa esa ls 15 vkSjnwljs vad ij fey h izfrf©kdk vksa esa ls rhu dks izdkf"kr dj jgs gSaA bu i=ksa ds pquko dk vkèkkj gS muds T;knk rh[kk gksus ds dkj.k vkSjmuds vkyk spuk ds chèkkj T;knk rst gksus dhA

ge sa ,d ,slk Hkh i=fey k gS ftlesa dsoy fuUrk gSA ml i=dk ge Lokxr djrs gSa] ysfduml s viuh if=dk esa Nki ugha ldrsA blds dkj.k ;g gS fd log i=cnuh;rh ls fy[kk gqvk gSA og fdlh gSd (efj;y W~Vw) ;k mlds Hkrhts dk gS tks Hks M+ch [kky igudje Shku esa mrjk gSA vxj og [kky dks mrkjdj jk eus vk;s rks ge mllseShku esa my>us ds fy, rS;kj gSa A fuUrk ls ges a dksbZ Hk;ugha gSA dbZ dk x;k gS fd ^^fuUnk fu;a js jkf[k;s] vk;xu dbZ Vh Nd;A** ge bls Bhd le>rs gSa A vxj dksbZ ,slk lkekftd dke djrk gS rks mls u flQZ xq.k&rks"k foospu vkSjvkyk spuk lqus ds fy, rS;kj jguk pkfg, cfYd fuUnk Hkh lquuh pkfg, vkSjvxjmlesa lR;dk va'k Hkh gS rks xEHkhjrk iwoZd ml ij fopkj djuk pkfg,A

,d ikBdus lEikndk vkSjys[kdksa ij fopkj ksa ds ch rkuk'kkgh vkSjnkn[kh jhdk vkjksi yxk;k gS A bl lEcU/k esa ge Fkks M+s sesa bruk gh dgu k pkgsaxs fd fdlh ikBd ij vkjksi dk fdlh ys[kd us fopkj ksa ds ch rkuk'kkgh vkSjnkn[kh jhugha dh gS A ys[kd us bfrgkl esa ,slk dksbZ mnkgj.k ugha feyrk A ,slk gksus dk Hkh lEHkoS tcgFkesa jktuhfrd nyksa ds chp ml le; Hkh bldh lEHkkouk cgqr de gks rh gS A ikBd fdlh Hkh ys[kd dks [kkfjt dj ldrk gS vkSjbl ekeys esa ml ds ch rkdr ges'kk gh ys[kd ls T;knk gks rh gS A dM+s ls dM+s ys[kd dks u i<+dj ikBd ml s ml dh vlyh gSfl;r dk vglkl dj dk ldrk gS A ys[ku dh lQyrk i<+s tk us esa gS vkSj i<+uk u i<+uk ikBd dk v{kq..kvfêkdk jgS A fdlh dks i<+us ds fy, et ow jugha fd;k tk ldrk A

nwljs vad ds dkj esa ge sa 14 i=izkIr gq, gSa A gs ldk gSfd igys vad ij vk;h izfrf©kvksa ds ugha Nki k x;k] bl ds pyrs ,slk gqvk gs fd i=ksa ds la[;k ;dk;d 86 ls ?kVdj 14 jg x;h A ,slk Hkh lEHkoS fd vkxs ds vad ksa ds chxq.kkRedk e gqvk gks ;k ikBdksa us izfrf©kHkstus esa lqfuf'pr[k;hdgSA tks Hkh gks] ge ikBdksa dh bl ij jk; tku k pkgsaxsA

i=ik;kstd vad esa Nik jgs gSa] bl dk ge sa vQlksl gSA ,slk ugha gS fd ge ,slk gh pkgrs Fks] ysfduge kjh dbZ Netow fj;k¡ Fkha A bl ds dkj.k vad ksa esa ikBdksa ds i=fu;fer Nirs jgsaxsA

ikBdksa ls gekjk dk;Edk jvkxzg gS fd los iwjs vad] vyx&vyx ys[kksa vkSjfVi if.k;ksa ds dkj esa vkSjif=dk ds lHkh i{kksa ij viuh cs dk dizfrf©kgesa vo';Hkst sa rkfd lackn dk flyflyk pyrk jgsA p

देश-विदेश अंक एक के बारे में पत्र

● पत्रिका के लेख महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, लेकिन इसके छोटे कलेवर के बावजूद इसमें साम्प्रदायिकता और धार्मिक अन्धविश्वासों के विरोध की भी सामग्री सम्मिलित की जानी चाहिए। यज्ञ, भगवती जागरण, भजन-कीर्तन आदि का दिन-प्रतिदिन बढ़ता कारवाँ इस बात का प्रमाण है कि धर्म के ठेकेदारों ने भोली जनता के विचारों पर बुरी तरह कब्जा कर लिया है। धर्म-व्यवसायियों के ये कार्यकलाप जनता की चेतना को कुन्द कर उसे भाग्य के भरोसे रहने को उद्यत कर रहे हैं। ऐसे में लगातार बढ़ रही साम्प्रदायिक शक्तियों के कमजोर पड़ जाने का भ्रम पालना बड़ा ही खतरनाक होगा।

-सत्यव्रत आर्य, भलुअनी, देवरिया।

● यह जरूरी है कि आम जनता तक ऐसी जानकारियाँ पहुँचाने के लिए पत्रिका का प्रचार-प्रसार क्षेत्र बढ़ाया जाये। साथ ही उन तमाम समस्याओं का भी जिक्र किया जाये, जो अधिकांश लोगों को प्रभावित करने के साथ-साथ इस देश की जड़ों को भी खोखला कर रही हैं।

मोहित, बड़ौत।

● देश-विदेश का पहला अंक अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में बहुत हद तक सफल रहा। इसमें काफी महत्वपूर्ण जानकारियाँ, विचार और अपील थी जो आज के मीडिया में बहुत मुश्किल से ही मिलती है।

सम्पादकीय बहुत ही प्रासंगिक था, उसका प्रवाह और अन्तरवस्तु दोनों ही बहुत अच्छे लगे। कुछ दार्शनिक बातें बहुत प्रेरणास्पद थीं। माराडोना की वापसी लेख बहुत ही प्रेरक और रोचक था। क्लीनिकल परीक्षण लेख मुखौटे लगाकर आने वाली कम्पनियों को नंगा करता है और जनता को सावधान करने की एक ईमानदार कोशिश है। 'किसानों की आत्महत्याएँ' और 'आतंकवाद' पर लेख आँख खोलने वाले हैं तथा देश की दूसरी तस्वीर पर विचार करने को मजबूर करते हैं।

रोजा पार्क्स ने मुझे अमरीकी समाज में मौजूद भेदभाव का अहसास करवाया। मैं हैरान हूँ कि यह स्थिति 1955 तक वहाँ बनी हुई थी। पत्रिका का हर लेख एक ही बात महसूस करवाता है कि दुनिया में दो तरह के लोग हैं – शोषक-शोषित, शासक-जनता, उद्योगपति-मजदूर, अमीर-गरीब। इनमें से पहले दर्जे के लोग परजीवी की तरह इस व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे हुए हैं, इसलिए जो भी व्यक्ति सच का साथ देता है, मुक्ति चाहता है, उसकी राह इतनी आसान नहीं है। उसे कड़ी मेहनत करनी होगी।

इसलिए हमारी एकमात्र और सबसे बुनियादी जरूरत है हमारी एकता। ये ऊपर वाले अपने नीचे वालों को बाँटकर रखना चाहते हैं क्योंकि जब तक यह बँटवारा रहेगा, उनका अस्तित्व बना रहेगा। आज का मीडिया इस ऊपरी वर्ग के हितों के अनुरूप हर बात परोस रहा है, ऐसे में सच्ची बातों को सामने लाने और मुश्किलों का समाधान निकालने में यह पत्रिका एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है और मुझे उम्मीद है कि देगी।

मेरा सुझाव है कि पत्रिका में विश्व राजनीति पर नियमित रूप से एक लेख आना चाहिए, जैसे अमरीका के लातिन अमरीका, उत्तरी कोरिया और वियतनाम अदि में कुकृत्यों पर। दूसरे, पत्रिका में सुअरबाड़ा और लाशों के ढेर जैसे भावनात्मक शब्दों को कम से कम इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि मेरे अलावा जिसने भी यहाँ यह पत्रिका पढ़ी या सरसरी तौर पर पलटकर देखी उसे अपने चारों ओर एकदम आग महसूस हुई और उससे घबराकर वह वापस अपने खोल (कम्फर्ट जोन) में लौट गया। इसलिए कम से कम शीर्षकों में ऐसे शब्द देने से बचा जाये तो बेहतर होगा। हमें तार्किक ढंग से और संयत भाषा में अपनी बात कहनी चाहिए। कुल मिलाकर बहुत अच्छा प्रयास है।

विश्वदीप सिंह, मुरथल (सोनीपत)

● पत्रिका की साज-सज्जा और लेख इतने सरल हैं कि कोई भी आदमी पढ़कर उन्हें आसानी से समझ सकता है, लेकिन इसे और ज्यादा मर्मस्पर्शी बनाना होगा जो इनसान के अन्दर सोयी हुई शक्ति को एक नया मोड़ और दिशा प्रदान करे।

मैं यह जानना चाहता हूँ कि पत्रिका में जिन बातों का खुलासा किया गया है वे आपको कहाँ से पता चलीं। अखबारों और अन्य पत्र-पत्रिकाओं में तो इन्हें नहीं दर्शाया जाता। पत्रिका पर दिये गये बुश के फोटो के ऊपर World # 1 Terrorist लिखने का क्या मतलब है? क्या राष्ट्रपति बुश

ही सबसे बड़ा आतंकवादी है, या फिर आतंकवाद का जन्मदाता?

पत्रिका की निरन्तरता बनी रहनी चाहिए क्योंकि इस समय यही हमारा सबसे बड़ा हथियार है। यह हमें ज्ञान और बुद्धि प्रदान करेगी और हमें अपनी गलतियों का अहसास करवायेगी। हमें आज तक यह पता नहीं कि पूँजीपति और नेता आज भी धर्म और जातिवाद के नाम पर हमारे बीच फूट डालकर हमपर शासन कर रहे हैं। अगर हम ऐसी पत्रिकाओं से प्रेरणा लेकर अब भी एकजुट नहीं होते तो हमारी हालत पंख कटे पक्षी जैसी हो जायेगी।

जगपाल कुमार, टिटौली।

● पत्रिका के कवर पर बुश को Terrorist No. 1 बताया गया है। यह एक व्यक्ति को शैतान बताता है न कि साम्राज्यवाद को। इसकी जगह फोटो के ऊपर ''जनता का सबसे बड़ा दुश्मन'' लिखना चाहिए था।

'अमरीकी साम्राज्यवाद के मंसूबे और इराक युद्ध' लेख में ''बस इतना ही, इससे आगे नहीं'' का मतलब क्या यह है कि अब अमरीकी साम्राज्यवाद आगे नहीं बढ़ेगा? आगे लिखा गया है, ''भारतीय शासक वर्ग के क्षेत्रीय चौधरी बनने और अमरीका के विश्व का चौधरी बनने के मंसूबे कभी पूरे नहीं हो सकेंगे।'' इससे लगता है कि जनता इसका विरोध करेगी, लेकिन भारतीय मीडिया साम्राज्यवाद के कब्जे में है और भारत-अमरीका नाभिकीय समझौते के बाद भी जनता में इसका कोई विरोध शुरू नहीं हुआ। अगर आगे भी ऐसा ही चलता रहा तो क्या भारतीय शासकों का मंसूबा साकार नहीं हो जायेगा? इस लेख में तथ्य नहीं हैं। क्या तथ्य देने से इसकी गम्भीरता कम हो जाती।

समाचार-विचार अच्छा स्तम्भ है। इसमें कुछ क्षेत्रीय मुद्दे –पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और उत्तरांचल के समाचार भी होने चाहिए। अगले अंक में गुड़गाँव की घटना और फ्रांस के दंगों का विश्लेषण हो तो अच्छा रहेगा। आँकड़ों के स्रोत दिये जाने चाहिए। क्या कोई ऐसा तथ्य है कि सरकार आदिवासियों से कम कीमत पर जमीन लेकर उद्योगपतियों को ज्यादा कीमत पर बेच रही हो?

रत्नेश, रुड़की

● सम्पादकीय का नया अन्दाज अच्छा लगा। इसमें एक बात खटक रही है। 'बर्बर' शब्द रोमन साम्राज्य के कुलीनों ने एंग्लो सेक्सन, स्लाव इत्यादि यूरोपीय जातियों के लिए कहा था जिन्होंने रोमनों की बर्बरता के खिलाफ विद्रोह किया था। यह शब्द साम्राज्यवादियों के सांस्कृतिक अहंकार का प्रतीक है। क्योंकि इस शब्द की उत्पत्ति की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, अतः एकाध लाइन में कहा जाता कि भारतीय शासकों ने वास्तविक बर्बरों को बुलाया तो ज्यादा ठीक रहता।

समाचार-विचार स्तम्भ सबसे अच्छा लगा। खबरों का विस्तार दमन से लेकर प्रतिरोध तक है। इससे दुनिया की एक तस्वीर उभरती है। 'अमरीकी साम्राज्यवादी युद्ध...' लेख ठीक लगा। 'बोलीविया में राष्ट्रपति चुनाव' लेख के अन्तिम पैरा में 'क्रान्ति की वस्तुगत परिस्थितियाँ' थोड़ा खोलकर समझायी जानी चाहिए थीं। इस तरह की शब्दावली का पत्रिका में कई स्थानों पर प्रयोग है जिससे अर्थ स्पष्ट नहीं होता और पाठक उसे सूक्ति के रूप में ही समझता है। 'क्लीनिकल परीक्षण' लेख अच्छा लगा। 'किसानों की आत्महत्याएँ...' लेख ठीक-ठीक लगा। खबरिया चैनलों ने किसानों की आत्महत्या की खबर को बार-बार असंवेदनशील तरीके से दिखाकर एक रुटीन खबर बना दिया है। इन खबरों को पुनर्प्रस्तुत करने की जरूरत है।

कृषि क्षेत्र में निवेश, खेती के साथ पानी और जमीन के रिश्ते, यहाँ तक कि क्षेत्र-विशेष के स्वाद का मामला, सबकुछ को कैसे प्रभावित करेगा लिखा जाना चाहिए। कृषि पर लेख का यह रूप पहली बार के लिए ठीक है, लेकिन आगे कृषि-संकट के विविध पक्षों को एक-एक करके सामने लाना आवश्यक है। भारत में ही क्यों किसान आत्महत्या कर रहे हैं, इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर एक लेख हो सकता है। या फिर कैसे किसान के साथ पहले प्रकृति जुआ खेलती थी और अब बाजार खेल रहा है और कैसे बाजार ने प्रकृति को और भी निर्मम बना दिया है। भूजल का स्तर निरन्तर गिरना और पम्प-सबमर्सिल पम्प के दुष्चक्र पर लेख दिया जा सकता है। किसी किसान का विस्तृत इण्टरव्यू भी दे सकते हैं।

संस्कृति पर लेख का पहला हिस्सा भारतीय शासकों की भ्रष्ट, पतित और गुलाम मानसिकता से ग्रस्त दशा को अच्छी तरह दर्शाता है, लेकिन इसे स्पष्ट करने के समय लेख फैल गया है। भाषा भी गुत्थी सुलझाने की भाषा की जगह आक्रामक हो गयी है। संस्कृति की समस्या को बहुत ही थिर होकर संयत भाषा में स्पष्ट करने की आवश्यकता है, इससे पाठक को सहूलियत होगी, अन्यथा लेखक का क्षोभ ही

सम्प्रेषित हो पाता है। भारतीय संस्कृति की विद्रूपता की वजहें, चाहे सामन्ती और औपनिवेशिक मूल्य हों या पतनशील साम्राज्यवादी शिक्षा-दीक्षा – उस पर चोट करना आवश्यक है। यह बात उभरनी चाहिए थी कि अपने हित के लिए साम्राज्यवाद तमाम तरह के विषवृक्षों का पोषण करता है। कभी वह भारत में अफीम की खेती करवाकर दूसरे देशों को अफीमची बनाता था, आज बालीवुड में सेक्स की अफीम उगाकर नशा बाँट रहा है। कुल मिलाकर, अपेक्षित विस्तार के अभाव में लेख का अन्तिम हिस्सा उलझा हुआ और अस्पष्ट है।

'आतंकवाद' का विषय जितना बड़ा है उसका निर्वाह उतने ही विस्तार में जाकर होता तो अच्छा रहता। राज्यपोषित आतंकवाद और राज्यविरोधी आतंकवाद को एक ही पैराग्राफ में लिखा गया है। एक पैराग्राफ में यह भी होना चाहिए था कि कैसे सामान्य जन की मति भरमायी जाती है और इजरायल और अमरीका की कार्रवाइयाँ आतंकवादी नहीं कही जातीं...। भगतसिंह और चन्द्रशेखर का लेख में उल्लेख कुछ ठीक नहीं लगा।

कवर का रंग आकर्षित नहीं करता। देश-विदेश लिखने का तरीका भी प्रभावी नहीं लगा। अक्षर संयोजन में थोड़ी विविधता लायी जाये। लेखों के साथ तस्वीरें, नक्शे लगाकर उन्हें और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। कुछ अच्छी कविताएँ दी जा सकती हैं जैसे मन्थली रिव्यू में छपी पियेद्रे पेयत्री की कविता। संस्कृति के कॉलम में स्थानीय फिल्मों और गीतों की समीक्षा या 'रंग दे बसन्ती' जैसी फिल्मों की सफलता का कारण और उनकी समीक्षा दी जानी चाहिए। सामाचार-विचार में अगली बार एस.बी.आई. की हड़ताल और कन्याभ्रूण हत्या के लिए पहली बार किसी डाक्टर को सजा, ये समाचार भी दिये जायें।

प्रूफ की गलतियाँ रह गयी हैं, उन पर ध्यान देने की जरूरत है।

सविता, देहरादून।

● अपेक्षित गम्भीर पत्रिका के लिए बधाई स्वीकार करें। पत्रिका में जैसे-तैसे कुछ लिखकर छाप देने की परिपाटी को तोड़ने की पूरी कोशिश दिखायी देती है। पत्रिका ने कुछ करने को उत्तेजित किया।

प्रथम दृष्टया कुछ कमियाँ नजर आयीं उनपर ध्यान आकर्षित करना जरूरी समझता हूँ। सम्पादकीय का शीर्षक तथा उससे जुड़ी कहानी बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन यह सम्पादकीय के शेष हिस्सों से ठीक से नहीं जुड़ती, पाठक को अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। सम्पादकीय का बड़ा हिस्सा सूत्रीकरण जैसा है। 15 अगस्त 1947 से शुरू करना पाठकों को अपने साथ यात्रा में लिए बिना सीधे इतिहास में पहुँचा देता है। सम्पादकीय में बिखराव भी है। इसे आज के समय विशेष पर केन्द्रित होना चाहिए था। सम्पादकीय का घिसा-पिटापन पत्रिका के शेष हिस्सों की नवीनता और गम्भीरता को कम कर देता है।

इराक पर अमरीकी हमले के कारणों तथा रूपों पर पहले लेख में अनावश्यक रूप से जोर दिया गया है। इसके बजाय लेख का अधिकांश हिस्सा इराक, अमरीका, शेष विश्व तथा आम जनता की इस बारे में स्थिति पर केन्द्रित होना चाहिए था।

'आतंकवाद' लेख में बिखराव है। कई पैराग्राफ तार्किक और व्यवस्थित रूप में अगले पैराग्राफ से नहीं जुड़ते। कोई लेख पाठकों के सामने प्रश्न रखते हुए भी आगे बढ़ सकता है, लेकिन इसका मतलब लेख में अव्यवस्था और अराजकता के लिए छूट नहीं होता।

सभी लेख महत्वपूर्ण अखबारों तथा पत्रिकाओं से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित हैं, खुद की गयी जाँच-पड़ताल और अनुभवों पर आधारित लेख भी दिये जाने चाहिए। ऐसी पत्रिकाओं की सख्त जरूरत है, लेकिन हमें यह मानने में गुरेज नहीं करना चाहिए कि यह पत्रिका अभी महत्वपूर्ण अंग्रेजी अखबारों-पत्रिकाओं का एक प्रकार का उल्था ही है।

पत्रिका की निरन्तरता को बनाये रखने में आप मुझसे जो भी सहयोग चाहेंगे मैं सहर्ष देने को तैयार हूँ।

रामू सिद्धार्थ, गोरखपुर।

पत्रिका पढ़कर लगा कि मीडिया हमें लगातार धोखा दे रहा है। हमें खबर ही नहीं है जबकि हिन्दुस्तान की छोटी सी पंचायत पेरुमट्टी की आवाज अमरीका तक पहुँच चुकी है। घटनाओं का ठीक-ठीक प्रस्तुतिकरण और सवाल व आह्वान के रूप में खबर देना जरूरी है ताकि पाठकों को लगे कि वह हमारी जिन्दगी से जुड़ी है। लातिन अमरीका के छोटे-छोटे देशों के संघर्ष आशा की किरण हैं उनके बारे में पढ़कर लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब दुनिया के लोग शोषण और अत्याचार से मुक्त होंगे।

पत्रिका के कवर पेज पर दिये गये चित्रों के बारे में

छोटी खबर चित्र पर लिखी जानी चाहिए थी ताकि उनका मतलब स्पष्ट हो सके। अन्दर के कवर पर दी गयी पाश की कविता एक ही पेज पर दी जानी चाहिए थी।

नेपाल के बारे में भी एक लेख होना चाहिए था क्योंकि समीपवर्ती देश की अच्छी आशावादी खबरें लोगों को बेहद आशान्वित करती हैं। 'आतंकवाद' पर लेख पसन्द आया। आतंकवाद के बारे में जनता की समझ साफ होना जरूरी है क्योंकि पता नहीं कब किसी आतंकवादी को धर्मगुरु घोषित कर दिया जाये और किसी देशभक्त को आतंकवादी! लेकिन लेख के अन्त में (पेज 40 पर) लेखक को ''जनक्रान्तियों का इन्तजार करना होगा'' के बजाय ''जनता को क्रान्ति के लिए तैयार होना होगा'' लिखना चाहिए था।

संस्कृति के कॉलम में इस पर लेख आना चाहिए कि कैसे एक 12 साल का लड़का तीन साल की लड़की से बलात्कार करता है। इस उम्र में यह प्रवृत्ति उसमें कहाँ से आयी? गाँव-गाँव में बच्चे अश्लील सीडी देखते हैं, जिसे रोकने का प्रयास होना चाहिए। पत्रिका में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य जैसे जार्ज फर्नाण्डीस की अमरीका में कपड़े उतरवाकर तलाशी; कुछ महत्वपूर्ण स्थानीय खबरें जैसे दिल्ली में रिहायशी इलाकों में दुकानें तोड़ना, मेरठ अग्निकाण्ड पर भी लिखा जाना चाहिए।

पत्रिका में औरतों और किसानों के बारे में कम लिखा गया है, अगले अंकों में इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

यशवीर, दिल्ली।

● पत्रिका नियतकालीन बने यह बहुत जरूरी है। पत्रिका के बारे में मेरे कुछ सुझाव इस प्रकार हैं – प्रथम कवर पर जो चित्र दिये गये हैं उनके बारे में नीचे एक लाइन में लिख दिया जाना चाहिए ताकि अर्थ स्पष्ट हो सके। अन्तिम कवर का और ज्यादा इस्तेमाल हो सकता है और क्रान्तिकारियों की बातें उसपर दी जा सकती हैं। नये शब्दों या कठिन शब्दों की व्याख्या लेख के अन्त में दी जानी चाहिए। हिन्दी के अखबारों में राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर चल रहे जनसंघर्षों की खबरें प्रायः नहीं होतीं इसलिए पत्रिका में उनके बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी दी जानी चाहिए। एक लेख हर अंक में किसी बड़े समसामयिक मुद्दे पर भी लिखा जाना चाहिए।

पत्रिका में कुछ और पेज बढ़ जाने की हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए और चीजों को थोड़ा-थोड़ा विस्तारपूर्वक लिखना चाहिए क्योंकि सभी लेख गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए संस्कृति पर लेख को कुछ ज्यादा ही छोटे रूप में लिखा गया है।

पत्रिका का सम्पादकीय, समाचार-विचार और आतंकवाद पर लेख सबसे ज्यादा अच्छे लगे।

प्रवीण कुमार, दिल्ली।

● पत्रिका का प्रथम अंक प्रशंसनीय है। सम्पादकीय 'बर्बरों का इन्तजार,' व्यंग्यात्मक लहजे में अच्छी चोट करता है, लेकिन उसका प्रत्येक पैरा बहुत अधिक विस्तार, तथ्यपरक राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण की माँग करता है। जनसामान्य या चेतना के प्रथम पायदान पर खड़े व्यक्ति के लिए अधिक गहन और सरल विश्लेषण चाहिए जिसमें एक-एक विषय को लेते हुए बात को समझाया जाये।

इराक युद्ध पर लेख सामान्य समझदारी प्रस्तुत करता है। ईरान, इराक और अन्य अरब देशों की स्थिति, अमरीका और अन्य देशों की कम्पनियों के व्यापार की वहाँ स्थिति तथा सामरिक स्थिति को मिलाकर विस्तृत विश्लेषण करने से वहाँ की स्थिति ज्यादा साफ हो पायेगी।

'मजदूर वर्ग पर हमला...' में दिये गये सुप्रीम कोर्ट के फैसले बहुत संक्षेप में उद्धृत हैं। न्याय व्यवस्था के रुझान की बात ठीक बतायी गयी है, लेकिन सामान्य लोग भी इसे समझ सकें इसके लिए कोर्ट के इन फैसलों में वादी/प्रतिवादी का पूरा विवरण, फैसले की तारीख, घटना का ब्योरा और समय व फैसले के मुख्य पहलू की जानकारी दी जानी चाहिए।

'कलिंगनगर नरसंहार' अच्छा विचारपरक और तथ्यपरक लेख है। ज्यादातर लेखों में सम्पादक मण्डल ने अपने विचार और दर्शन को प्रस्तुत किया है। दर्शन व घटना पर निष्कर्ष आपका अधिकार है, लेकिन पाठक की स्वतन्त्रता इससे बाधित होती है। आपका प्रस्तुतिकरण ही उसे राह दिखाने के लिए काफी होना चाहिए तथा उपसंहार में निष्कर्ष/दर्शन/विचार अत्यन्त संक्षिप्त रूप में आने चाहिए, लेकिन पत्रिका का लगभग प्रत्येक लेख आदेश देता हुआ सा जान पड़ता है। जो लोग सर्वहारा के विचारों, पूँजीवाद-विरोधी विचारों और साम्राज्यवाद को उखड़ फेंकने जैसे विचारों को नहीं जानते, उनके लिए यह सब लेखन विचारों की तानाशाही लगने लगता है। ऐसे पाठकों को खुद निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ जगह दी जानी चाहिए।

कोकाकोला के खिलाफ पेरूमट्टी पंचायत का संघर्ष

शानदार है। 'खाली पेट, भरे गोदाम' लेख भी सही लगा। 'नमक' पर लेख कोई हलचल पैदा नहीं करता क्योंकि उसपर काफी कुछ आ चुका है। 'नाभिकीय हथियार...' भी विशेष जानकारी नहीं दे रहा है और उसमें आपका दर्शन प्रभावी है, तथ्य नहीं। अमरीकी संसद के भ्रष्टाचार के बारे में नयी बात पता चली। 'अलजजीरा', 'बोलीविया...', 'माराडोना की वापसी' लेख अच्छे इसलिए लगे क्योंकि ये जानकारियाँ हम तक बहुत कम पहुँच पाती हैं। दक्षिण अमरीका और अन्य मुल्कों के बारे में जनउभार या आन्दोलनों पर पत्रिका में जानकारी आती रहनी चाहिए।

'कैसा भारत महान' बिल्कुल ठीक तथ्य और बिना आरोपित दर्शन के अपनी बात कहने में सक्षम है। 'नारी की पूजा...' लेख में कोई नवीनता नहीं है और न ही कोई निष्कर्ष। यह फेल लेख है। 'क्लीनिकल परीक्षण...' जरूरी जानकारी देने वाला लेख है। लेख के पृष्ठ 24 पर पैरा 3 में बन्ध्याकरण की घटना का समय नहीं दिया गया है। वर्तमान में बाबा रामदेव असाध्य बीमारियों को योग और दवा से ठीक करने की गारण्टी देकर सम्बन्धित मरीजों की मनोदशा का गम्भीर शोषण कर रहे हैं। हो सकता है वह इन रोगियों पर आयुर्वेदिक दवाओं का परीक्षण कर रहे हों, मुझे तो कुछ ऐसा ही लगता है। 'किसानों की आत्महत्याएँ...' भी अच्छा लेख है, कृषि क्षेत्र की संक्षेप में पूरी बानगी पेश कर रहा है। कृषि-गाँव-देहात पर आगे भी सामग्री जारी रहनी चाहिए।

संस्कृति पर लेख की शुरुआत अच्छी है लेकिन बाद के पन्नों में विचारों की दादागीरी की गयी है। विश्लेषण और निष्कर्ष बहुत कम शब्दों में दिये गये हैं। मेलबोर्न में सरकार ने 12 मिनट के शो पर 29 करोड़ रुपये खर्च किये और 3-4 मिनट के डांस-परफार्मेंस के लिए ऐश्वर्य राय जैसी कुछ कलाकारों को 2-2 करोड़ रुपया दिया गया – यह एक लाइन का समाचार कहीं ज्यादा विचारोत्तेजक है और व्यवस्था के प्रति आक्रोश पैदा करता है। इस लेख का प्रथम भाग ऐसा करने में सक्षम है, लेकिन पृष्ठ 33 तक आते-आते वह 'चन्द्रकान्ता' की भूलभुलैया में खो जाता है।

'रोजा पार्क्स...' शोषण के विरोध में उठ खड़े होने की ताकत देता है। दुनिया की ऐसी जीवन्त मिसालों के बारे में पत्रिका में निरन्तर स्थान रहना चाहिए।

'आतंकवाद' आज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विषय है। इस लेख में पेज 37-38 तक स्थिति ठीक-ठाक है। आगे समाजवाद को यूटोपिया कहा गया है – यह एक गम्भीर गलती है। समाजवाद यूटोपिया नहीं है। यूटोपिया एक आदर्श समाज की कल्पना है जो सम्भव नहीं होता। समाजवाद यथार्थ का समाज है, कल्पना नहीं। लेख में यूटोपिया शब्द का कई बार इस्तेमाल हुआ है, लगता है वह लेखक के दिमाग पर बुरी तरह छाया हुआ था इसलिए इसने समाजवाद को भी ग्रसित कर लिया। यूटोपिया ने कम्प्यूटर के वायरस का काम किया है और समाजवाद को 'हैंग' कर दिया है।

आतंकवाद के प्रकार, उसकी जड़ें, उसका समाजिक आधार, लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव, जनता से उसका रिश्ता और मेहनतकशों के लिए सबक आदि को विश्लेषण का हिस्सा बनाया जाना चाहिए था। यह लेख फेल से भी नीचे है और किसी गलत दिशा में भटकाव लगता है। पत्रिका का अन्तिम लेख ऐसा होगा – यह पूरे सम्पादक मण्डल पर प्रश्न चिह्न है।

पत्रिका की निरन्तरता जरूरी है। जानकारियाँ-विचार-विश्लेषण अच्छे हैं पर विचारों की दादागीरी से बचा जाना चाहिए।

समदर्शी बड़थ्वाल, कोटद्वार।

● देश-विदेश का पहला अंक मिला। सम्पादकीय बर्बरो का इन्तजार प्रथम अंक की प्रभावशाली प्रस्तुति है। अमरीकी साम्राज्यवाद की सीमाएँ बताने वाला लेख भी समसामयिक और जरूरी है। समाचार-विचार को और अधिक विस्तार देने की आवश्यकता है। श्रमिक आन्दोलनों, जनान्दोलनों के बारे में भी दिया जाना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय घटनाक्रम पर 'बोलीविया में राष्ट्रपति चुनाव' और 'माराडोना की वापसी' बस! थोड़ा नाकाफी है। क्लीनिकल परीक्षण और किसान आत्महत्या पर लेख गम्भीर हैं और आने वाले अंकों में बहस के मुद्दे छोड़ते हैं। संस्कृति पर लेख में किताब का सन्दर्भ दिया जाता तो बेहतर होता, सम्भवत: सम्पादक समयाभाव के कारण इसपर ध्यान नहीं दे पाये। साहित्य पर किताबों की समीक्षा या साहित्यिक गतिविधियों को स्थान न दिया जाना कुछ अखरा। रोजा पार्क्स की प्रस्तुति अच्छी थी। विरासत को जिन्दा रखने का प्रयास नियमित रूप से होना चाहिए। 'आतंकवाद' पर लेख में सभी जानकारियों और तथ्यों के बावजूद आनन्द 'शब्दावली' के चक्कर में फँस गये। बार-बार यूटोपिया का दोहराव ठीक नहीं लगा और समाजवाद तो यूटोपिया नहीं, वह तो इतिहास है। भीतरी कवर का ठीक से

इस्तेमाल नहीं हो सका, कविता एक ही कवर पर आ सकती थी – दूसरे पर कुछ और दे सकते थे।

पत्रिका का कोई और नाम नहीं सूझा, जैसे चेतना, या कोई भी कुछ, जो जरा अपना सा लगे। प्रथम कवर पर अनियतकालीन शब्द भी कुछ अच्छा सा नहीं लगा। नियमित निकले तो ज्यादा सार्थकता होगी। पत्रिका की दीर्घायु की कामनाओं के साथ।

कैलाश नौडियाल, देहरादून।

● देश-विदेश का प्रकाशन बहुत ही अच्छा, सराहनीय और उत्सावर्धक प्रयास है। सभी लेख, टिप्पणियाँ, छपाई, फॉण्ट, मुखपृष्ठ... सब कुछ बहुत अच्छा लगा।

अरविन्द के लेख का निम्नलिखित फतवा गैरजरूरी लगा, ''इसमें कोई शक नहीं की मनमोहन सिंह ईमानदार आदमी हैं... लेकिन क्वात्रोची, सोनिया और मन्त्रीमण्डल को बचाने के लिए उन्हें अपने जमीर को ताक पर रखकर झूठ बोलना पड़ा है।''

समाचार-विचार की प्रस्तुति सबसे सशक्त ढंग से हुई है। इनकी तुलना में प्राय: सभी लेखों में प्रवाह की कमी है और कहीं-कहीं बड़े-बड़े वाक्यों से दुरूहता की झलक भी मिलती है।

सम्पादकीय का सम्बोध्य पाठक समूह वह नहीं लगता जो शेष पत्रिका का है। सम्पादकीय कुछ ज्यादा पाण्डित्यपूर्ण और जार्गनों से बोझिल हो गया है।

दिगम्बर के एक लेख में ''एकान्त के सौ वर्ष'' का जिक्र गैरजरूरी लगा।

शैलेश शरण शुक्ल, गोरखपुर।

● पत्रिका में वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा उपलब्ध करवायी गयी साधन सामग्री जैसे मोबाइल फोन के पीछे की मंशा और उसके द्वारा की जा रही लूट और अपसंस्कृतिकरण को भी छापा जाये। ऐसे ही अन्य साधनों के बारे में भी लिखा जाये जो लोक लुभावन हों पर घातक हों ।

जनार्दन प्रसाद शर्मा,
सहायक अध्यापक, खड्डा, कुशीनगर

● देश-विदेश पढ़कर हार्दिक खुशी हुई क्योंकि इस तरह की पत्रिका की कमी हमेशा महसूस होती थी।

पत्रिका का कवर अच्छा लगा पर उस पर छपी घटनाओं का विवरण दिया जाना चाहिए कि यह सब कहाँ हो रहा है। समाचार-विचार अच्छा लगा लेकिन उसमें पिछले 1 महीने की घटनाएँ नहीं दी गयी हैं, इसका ध्यान रखना चाहिए।

'नाभिकीय हथियार: प्रसार-अप्रसार का अमरीकी स्वांग' लेख में ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का उद्धरण दिया गया है जो प्रासंगिक तो है लेकिन वह अमरीकी साम्राज्यवाद की खिलाफत नहीं करता। उसके सपने, सोच जनता से नहीं मिलते। अत: उसे विशेष उद्धरण के तौर पर नहीं दिया जाना चाहिए। 'आतंकवाद' लेख ने स्पष्ट किया कि आतंकवाद क्या है, कौन आतंकवादी है, आतंकवादी होने की वजहें क्या हैं, लेकिन स्पष्ट तरीके से समझ में नहीं आता कि भारत में, दिल्ली, गुजरात और अन्य जगहों पर आतंकवादी हमले क्यों होते हैं, कश्मीर में आतंकवाद का क्या मामला है, अलकायदा, लश्करेतोइबा, हरकतउल मुजाहिदीन इत्यादि संगठन कहाँ से पैदा हो रहे हैं। इनके बारे में भी विस्तार से बताया जाना चाहिए।

पत्रिका देश की वास्तविक स्थिति को उत्तेजनापूर्ण ढंग से बताती है और अन्याय के खिलाफ खड़े होने के आदर्श प्रस्तुत करती है। माराडोना, रोजापार्क्स, पेरुमट्टी सभी संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। मैं चाहूँगा कि यह पत्रिका सतत छपती रहे।

इमामुद्दीन, गोरखपुर।

● उड़ते हुए बाजों के पीछे कविता का मतलब क्या है और क्या कहना चाहती है, समझ में नहीं आया। सम्पादकीय 'बर्बरों का इन्तजार' थोड़ा सा उबाऊ लगता है और धैर्य रखना पड़ता है कि आखिर सम्पादक कहना क्या चाहता है लेकिन अगले पैराग्राफों में ऊब खत्म हो जाती है। लेखों में बाक्स देने का तरीका अच्छा है बशर्ते कि लाइनें कम हों और ठोस, तथ्यपरक और आन्दोलित करने वाली हों। 'अमरीकी साम्राज्यवाद के मंसूबे...' एक सही समझ देता है। 'कलिंगनगर' सूचनापरक लेख है और यह कहता हुआ कि लोग लड़ते हैं।

'मजदूर वर्ग पर हमला...' में कुछ तथ्य दिये गये हैं जिनमें बताने की कोशिश की गयी है कि मजदूर की छोटी सी गलती के लिए उसे बड़ी सजा मिली। इस पत्रिका का पाठक मध्यवर्ग है जो अपनी वर्गीय पक्षधरता के चलते मजदूरों से सहानुभूति नहीं रखता या न के बराबर रखता है। लेख में दिये गये तथ्यों से इतना स्पष्ट नहीं होता कि मजदूर वर्ग बुरी हालत में रहता है जिसके चलते उससे कुछ गलतियाँ हो जाती हैं या फिर गलती न होते हुए भी उसकी गलती

साबित कर दी जाती है।

पत्रिका का पाठक मध्यवर्ग है लेकिन आह्वान मजदूर वर्ग का किया जा रहा है।

'कोकाकोला...' लेख अच्छा है। विश्वविद्यालय के छात्रों का आह्वान करते हुए कहा गया है कि हमारे यहाँ छात्र-शिक्षक बड़े इत्मीनान से कोक पी रहे हैं। मुझे सन्देह है कि बहुतायत मध्यवर्ग वाकई कोक पी रहा है। 'खाली पेट भरे गोदाम' में बाक्स में दी गयी खबर अच्छी है। 'साधारण नमक..' लेख से मैं आन्दोलित हुआ क्योंकि मैने 2 रुपये किलो के नमक या आयोडीन नमक का फर्क समझा है... जब नमक खाने को न हो तो पहले आयोडीन नहीं, नमक चाहिए। 'नाभिकीय हथियार...' लेख तो ठीक है लेकिन बाक्स में दी गयी खबर कि भारत के पास परमाणु हथियार होना अवरोधक था, समझ में नहीं आयी। अलजजीरा और टेलीसूर... अच्छी खबर थी, बोलीविया की जनता के उठ खड़े होने की खबर भी अच्छी है। माराडोना की कहानी पढ़कर मध्यवर्ग शायद खेलों के नायकों और अपने बारे में भी कुछ सोचे। 'कैसा भारत महान' में कुछ तथ्य बोल्ड में दिये जाने चाहिए थे जैसे ''रुपये प्रति दिन पर लोग कैसे परिवार चला रहे हैं जरा सोचिये!'' 'क्लीनिकल परीक्षण' लेख शायद गरूर में रहने वाले डाक्टरों को इन तथ्यों से आँखें चार करने की हिम्मत दे।

'किसानों की आत्महत्याएँ' लेख तड़प पैदा करता है। साथ में खेती को पूँजीवादी व्यवस्था से जोड़कर देखने की सम्यक दृष्टि देता है। ''तुमने अपने लोगों पर थूका...' मध्यवर्ग की संस्कृति और सौन्दर्यबोधों पर अच्छी चोट है और उसकी हकीकत बताता है। लेकिन लेख के शीर्षक से जोड़कर विश्लेषण नहीं किया गया है इसलिए शायद कुछ लोग समझ न सकें। रोजापार्क्स पर अच्छा लेख है। 'आतंकवाद' पर लेख नजरिया बदलता है और सोचने को प्रेरित करता है।

कवर पर जनसैलाब दिखाया गया है पर यह भीड़ कहाँ और क्यों है कुछ स्पष्ट नहीं होता, शायद इतना ही हो कि लोग अन्याय के खिलाफ खड़े हो रहे हैं। कवर के दाहिने फोटोग्राफ में भीड़ के साथ शायद चेग्वेरा का फोटो है। मध्यवर्ग का अधिकांश हिस्सा चे को नहीं जानता। दाहिने नीचे की ओर आदिवासी दिखाये गये हैं, लोग इसे भी स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाते। बुश को आतंकवादी जरूर दिखाया गया है लेकिन दादाजी का चेहरा इतना खौफनाक नहीं लगता।

मिथिलेश,

के.जी. मेडिकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ।

● पत्रिका के लेख नयी जानकारी और चेतना से लैस करने वाले हैं। उन लोगों के लिए, जो जानकारियों से अपडेट नहीं रहते, तो बेहद अच्छे हैं ही, अन्य पढ़े-लिखे लोगों के लिए भी इस बुलेटिन का नियमित प्रकाशन अच्छा है। समाचार-विचार कॉलम में ज्वलन्त मुद्दों की समीक्षा बेहतरीन है। भाषा-शैली बढ़िया, प्रवाहमान एवं ओजस्वी है। ये ऐसे मामले हैं, जो सामान्य पाठक को एकदम चौंका देने वाले और चेतना बढ़ाने वाले हैं।

लेख 'अमरीकी साम्राज्यवाद के मंसूबे...' अच्छा लगा। लेख की शुरुआत के दूसरे पैरा में 'स्प्रिंग बोर्ड' की उपमा का मतलब समझ में नहीं आया। अन्तिम पृष्ठ के तीसरे पैरा में 'विदेशी सरकारों का कोई... रात भर रह आये हैं।' लाइनें भी समझ नहीं आयीं। इसी पैरा में 'भारत और पकिस्तान... अंधा कर दिया है' का तात्पर्य भी समझ नहीं आया। यहाँ लेख में थोड़ा ढीलापन है।

'बोलीविया में राष्ट्रपति चुनाव' लेख लातिन अमरीका की जनता के संघर्षों की एक बानगी प्रस्तुत करता है। इतिहास की जानकारी के अभाव में मुझे यह कहीं-कहीं कठिन लगा। 'मुनरो सिद्धान्त' के बाद किस तरह लातिन अमरीका में हालात बदलते रहे, इसकी जानकारी भी नहीं है। लेख का अन्तिम पैरा जबर्दस्ती डाला गया लगता है। शायद पाठकों के लिए इसे जानबूझकर डाला गया हो। 'क्लीनिकल परीक्षण' और 'किसानों की आत्महत्याएँ' लेख अच्छे हैं, नयी जानकारियों से अपडेट करने वाले हैं।

'संस्कृति,' 'रोजा पार्क्स' और 'आतंकवाद' को व्याख्यायित करने का प्रयास करता लेख भी अच्छा लगा। सभी की भाषा अच्छी तथा प्रवाहमान है।

खेती वाले लेख में पंजाब, दक्षिण भारतीय राज्यों के आँकड़े और वहाँ पर वैश्वीकरण के प्रभावों का विस्तृत ब्योरा है लेकिन उत्तरांचल और यू पी पर न तो पत्रिका में कुछ दिया गया है, न ही अन्य पत्रिकाओं या अखबारों में कुछ मिलता है। इसलिए बेहतर रहेगा कि उन्हें दिया जाये। इस सम्बन्ध में गाँव के साथियों के अनुभव और सर्वे प्रकाशित किये जा सकते हैं। इसी तरह चिकित्सा, शिक्षा आदि से सम्बन्धित लेख भी दिये जा सकते हैं। स्थानीय मुद्दों को भी लिया जाना

चाहिए – इन इलाकों में मजदूरों की हालत, छँटनी-निजीकरण का असर वगैरह। सरकार के पानी, बिजली और अन्य बुनियादी जरूरतों से सम्बन्धित जनविरोधी निर्णयों के प्रभावों को भी आधार बनाया जा सकता है।

तकनीकी दृष्टि से पहली दृष्टि में पत्रिका बेहतर लगी। कवर अच्छा बन पड़ा है, बैक कवर पर भी कलर होता तो अच्छा होता। पृष्ठों की साज-सज्जा में अवश्य सुधार की गुंजाइश है। हैडिंग में ज्यादा अच्छे फाण्ट्स लगाये जा सकते हैं और स्टाइल भी बदला जा सकता है। लेखों के अन्त में दिये गये बॉक्सों में कलात्मकता लायी जा सकती है। बॉक्स की लाइनों की मोटाई कम रहे तो अच्छा रहेगा। इसी तरह पहले पृष्ठ में दिये गये सूचनात्मक बॉक्स को भी ज्यादा अच्छा बनाया जा सकता है। पत्रिका का साइज सही है।

सीमा श्रीवास्तव, रुड़की।

देश-विदेश अंक दो के बारे में पत्र

● देश-विदेश अंक दो का सम्पादकीय काफी अच्छा लगा। कवर पहले अंक से बेहतर रहा, उस पर दिया गया फोटो सम्पादकीय लेख से मेल खाता है। समाचार-विचार अच्छे लगे। लेखों के क्रम में यदि समाचार-विचार को सम्पादकीय के बाद दिया जाये तो अच्छा रहेगा। पत्रिका के सभी लेख अच्छे हैं। लेखों के साथ बाक्स में छपी सामग्री लेखों के असर को बहुत ज्यादा बढ़ा देती है। आगे भी बॉक्स में इस तरह की सामग्री छापी जाये तो बेहतर होगा।

पत्रिका पिछले अंक से ज्यादा अच्छी लगी। लेखों की भाषा सरल और प्रवाहमान है। लेकिन पत्रिका में प्रूफ की बहुत ज्यादा गलतियों का होना बहुत अखरता है। लगता है जैसे बुद्धेश मणि के लेख में शुरुआत की एक पूरी लाइन ही छूट गयी है। प्रूफ देखने में बरती गयी लापरवाही और जल्दबाजी साफ झलकती है। भविष्य में पत्रिका भले ही एक-दो दिन देर से प्रकाशित हो, प्रूफ की गलतियाँ कम से कम रहें, यह ध्यान रखा जाये।

विनोद कुमार, मुरथल (सोनीपत)

● देश-विदेश का जून-2006 अंक मिला। सम्पूर्णता में यह पत्रिका सामाजिक चेतना की दृष्टि से अद्वितीय है। सम्पादकीय और लेख यह समझाने में सक्षम हैं कि हमारा देश ऊपर से क्या दिखायी दे रहा है तथा आन्तरिक रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, अमरीका के नेतृत्व में, इसे दीमक की तरह कैसे खाये जा रही हैं। हमारी सरकारें, चाहे वह भारतीय जनता पार्टी या सहयोगी दलों की सरकार हो या यू.पी.ए. की, किस तरह अपना पार्ट अदा कर रही हैं। लेख यह अहसास करवाने में सक्षम है कि अपना ''आर्थिक साम्राज्य'' कायम करने के लिए अमरीका दुनियाभर में क्या कूटनीतिक चालें चल रहा है। हमारी संस्कृति पर पश्चिम के विषैले प्रभावों एवं हमारे देश में नारी की स्थिति के बारे में विचार ठीक लगे। लेखक दिगम्बर का पानी की समस्या पर लेख प्रशंसा के योग्य है। जल और वायु, जो जीवन के आधार हैं, उनका पूँजीकरण करना एक गम्भीर समस्या है। आने वाले समय में शुद्ध वायु का भी पूँजीकरण होने लगेगा। अतः इस समस्या पर जनजागरण और पूँजीकरण का विरोध आवश्यक है। इसमें लेखक द्वारा पानी के दुरुपयोग को रोकने के सन्दर्भ में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जो नितान्त आवश्यक है।

आरक्षण के सन्दर्भ में, सम्पादक द्वारा आरक्षण का समर्थन हमारी दृष्टि में उचित नहीं है। हमारा यह मानना है कि आरक्षण द्वारा जाति विशेष के लोगों के साथ वोट की राजनीति की जाती है। भारत वर्ष में जहाँ हर जाति और धर्म में गरीबों की स्थिति दयनीय है, वहाँ उनपर आरक्षण का सरकारी ठप्पा लगाकर उन्हें यह अहसास दिलवाना कि वे अछूत वर्ग से हैं, समाज से कटे हैं, गलत है। आरक्षण नीति को हटाकर उन्हें आर्थिक सहायता देकर शिक्षा के माध्यम से मुख्य धारा में लाया जा सकता है, अन्यथा एक दिन यह विभिन्न जातियों के मध्य भयंकर युद्ध का कारण बन जायेगा।

बुद्धेश मणि के लेख 'भारतीय विदेश नीति...' में लिखे विचारों का हम समर्थन करते हैं। इसमें अमरीका की दादागीरी और भारत सरकार का अमरीकी नीति पर चलना वस्तुतः इस देश को बेचने की प्रक्रिया है। रामकृष्ण का लेख 'रोटी से खेलने वालों...' कृषि क्षेत्र और भारतीय खुदरा बाजार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका को उद्धृत करने में सक्षम है। अन्य लेखों ने भी प्रभावित किया। सम्पादक द्वारा 'देश-विदेश' का मुद्रण सराहनीय कार्य है, मैं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

भगत सिंह बिष्ट, क्षेत्रीय सचिव
एस.बी.आई. स्टाफ एसोसिएशन, कोटद्वार।

● देश-विदेश अंक दो मिला। नेपाल पर सम्पादकीय जरूरी था, सही दिशा में ले जाने वाला है। 'निकारागुआ में ऑर्तेगा' का मामला और खोलकर लिखा जाना चाहिए था। 'नाभिकीय अप्रसार...' बहुत सुन्दर लेख है। वैचारिक समझ साफ करता है जबकि आँकड़ेबाजी से दूर है। इसे भी समझाना जरूरी है कि ईरानी शासक वर्ग अमरीका की अधीनता क्यों स्वीकार नहीं कर रहा है, वह क्रान्तिकारी वर्ग तो है नहीं।

आरक्षण पर काफी कुछ सधा हुआ और स्पष्ट लेख है। फिर भी इसमें जातियों के पूर्ण अन्तरविरोध को, सम्भवत: स्थानाभाव के कारण, समझाया नहीं गया है। 15-20 प्रतिशत उच्च वर्ग का अधिकांश सम्पत्ति पर अधिकार है, हम इस वक्तव्य से सहमत नहीं हैं। अधिकांश सम्पत्ति पर कुछ हजार हुक्मरानों का कब्जा है, जो वर्ण व्यवस्था में अधिकांश उच्च वर्ग से हैं। मध्यवर्ग को प्राप्त सुविधा और सम्पत्ति में भी अधिकांशत: उच्च वर्ग के कब्जे में है। लेकिन यह स्थिति लम्बे समय तक रहने वाली नहीं है। ऐसे में थोड़े से अवसरों के लिए वर्णव्यवस्था के विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष से कोई सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन होने वाला नहीं है। केवल स्टैण्ड लेने के लिए 'दलित पक्ष' में खड़ा होना अलग बात है – सैद्धान्तिक रूप से ठीक है।

समाचार-विचार सभी गागर में सागर हैं। यह और अधिक विस्तार और तीखे तेवर की माँग करता है। कुछ बातें तो हमें भी मालूम नहीं थीं। यह पत्रिका का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है।

वेनेजुएला में 10 लाख लोगों को हथियारबन्द करने के बारे में क्या कोई पूरी-पूरी रपट है। यह कैसे किया जा रहा है, इसका उपयोग कब और कैसे किया जा सकता है?

'जाहिरा शेख...' लेखिका को बहुत-बहुत बधाई। लेख के तेवर हमारे दिलों में जोश पैदा करने में समर्थ हैं। घटनाक्रम का पूरा एतिहासिक द्वन्द्वात्मक विश्लेषण सामने रख दिया गया है। क्रान्तिकारियों की भाषा ऐसी ही होनी चाहिए। इस त्रासदीपूर्ण घटनाक्रम के साथ एण्डरसन, हैडलेबर्ग व्हिटमैन. ...अन्य हवाले देकर आपने व्यवस्था को उघाड़ने का समीचीन प्रयास किया है। आशा है पत्रिका में ऐसी सामग्री की निरन्तरता बनी रहेगी।

'पानी, पूँजी, मुनाफा और साम्राज्यवाद' इस बार का केन्द्रीय आलेख कहा जा सकता है। समस्या को शुरू से अन्त तक जिस धैर्य और जानकारी के साथ रखा गया है – मैं उस पर टिप्पणी करने में असमर्थ हूँ। इस प्रकार के अन्य सामयिक विषयों को भी लिया जाना चाहिए – निश्चय ही यह श्रमसाध्य होगा और सीमा से अधिक समय की माँग करेगा। जब तक पूँजीवादी व्यवस्था है, तब तक पानी की समस्या देश में ऐसे ही बनी रहेगी। शासक वर्ग 'मुनाफे' के लिए जनता को छोड़ चुका है, उससे उम्मीद करना फिलहाल बेमानी होगा। तब पानी का संकट कैसे हल किया जाये – इसे स्पष्ट करना जरूरी है। यह विकल्प लेख में छोड़ दिया गया है। जैसे राहुल ने वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था पर लिखा है वैसे ही यह बताया जाना चाहिए कि इस समस्या को सही ढंग से कैसे हल किया जा सकता है। जनता की चेतना, जागरूकता, प्रतिरोध और संघर्ष थोड़ा भी आगे बढ़ता है तो मेरी समझ से बहुत कम खर्चे में अधिकांश समस्या हल हो सकती है।

'रोटी से खेलने...' लेख सामान्य बातों को दोहराना प्रतीत हुआ। लेख विचारों में गर्मी और जानकारी में इजाफा करने में असमर्थ है। भारत में कृषि और ग्रामीण परिवेश, '47 से आज तक की विकास यात्रा, साम्राज्यवाद की घुसपैठ, भविष्य में वह कैसे उत्पात मचायेगा, देश-विदेश के अनुभवों को चाहे छोटे-छोटे टुकड़ों में दिया जाये, शुरुआत होनी चाहिए। हुई भी है लेकिन बात बहुत साफ नहीं हुई।

'भारत की विदेश नीति...' जनसामान्य को आम समझदारी देने के लिए अच्छा है। विदेश नीति के साथ देश की घरेलू नीति को भी स्पष्ट करता है। पृष्ठ-44, कॉलम-2, पैरा-2 की प्रथम 6 पंक्तियाँ बहुत अधिक विस्तार की माँग करती हैं। अपने मौजूदा रूप में वे छायावादी कवियों की पंक्तियाँ बन गयी हैं। '47 के बाद की आजादी या गुलामी 6 पंक्तियों में है – लेकिन ऐसा क्यों है? क्या है? यह बात स्पष्ट नहीं है। 1980-90 के बीच में देश में जो अर्थव्यवस्था थी, आर्थिक स्थिति थी, लेख से स्पष्ट नहीं हो रहा है। राजनीतिक व्यवस्था ठहराव या संकट में क्यों थी? क्या वह अमरीका या आई.एम.एफ. के सामने घुटने टेके बिना टिक नहीं सकती थी? वह उनकी शर्तों को मानने के लिए क्यों तैयार हुई? इस संकट के तथ्यों, घटनाओं और आँकड़ों को खोले बिना कह देने मात्र से कोई पाठक 'संकट' को स्वीकार नहीं करेगा, बल्कि इसे व्यवस्था विरोधी का आलाप मानकर आगे बढ़ जायेगा।

'भारत की महाशक्ति...' भारत-अमरीका की वर्तमान नजदीकी को पूरी तरह से स्पष्ट कर देता है। ऐसे सविस्तार लेख ही सही समझदारी पैदा करने में समर्थ हैं। इसके तेवर भी शानदार हैं। लगता है जैसे हमें जुबान दे दी है। साधुवाद या धन्यवाद।

पत्रिका गम्भीर, स्तरीय, पठनीय और रुचिकर है, लेकिन आम पाठक के लिए कठिन है इसलिए इसके स्वरूप में कुछ बदलाव आवश्यक हैं। हर अंक में कम से कम तीन लेख किसी समसामयिक विषय पर सविस्तार विश्लेषण करते हुए दिये जाने चाहिए। खबरनामचा बहुत असरदार कॉलम है। इसके अलावा गीत, कविता, गजल और कोई कहानी (भले ही छोटी हो) अवश्य दिये जायें। संस्कृति का मामला भी महत्वपूर्ण है। भाषा की गरीबी भी कोई अच्छा संकेत नहीं है। व्यवस्था कह रही है – सही-गलत की परवाह मत करो, बोलते जाओ। जैसे बम्बइया हिन्दी। फिल्म, पहनावे, बोलचाल, भाषा, गीत-गजल, गद्य, कहानी, कला के विविध रूप, रंगमंच, सर्कस, पेंटिंग, गायन... पर्यटन, तीर्थाटन, मन्दिर भ्रमण... संस्कृति कहाँ नहीं है? मध्यवर्ग के जीवन का यह आवश्यक हिस्सा है। इसलिए इसे जगह दी जानी चाहिए। मीडिया की संस्कृति को, खबरों को, घटनाओं को विकृत करने में भूमिका को सामने लाया जाये। किसी एक फिल्म की पूरी काट-छाँट पूरी व्यवस्था की नंगई को बयान कर सकती है। पिछले 200 सालों में सामन्तवाद-पूँजीवाद के खिलाफ हुई एकाधिक क्रान्तियाँ और महत्वपूर्ण संघर्ष हमारी विरासत हैं। उनके बारे में भी पत्रिका में लेख दिये जाने चाहिए।

मेरी समझ से अंक दो तक का सफर शानदार है।

समदर्शी बड़थ्वाल, कोटद्वार।

आज की रात

dyksdjksxs
dsdks[kkukaknwgh
I;kt] yglqu] uedvkSj fepkZ feykdj
dsekSh jksh lasdnwgh [kjk&[kjk

ml fnu etwjh ds cnys
dMsdkowustksiqjkuhuhyhdyh
dkt.rhEkh] mlsQhaprwgh

viuhHkwdkesals
vk/kHkwdkepsnarks
esjh[kfV;kesalsvk/kh[kfV;kyslks
esjhdEkjhlsrksfrgkbZdEkjh
pkgsrksiwjhpkrjyslks
;kvks<+lkesajvk/kh lkMhgh

tgk; eugksogk; esjscnuijj[kyksgEk
esjhuhanesalsvk/khuhanyslks

ysfdugEkdksMsnhgw;
cxyesalks;sfcV~Vwdhdle
vkt jgusrks!

&v'VHkqtk 'kqDy

तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब,
शकर मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम तुखन।

–अमीर खुसरो

अर्थात ''मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ और हिन्दवी में उत्तर देता हूँ।
मेरे पास मिश्र की शक्कर नहीं है कि मैं अरबी में बात करूँ।''